SARVDESHIK

FEB-OCT 1929 G.K.U.

सार्वदेशिक

मासिक पत्रिका - ४ अङ्क

सन् १९२९ ई०- फ़रवरी, अप्रैल, अगस्त
अक्तूबर-

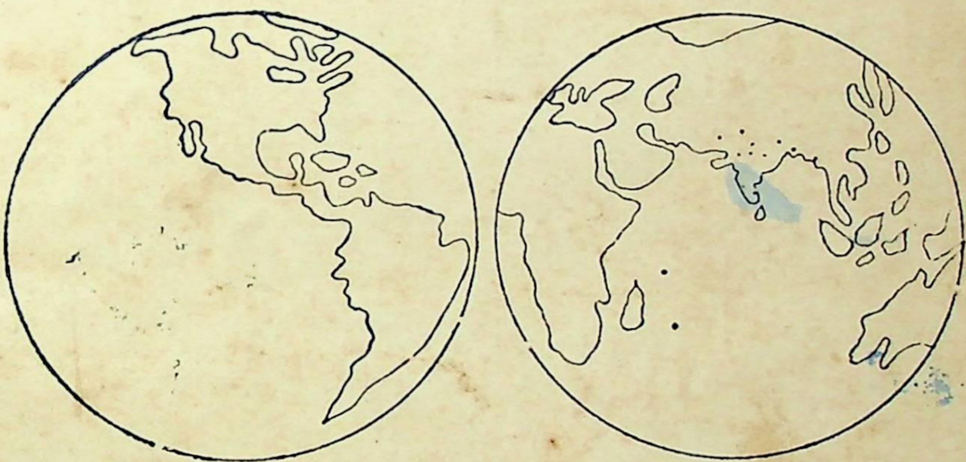
Registered No. L 2121

ओ३म्

फाल्गुन
फरवरी
१९२९

दयानन्द-
अब्द
१०४

दयानन्द बोधांक



कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् ॥ वेद ॥

वार्षिक
मूल्य
२)

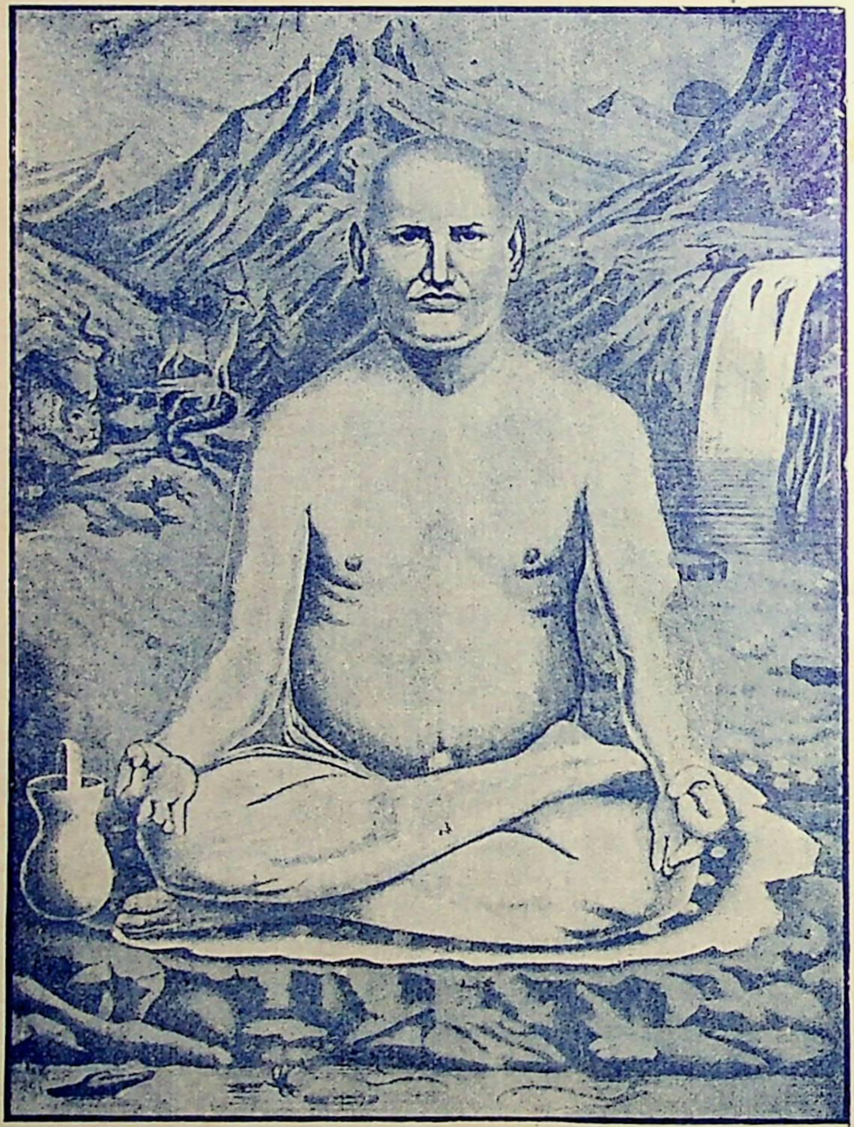
सम्पादक--प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

इस प्रति का
मूल्य
।)

विदेश से ५ शिलिङ्ग

विषय-सूची

——:o:——



सर्वस्व-त्यागी दयानन्द

* ओ३म् *

सार्वदेशिक

आर्य्यावर्त्तीय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २ | फाल्गुन १ सम्वत् १९८५ वि० | अङ्क १२

फरवरी १९२९ ई०] [दयानन्दाब्द १०४

सम्पादकीय-विचार प्रवाह

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ॥

महर्षि दयानन्द

श्रद्धाञ्जलि

ऋषि दयानन्द इस युग के प्रवर्तक थे। उन के परिश्रम से जो बीज बोया गया था, वह आज वृक्ष रूप में परिणत दिखाई दे रहा है। ऋषि ने विचार जगत् में जो क्रान्ति उत्पन्न की थी, उसकी लहरें इस समय देश के कोने २ में व्याप्त होगई हैं। जिसे आज हम जागृति कहते हैं, उसे ऋषि दयानन्द धर्म के नाम से पुकारते थे। ऋषि का धर्म बड़ा चेतन, और बलवान था। वह शक्ति का रूपान्तर था। महर्षि ने आर्य जाति के जीवन में एक ऐसी शक्ति का संचार किया, जो अनेक रूपों में प्रकट होती हुई आज इस दशा तक पहुंची है कि उसे हम राष्ट्रीय क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं। ऋषि का नाद प्रत्येक कोने से प्रतिध्वनित हो रही है।

सार्वदेशिक का यह अंक ऋषि के चरणों में श्रद्धाञ्जलि के रूप में समर्पित किया गया है। भक्त की भावना है कि श्रद्धाञ्जलि अवश्य ही स्वीकार की जायगी।

इन्द्र

———:०:———

ऋषि बोधोत्सव आर्यों के बोध का कारण बने

——:o:——

(लेखक—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज)

——:o:——

शिव रात्रि के दिन आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द को बोध हुआ था कि "मन्दिरों का शिव असली शिव नहीं है अतः असली शिव की खोज करनी चाहिये" इसी लिए आर्यसमाज में यह पर्व बोधोत्सव के नाम से मनाया जाता है। गत ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के समय यही दिन ऋषि दयानन्द का जन्म दिवस भी ठहराया गया था इस लिए इस को अब दयानन्द जन्मोत्सव भी कहने लगे हैं।

ऋषि दयानन्द का जन्म दिवस

यह पर्व जन्म की दृष्टि से नहीं किन्तु बोध की दृष्टि ही से जन्म दिवस ठहराया गया है, इस बोध ही का फल था जिससे स्वामीजी मूलजी दयाराम से दयानन्द बने। अभी कुछ दिन बीते जब एक जन्म पत्री दिखलाई गई थी और उसे स्वामीजी की जन्म पत्री होने का विश्वास दिलाया गया था। यह जन्मपत्र मथुरा निवासी पं० मोहनलालके पास है। इसके संबन्धमें कहा गया था कि ४० वर्ष हुए जब यह किन्हीं बाबू नगीनदास भाटिया के किसी समाचार पत्र में छपा था, इस जन्म कुन्डली की रू से ऋषि दयानंद का जन्म भादों सुदी नवमी को गुरुवार के दिन सम्वत १८८१ वि० शाका १७४६ में हुआ था। परंतु इस जन्म कुंडली के शुद्ध और ठीक होने का कोई प्रमाण नहीं है। मथुरा में तलाश करने से उपर्युक्त समाचार पत्र की अभीष्ट कापी भी नहीं मिली। इस लिए सम्प्रति बोधोत्सव और जन्मोत्सव दोनों शताब्दी सभा के निश्चयानुसार शिव रात्रि ही को समझना ठीक होगा।

ऋषि दयानन्द का काम और आर्यसमाज

ऋषि दयानंद ने बोध होने के बाद सफलता के साथ असली शिव की खोज की, प्राप्त किया, और यत्न किया कि अन्यों को भी उसकी प्राप्ति हो, और दूसरे अन्तिम यत्न की पूर्ति के लिए आर्यसमाजों की स्थापना की। आर्यसमाज स्थापित हुए, अनेक पुरुष, स्त्री उसके सभासद बने। उस समय के सभासदों की मनोवृत्ति यही थी कि प्रत्येक संभव साधन से वेद प्रचार करके ऋषि के छोड़े काम को पूरा किया जावे।

आर्यसमाज का प्रचार युग

उन्होंने बड़ी तत्परता से इस काम को पूरा करने का यत्न किया। परिणाम संतोषजनक हुआ, आर्यसमाजों की संख्या बढ़ी, आर्यों की जन संख्या में असाधारण वृद्धि हुई। आर्यसमाज का प्रत्येक सभासद एक अच्छे प्रचारक का काम करता था इस लिए सभासदों की वृद्धि का यह अनिवार्य परिणाम था जो हुआ। एक प्रचारक को, जो सफलता के साथ प्रचार करना चाहता है, आवश्यक है कि जिन बातों पर वह अन्यों को चलाना चाहता है उन पर स्वयं चले, इसी लिये वे सभासद प्रायः कर्मनिष्ठ और सदाचारी हुआ करते थे, और उनके विचार ही में नहीं किंतु आचार में भी आकर्षण था जो उनके सम्पर्क में आता था उधर खिंचे बिना नहीं रह सकता था। आर्य समाज की उन्नति के साथ आर्य समाज की यश वृद्धि हुई और शिक्षित समाज आर्य समाज को आशा भरी

दृष्टि से देखने लगा। इस यश वृद्धि से आर्यसमाज की अधिक उन्नति होने में चार चांद लगे। आर्य समाज का यहां तक का इतिहास उज्ज्वल इतिहास है, प्रेम का इतिहास है, चरित्र का इतिहास है, संगठन का इतिहास है, परस्पर प्रीति और सेवा का इतिहास है। अब आगे आर्य समाज के कर्तृत्व का रुख बदला और एक दूसरे युग का प्रारम्भ हुआ जिसे मैं प्रायः संस्था का युग कहा करता हूं।

संस्था-युग

ऋषि दयानन्द के स्मारक में कौलिज खोलने की तजवीज हुई, विचार कार्य में परिवर्तित हुआ, कौलिज खुले, स्कूल खुले, गुरुकुल, पाठशालायें खुलीं, अनाथालय बनें, कन्या पाठशालायें बनीं, विधवा आश्रम स्थापित हुए, निदान संस्थाओं की भरमार हो गई। आर्यसमाज के आधीन कितनी संस्थायें हैं इसका अनुमानिक विवरण इस प्रकार है जो लगभग ठीक के है:—

संस्थाओं की संख्या

७ कालिज, २०० हाईस्कूल, १५० अंग्रेजी मिडिल स्कूल, १२६ प्राइमरी स्कूल, १४१ रात्रि स्कूल हैं। २८ गुरुकुल, ३०० संस्कृत पाठशालायें, ३ कन्या गुरुकुल, १ कन्या कौलिज, २ कन्या हाई स्कूल, ७०० कन्या पाशठालायें, ५० अनाथाश्रम, ४० विधवाश्रम, १४ मुफ़्त दवाखाने और ३० छापेखाने हैं जिनसे ४० से ऊपर समाचारपत्र निकलते हैं। इनके सिवा और भी अनेक संस्थायें हैं विस्तार के भय से जिनका जिक्र छोड़ दिया गया। इन संस्थाओं के बाहुल्य से आर्यसमाज से बाहर के लोगों को यह जान कर चकित होना पड़ा कि आर्यसमाजियों में कितनी प्रबन्ध दक्षता और संगठन निपुणता है। इन संस्थाओं से आर्यसमाज की यश वृद्धिभी हुई, उसकी धाक बंधी और बाहरी लोग उसका रोब मानने लगे। परन्तु इसके साथ ही उन संस्थाओं की वृद्धि का एक अन्धकारमय पहलू भी है। और वह यह है:—

संस्थावृद्धि का अन्धकारमय पहलू

आर्यसमाज में प्रायः मध्यम श्रेणी के आदमी थे और हैं, उनके पास इतना धन न था और न है जिससे वे इन संस्थाओं की बढ़ती हुई बाढ़ का मुकाबिला करते। फल यह हुआ कि धन की बढ़ती हुई मांग ने मजबूर किया कि आर्य पुरुष धनियों के द्वारों को खटखटायें, उन्हें ऐसा करना पड़ा। धनी सार्वत्रिक नियमानुसार अधिकतर सच्चरित्र नहीं हुआ करते। धन के प्रलोभन से आर्यों की जुबान बन्द हुई, होठों को ताला लगा। अब वे उनकी अनाचारता के विरुद्ध मुंह नहीं खोल सके, धन मिलने के प्रलोभन ही से उन्होंने ऐसे असदाचारी पुरुषों को अपना प्रधान बनाया, मंत्री बनाया। इस सब का फल यह हुआ कि आर्यों के भीतर सदाचार का प्रेम कम हुआ, कर्मनिष्ठता में ढीलापन आया, मनोवृत्ति बदली और इस परिवर्तन का अनिवार्य फल यह हुआ कि आर्यसमाज में निकम्मे और अनाचारी पुरुषों का प्रवेश हुआ, पदों का प्रेम बढ़ा और साथ ही झगड़े भी बढ़े। संस्थाओं के पदाधिकार की ममता ने लड़ाई कराई, आर्य मन्दिरों में ताले डलवाये और इसी प्रकार के अनेक दुष्कृत्य हुए। कचहरियों में मुकदमे भी दायर हुये। आर्यसमाज से सहानुभूति न रखने वाले पुरुषों को भी आर्यों ने अपनी २ पार्टीबन्दी में शामिल करके अपना जत्था बढ़ाया और इस प्रकार आर्यसमाज जैसा पवित्र और श्रेष्ठ समाज धड़ेबन्दी का मैदान और युद्ध की भूमि बन गया। आज हम दुर्भाग्य से इसी युद्धक्षेत्र बने हुए समाज में श्वास ले रहे हैं।

अन्तिम प्रार्थना का उपसंहार

बन्धुवर्ग ? समाज की जो दशा इस समय हो रही है उसी का ऊपर चित्र खींचा गया है। ऋषि दयानन्द को जिस पवित्र रात्रि में बोध हुआ था वह हमारे सन्मुख है। क्या यह अच्छा न होगा कि इसी पवित्र रात्रि में प्रत्येक नरनारी एकान्त में

बैठ कर अपनी अवस्था पर विचार करें और अपने भीतर यदि उपर्युक्त त्रुटियों में से किसी को पावें तो उसे निकाल कर बाहर फेंकदेवें और कमर कस कर तयार हो जावें और यत्न करें और बलपूर्वक यत्न करें कि आर्यसमाज के कर्तृत्व का मुंह फिर प्रचार युग की ओर फेर देवें। जो संस्थायें अपने पांव खड़ी हो सकती हैं, अपने पांव खड़ी हो जावें, वे हमारे सर माथे पर। परन्तु जिन संस्थाओं के लिये सदैव भीख मांगनी पड़ती है उनको फेरफार कर इस योग्य बना देवें कि उनके लिये भीख मांगना बन्द हो जावे और जो संस्थायें ऐसी हैं कि जिनका काम भीख मांगे बिना चलना असम्भव है उन्हें कल की जगह आज ही बन्द कर देना चाहिये और निश्चय कर लेना चाहिये कि भविष्य में कोई नई संस्था न खोली जावे और सारी शक्ति प्रचार में लगाई जावे और न केवल धन ही प्रचार में लगाया जावे किन्तु तन और मन भी जिससे आत्म सुधार भी हो और आर्यसमाज फिर सुपथ पर आकर इस योग्य हो जावे कि दीर्घायु प्राप्त करे।

——:o:——

ऋषि-बोध

——:o:——

(लेखक—हिज हाईनेस राजाधिराज श्रीमान् सर नाहरसिंह जी बहादुर K.C.I.E. शाहपुरा स्टेट राजपूताना)

——:o:——

आज ही की वह तमोमयी परंतु पवित्र रात्रि थी जिसमें बालक मूलशंकर के हृदय में क्रान्तिकारी बिजली चमकी। प्रायः सभी मनुष्यों के जीवन में ऐसे समय एक से अधिक बार आते हैं जब कि उसे संसारके झंझटों होती मिथ्या विचारों, एवम् भूल भुलैया से ग्लानि होकर सत्यान्वेषण के लिए प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होती है, परंतु कितने ऐसे हैं जो हृदय की उस ध्वनि को सुनते हैं।

बीज बोया जाता है सभी क्षेत्रों में, परंतु उवरा भूमि में वह उगता है वृद्धि पाता है, एवम् फलीभूत होता है। विरुद्ध इसके ऊवरा भूमि में अंकुरित होकर ही नष्ट हो जाता है ठीक यही दशा उन दैवी बिचारों की भी है, जो परमात्मा की तरफ से प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होते हैं परंतु शुद्ध आत्माओं में ही वे वृद्धिंगत होते हैं।

बालक मूलशंकर उन्हीं पवित्र आत्माओं में से थे, जिनके हृदय में इस प्रकार के विचार पल्लवित हो कर संसार के पथ प्रदर्शक बनते हैं। यही हुआ भी। उस क्रांतिकारी बिजली ने, सत्यान्वेषणा के लिये मूलशंकर को दयानन्द बनाया और उनसे संसार के धार्मिक जगत के इतिहास का नवीन अध्याय आरम्भ कराया जिसको न केवल भारत प्रत्युत सारा संसार आश्चर्य की दृष्टि से देख रहा है और यद्यपि उस समय विरोध करता था, आज हृदय से स्वागत करने को समुद्यत है।

॥ इति ॥

दयामय दयानन्द

(लेखक-प्रो० ताराचन्द्र गाजरा एम० ए०)

भगवान् दयानन्द के जीवन चरित्र के एक लेखक महोदय कहते हैं-: एक अत्यंत माधुर्य्यता की लहर उन के जीवन में प्रवाहित होती थी। जिस समय वे प्रेम-मय बैठे होते थे, उस समय उनके मित्र जीवन की कठिनाइयों की समस्या हल करते थे। उस समय उनकी आकृति से एक ज्ञानमय आभा प्रज्वलित होती थी। वे एक बृद्धमय विचार रूप में पशुवत कार्य प्रणाली का निदान अपनी विद्वता से दमन करते थे। और उन के भिन्न प्रकार के अनुचित कृत्यों के उत्तरदायत्व का भार उन पर आरोपण करते थे। वे अपने अमूल्य विचारों द्वारा उन अंधकारमय समस्याओं को जिन में जनता लिप्त थी प्रकाश करते थे।

उनका विशाल हृदय दीन अनाथों की दशा तथा निसहाय निधनों की अधःपतन रूपी दशा को देखकर सदैव अश्रुपात किया करता था। वे नित्य उन ही के प्रति जीवित रहे और उनहीं के लिये कार्य करते रहे। उन के हृदय की विशालता तथा दयालुता का परिचय भली प्रकार मिलता है।

निसंदेह यह सत्य है कि वीरवर दयानंद ने लगातार अनाथ तथा निसहाय-अबलाओं के लिये अनन्य कार्य किए। वे अनुभव करते थे कि भारत की देवियों ने अपने प्रचीन गौरव को भुला दिया है। वह सामान्य अधिकार जो एक पत्नी को पति के प्रति आवश्यक थे भुला बैठी हैं। मध्य काल में पुरुष स्त्रियों को अपवित्र और पापमय समझते थे। उस समय के धर्मावलम्बी उनको अपने सत् संग में मिलाने के लिए भी कंपित होते थे, ऐसे समय में वीरवर दयानंद ने मनुष्यों को पुनः उनके प्राचीन सिद्धान्तों को वेद और स्मृति द्वारा जाग्रित किया और बतलाया कि सुख सम्पति तथा उन्नति केवल उसी जगह निवास करती है जहां स्त्रियों की पूजा और सन्मान होता है। पौराणिक जहां स्त्रियों को विद्या पठन पाठन का अनधिकारी कहते थे वहां वीरवर दयानंद ने सर्व प्रथम शिक्षा पाने का अधिकार स्त्रियों को ही प्राप्त कराना सिद्ध किया है। ऐसे समय में जब कि देवियां किसी प्रकार का भाग जन समुदाय को सेवा में न लेती थीं। केवल उन ही के प्रताप से माता भगवती देवी अपने जीवन को देश की देवियों के सन्मान उधार के कर्तव्य क्षेत्र में आ गई।

उनके हृदय में विधवाओं के प्रति इतना अनुराग था कि वे प्रायः दुखित होकर नीरस भाव से कहा करते थे कि भारत के दुखों का एक कारण निसहाय अबलाओं के मार्मिक हृदयों की वेदनाओं का शाप है।

निस्सहाय अनाथों के प्रति उन के हृदय में सदैव स्थान था, उन ही के हेतु उन्होंने अपने स्वीकार पत्र में निसहाय अनाथ बच्चों के लिए एक अनाथालय के लिए स्वीकृती दी। उनकी इच्छानुसार फीरोजपुर में उसी समय एक अनाथालय की स्थापना की गई और उसको सहायतार्थ उन्हों ने वेद भाष्य द्वारा तथा इन महाराणा सज्जनसिंह से द्रव्य की याचना की।

वे केवल इन निस्सहाय पीड़ित अनाथों के ही प्रेमी नहीं थे, वरन वे पापात्माओं तथा अपराधियों के भी प्रिय थे। वीरवर के हाथों में उन को विष देने वाली षड़यंत्रता के प्रमाण थे। किंतु वे अपराधी के विरुद्ध कोई कार्य करना अपनी भीरुता समझते थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से वह पत्र नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इसी प्रकार एक सिपाही ने जो स्वामी जी के प्रति मुग्ध था एक व्यक्ति को पकड़ कर उसे दंड दिया था। किंतु जब यह सूचना उन के पास पहुंची वे दुखित हुये। काशी में भी ऐसे हो वोरवर दयानंद को एक दुष्ट ब्राह्मण विष मिला हुआ भोजन लाया किंतु भोजन करने के प्रथम ही उन्होंने अपने योगाभ्यास से ब्राह्मण कि छलता का अनुभव कर लिया कि भोजन में विष मिला हुआ है। उन्होंने ब्राह्मण से प्रथम भोजन के लिये कहा किंतु वह ऐसा करने को सहमत न हुआ। वीरवर की रोष तथा तामस मय आभा को देख कर वह बहुत भयभीत होकर पृथ्वी पर मृत समान गिर पड़ा। उसका सारा शरीर कुम्हलाकर पीला पड़ गया। उन के एक मित्र ने उसे पुलिस द्वारा दंड दिलाने की आयोजना की किंतु वीरबर जो संसार को बंधन से मुक्त कराने तथा अज्ञान अंधकार के दूर करने के हेतु आया था, अपने मित्र के प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ थे और उन्होंने सहर्ष अपराधी को बिना किसी प्रकार का दंड दिये विदा कर दिया।

ये केवल मनुष्यमात्र ही के प्रेमी न थे। वे प्राणी मात्र से प्रेम करते थे। वास्तव में उनका यह कार्य एक विचित्र कार्य है। किंचितजन ही उस कार्य को समझ सके जो वीर दयानन्द ने कर दिखाया। वे भगवांन् बुद्ध की तरह अहिंसा के प्रेमी थे, जैसा कि उन के एक पूना के व्याख्यान द्वारा विदित होता है, जहाँ कि उन्होंने पशु यज्ञ का घोर विरोध करते हुये कहा कि यह किसी प्रकार उचित नहीं है।

पशु यज्ञ करते हुये उन के प्राणों की बलि देना केवल पाखंडी ब्राह्मणों का षड़यंत्र है। मांस खाना सर्वदा वर्जित है। महाराणा सज्जन सिंह उदयपुर नरेश को उन्होंने उन के राज्य से पशु हत्या बंद करने के लिये बड़ी दृढ़ता से प्रेरणा की और महारानी विक्टोरिया को भी अपना मंतव्य पशु हत्या के बंद करने के लिये तथा उन की रक्षार्थ गौरक्षणी सभाओं की स्थापना तथा कृषी विभाग की रक्षा की प्रार्थना की। वीरवर की रची हुई गो करुणानिधि, पूर्णरूप से शाकाहारी जीवन की बहुमूल्यता का प्रमाण है। धन्य है! उनके घोर परिश्रम से आज भारत के पंडित और वेद ज्ञाताओं के समाजों की गहरी निद्रा भंग हुई है। बड़े विद्वान पंडितों ने वीरवर की वेदयुक्ति तथा उनके प्रमाणों द्वारा यह घोषित कर दिया है कि वेद में धार्मिक समयों पर किसी भी प्रकार की पशुहत्या सर्वथा निन्दनीय तथा घोर दुष्कर्म है।

इस परिवर्तन के होने से जन समुदाय ने भली प्रकार से वीर की भूरि भूरि प्रशंसा इस जघन्य कर्म को रोकने में की है। वह मनुष्य जो अन्धकार और अज्ञान में लिप्त होकर, पशुहत्या, नरहत्या करने को उन रक्त के प्यासे देवताओं को पिपासा शान्त करने के लिये निरपराध जीवों की बलि देते थे। जिन्होंने आज से प्रथम का इतिहास मनन किया है। वहां कोई भी ऐसी पुस्तक दृष्टिगोचर नहीं होती, जहां कि ऋषि के विचार सम्मिलित न किये गए हों। भारत में आज कोई भी ऐ । कृतघ्न प्रतीत नहीं होता जो आज वीर की महान वीरता को प्रशंसा न करता हो।

आइये आज हम सब मिल कर इस पवित्र अवसर पर उस वीर और दयालु का स्मृतिदिवस मनायें। इति।

——:o:——

आर्य सार्वदेशिक सभा के सामने काम

———:o:——

(ले०--श्री बा० देवीचन्द एम० ए० होशियारपुर)

सार्वदेशिक सभा भारतवर्ष के आर्यों की शिरोमणि सभा है। इस वक्त आर्यसमाज की सबसे बड़ी आवश्यकता वेदों का अंग्रेजी भाषा में तर्जुमा है। विदेश प्रचार के लिये आर्यसमाज में आवाज उठ रही है मगर विदेश में प्रचार नहीं हो सकता जब तक कि वेदों का पाश्चात्य भाषाओं में अनुवाद न प्रकाशित किया जावे। यह आशा करना कि संसार के लोग हमारे वेदों को संस्कृत या भाषा में पढ कर वैदिक धर्मी बन जायंगे असम्भव प्रतीत होता है। यदि हम वैदिक धर्म का प्रचार अन्य देशों में करना चाहते हैं तो हमारे लिए यह मार्ग उत्तम है कि हम उन मुल्कों की भाषाओं में अपना साहित्य तैयार करें और ईश्वरीय पुस्तकों का भाष्य उन भाषाओं में तैयार करें। ईसाइयों ने लेटिन भाषा से इंजील का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया है और फिर अंग्रेजी से संसार की ५२७ भिन्न २ भाषाओं में इंजील के अनुवाद किये। यदि इस वक्त ईसाई मत भिन्न २ देशों में फैला हुआ है तो उसका एक कारण यह भी है कि ईसाई मिशनरियोंके पास लगभग संसार की हर एक देश की भाषा में इंजील का अनुवाद मौजूद है। जो सुगमता उन्हें अपने प्रचार में इस कारण से प्राप्त हुई है वह आर्यसमाज को नहीं है। मुसलमान भी इस आवश्यकता को अनुभव कर रहे हैं। अहमदिया जमात लाहौर के मिस्टर मोहम्मदअली एम० ए० ने अंग्रेजी भाषा में कुरान का तर्जुमा छपवा दिया है। इस समय वेदों का अनुवाद ग्रीफिथ आदि अंग्रेज लेखकों के सामने हैं वे हमारी दृष्टिकोण से ठीक नहीं हैं। वे अनुवाद इस विचार से तैयार किये गये हैं कि सभ्य देशों के सामने वेदों को नीचा दिखाया जाय और इंजील की शिक्षा का महत्व दिखाया जाय। वे अनुवाद सद्भावनाओं पर केन्द्रित नहीं है इसलिये आवश्यकता है कि आर्यसमाज अपनी ओर से वेदोंका अपनी भाषा में अनुवाद छपवाये। यदि आर्यसमाज २५ लाख रुपये वार्षिक अपने कालिजों स्कूलों और गुरुकुलों पर व्यय कर सकता है और एक करोड़ रुपये से अधिक इनको इमारतों में खर्च कर सकता है तो क्या वह ५ लाख रुपया सार्वदेदिक सभा के हाथ में वेदभाष्य के लिये नहीं दे सकता? वस्तुतः बात यह है कि कोई विशेष प्रयत्न किसी संस्था की ओर से इस काम के लिये अभी तक नहीं हुआ। मेरा विश्वास है जब प्रयत्न होगा हम अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे

सार्वदेशिक सभा में जो कमी है वह यह है कि आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा को अभी तक इसने अपने साथ संबधित नहीं किया है। यह कमी सार्वदेशिक सभा की शान और उसके गौरव को घटाने वाली है। इसका अखिल भारतीय स्वरूप इस बात का द्योतक है कि सब प्रान्तों की आर्यप्रतिनिधि सभायें इससे संबधित हैं। मुझे आशा है कि सार्वदेशिक सभा इस त्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयत्न करेगी। आर्य कांग्रेस के अवसर पर विषय निर्धारिणी समिति में इस विषय पर विचार हुआ था और निश्चय हुआ था कि जहां तक हो सके शीघ्र ही इस विषय पर सभा विचार करके प्रादेशिक सभा को अपने साथ सम्बन्धित करले परन्तु अभी तक कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला है। जब पांच लाख रुपया सार्वदेशिक सभा के पास हो जावे तब वेदों का अंगरेजी में भाष्य करने के सम्बन्ध में क्रिया-

त्मक काम अपने हाथ में ले सकती है। भाष्य का क्या ढंग हो इसके सम्बंध में तफसील में जाना पसन्द नहीं करता मैं उसी समय अपने विचार आर्य जनता या सार्वदेशिक सभा के सम्मुख रखूंगा। आर्यसमाज को यह बात समझ लेनी चाहिये कि वेद उसकी जान है, वेद के उद्धार से आर्यसमाज का उद्धार और वेद की हानि में आर्यसमाज की हानि है।

(२) सार्वदेशिक सभा के सामने दूसरा काम ग्राम्य प्रचार है। आजतक आर्यसमाज की कोशिश नगरों तक सीमित रही है। हमारी शिक्षा, संस्थाएं, हमारी समाजें, सभायें, उत्सव, सब नगरों के भीतर प्रचार के लिये काम में आते हैं। जाति शहरों में नहीं वरन् गांवों में निवास करती है। ७० प्रतिशतक लोग ग्रामों में बसे हुए हैं। इन लोगों तक आर्यसमाज की आवाज अभीतक नहीं पहुंची। लाखों करोड़ों प्राणी भारतवर्ष के गांवों में ऐसे रहते हैं जो आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द का नाम तक नहीं जानते। हमें अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना चाहिये और अपनी शक्तियों को नगरों पर व्यय करने के बजाय अब गांवों की ओर लगाना चाहिये। शहरों में प्रचार के लिये एक प्रकार के उपदेशक होने चाहियें जो कि अधिक विद्वान और बुद्धिमान हों। ग्रामों में प्रचार के लिये दूसरे प्रकार के उपदेशक होने चाहियें जो श्रद्धालू, तपस्वी, त्यागी, और प्रेमी हों तथा जो लोगों के साथ मेलजोल पैदा करना जानते हों जिनके भीतर व्याख्यान की शक्ति भले ही अधिक न हो किन्तु बातचीत करने की शक्ति हो जो एक स्थान पर स्थिर रूप से काम कर सकें। हमारे प्रचार की बर्तमान रीति कि एक उपदेशक एक स्थान पर एक या दो दिन से ज्यादे नहीं ठहरना अस्वाभाविक है और इसका प्राभव बहुत थोड़ा होना है। इसको बदलना चाहिये। सरल भाषा, गुरुमुखी, उर्दू, व भिन्न २ भाषाओं में सामाजिक सिद्धान्त पर ट्रैक्ट, व स्वामीजी का जीवन चरित्र, अच्छी २ सामाजिक भजन पुस्तकें उन उपदेशकों के पास फरोख़्त के लिये मौजूद रहने चाहियें। मैं मुफत ट्रैक्ट बांटने के हक में नहीं हूं। हां मैं इस बात को पसन्द करता हूं कि विद्वान पण्डितों को हम स्वामी जी कृत पुस्तकें, संस्कार विधि, सत्यार्थप्रकाश व ऋग्वेद भाष्य भूमिका सार्वदेशिक व अन्य प्रांतिक सभाओं की ओर से पढ़ने के लिये पेश करें ता कि पुस्तकों के देखने से उनके ख्यालात में परिवर्तन हो, मगर सर्वसाधारण को मुफ़्त ट्रैक्ट देने के लिए गरीब आर्य समाज के पास धन नहीं है और नहीं मुफ्त चीज की लोग कदर करते हैं। कीमत थोड़ी बहुत हर ट्रैक्ट की वसूल करनी चाहिये चाहे वह लागत मात्र पर ही बेची जावें जैसे ईसाई लोग करते हैं। या प्रकाशन के लिए किसी प्रकार घाटा पर स्वामी जी के जीवन चरित्र पर हमें ग्राम प्रचार में ज्यादा जोर देना चाहिये। वैदिक धर्म की फिलासफी ये लोग नहीं समझ सकते, हमें फिलासफी पर ज्यादा बहस ग्रामों के प्रचार में नहीं करनी चाहिये। तालीम के लिहाज से चूंकि गांव के लोगों का मस्तिष्क इतना विकसित नहीं इस लिए हमें उनके दिमाग को नहीं बल्कि दिल को अपील करनी चाहिये। यह तरीका सिखों ने इस्तेमाल किया है और उन्हें सफलता मिली है। अगर आर्य समाज गांव प्रचार में कामयाबी चाहता है तो सिख धर्म की पैरवी उसे करनी चाहिए। स्वामी जी में श्रद्धा भक्ति पैदा करने की कोशिश करनी चाहिये। उनका विशुद्ध आचरण साधारण लोगोंके सन्मुख रखना चाहिये। विद्वानों को अपने सिद्धांतों से वैदिक धर्म की ओर खींचना चाहिये और साधारण मनुष्यों को महर्षि के जीवन के उच्च आदर्शसे आर्यसमाजमें प्रविष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। मुझे पूर्ण आशा है कि सार्वदेशिक सभा इन दोनों बातों की ओर ध्यान देगी और क्रियात्मक काम की सूरत निकालेगी।

———:०:———

आदर्श आर्य वीर दल

———:०:———

(लेखक—कुंवर चांदकरण शारदा, अजमेर)

———:०:———

आज महर्षि दयानन्द का जन्म-दिवस है। मेरा हृदय ऐसे सर्व श्रेष्ठ इस युग के महात्मा के जन्मोत्सव पर खुशी से उछल रहा है, क्योंकि जिस कर्म-युग को लाने के लिए भगवान दयानन्द ने जन्म धारण किया था वह कर्मयुग अब आर्यवीर दलों के संगठन से आ रहा है। अनाथ बच्चों, विधवा स्त्रियों, अथवा अन्य कष्टों में फंसे हुए लोगों की रक्षा करने में प्रयत्नशील आर्य नवयुवक अब आगे बढ़ रहे हैं। और शुद्धि के सिपाही हिन्दू जाति को धर्मच्युत होनेसे बचाने में अग्रसर हैं। सहस्रों युवकों ने आर्यधर्म, आर्य जाति और आर्यावर्त की सेवा का व्रत लिया है और आर्य जाति के जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षा के लिए हमारे वीरयुवक कटिबद्ध हैं। न केवल बिना भेदभाव वे मनुष्य जाति की निष्काम सेवा कर रहे हैं परन्तु अपने को उस सेवा के योग्य बनाने के लिए वे अपनी और समस्त आर्य जाति की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति में अपूर्व उत्साह प्रदर्शन कर रहे हैं। मुझे वह दिन शीघ्र ही आने वाला दृष्टिगोचर हो रहा है जब कि प्रत्येक भारतीय युवक इन आर्य वीरों का अनुकरण कर उत्साह की जीती जागती प्रतिमूर्ति और असीम साहस वाले बनेंगे। सच्चे आर्यवीर सदा पर्वत की भांति अचल, और समुद्रकी भांति गंभीर रहते हैं। माया की ममता, पिता का प्रेम, धन वैभव वा लोभ और मृत्यु का भय उन्हें अपने कर्तव्य से नहीं डिगा सकता। इन्हीं आर्यवीरों की दैवी ज्योति के आलोक से फिर भारत के प्राण जगमगा उठेंगे, और विपक्षियों के हृदय दहल उठेंगे। यह आर्य वीर सिर पर कफन बांध कर वह अपूर्व सेवायें करेंगे कि इतिहास के पृष्ठ इनकी उत्तम अभूतपूर्व सेवाओं से रंग जावेंगे। जिन २ सांसारिक जीवों की नीवें अत्याचार की शिला पर पड़ी हैं, जिन जिन पापियों के जीवन रक्त से प्लावित हैं, जिन दुष्टों ने पापों, पाखण्डों, दमन और जुल्मों की ईंटों से अपनी भव्य इमारतें खड़ी कर रखी हैं, जो गरीब और असहाय मनुष्यों को दुःख देना ही अपना गौरव समझते हैं, जिनके भवनों के ज़र्रे २ से करुणाभरी दुखियों की आहें निकल रही हैं, उन सब इमारतों और उन इमारतों में रहने वाले पापियों को यह आर्यवीर नेस्तोनाबूद कर सुन्दर आर्य आदर्श की धर्मध्वजा फहरावेंगे। इन आर्य वीरों पर अपने आदर्श के निभाने में लाखों मुसीबतें आवेंगी परन्तु इनका बलिदान दुनियां की आंखों को चकाचौंध करेगा। "बीर बन्दा बहादुर" के समान लोहे की गर्म २ सलाखों से इनके टुकड़े टुकड़े भी उड़ाये जावेंगे तो भी यह उफ नहीं करेंगे, क्योंकि यह आत्मा को अमर अजर मानने वाले वीर युवक होंगे जो अत्याचारों के उत्तर में हंस कर उत्तर देंगे कि हम इस नश्वर शरीर के परे हैं, हमें कुछ भी कष्ट नहीं हो सकता।" चाहे इन्हें गुरु अर्जुनदेव के समान गर्म तवे पर भूना जायगा और ऊपर से गर्म २ तैल डाला जायगा, पर यह जरा भी उफ नहीं करेंगे, और इनकी मधुर मुस-

ध्यान में रत्ती भर भी फर्क न आवेगा। चाहे इन्हें "कवि गङ्ग" के समान हाथी के पैरों तले रोंदा जावे। या "भक्त प्रहलाद" के समान पहाड़ से गिराया जावे या भक्त "मीरां" के समान काले नाग से डसाया जावे या जहर का प्याला पिलाया जावे, सती देवियों के समान जिन्दा चिता में जलाया जावे, या गुरु गोबिन्दसिंह के बालकों के समान ज़िन्दा दीवार में चुनवाया जावे, या "बीर हकीकत", धर्मवीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द के समान कत्ल करवाया जावे, या वीर 'अभिमन्यु' के समान छल से चक्रब्यूह में वध किया जावे पर यह वीर प्रिय वैदिक धर्म न छोड़ेंगे और अपने आर्यत्व की आन व शान तथा आर्य सभ्यता जीवित रखने के लिए सदा सर्वदा बलिदान होने को तत्पर रहेंगे। यह कायरों की भांति भाग कर कुत्ते की मौत कदापि नहीं मरेंगे, बल्कि सदा यही कहेंगे कि दुनियां में जो आता है उसे पहले या पीछे एक न एक दिन मरना है फिर बहादुरी की मौत क्यों मरें! अपनी आत्मिक निर्बलता के कारण इन आदर्श आर्यवीरों को लोग उतावले पथभ्रष्ट आदर्शवादी पागल कहेंगे। उनके यश बढ़ाने के स्थान में सदा उनकी अपकीर्ति करेंगे। कभी २ तो इनका द्वेष यहां तक बढ़ेगा कि अच्छे २ भजनीकों और व्याख्यानदाताओं को बुलाकर मीटिंग कर कर आदर्श आर्य वीरों के प्रति घृणा प्रदर्शन कर अखबारों में प्रस्ताव छपवाये जायेंगे शायद घरवाले भी आदर्श युवकों को नहीं अपनावेंगे। कोई कोई पापी बाप तो स्वार्थ के कारण उसे अपनी संतान तक होने से इन्कार करेगा और उसके विरुद्ध गवाही तक देने को तत्पर रहेगा। परन्तु एक निर्विवाद निर्विकल्प ओंकार का ध्यान कर प्रिय आदर्श आर्य वीरों! आप डटे रहना और अपने व्रतसे मत टलना। ऐसी आपत्ति के समय स्मरण करना उन वीरों को जिन्होंने अनेक संकट सह कर धर्म निभाया। प्रिय आर्य वीरों! उस समय स्मरण करना कि तुम किस महान कार्य के लिये बलिदान हो रहे हो। दया करना उन अकाल पीड़ितों पर जो दाने दाने, अन्न के लिये इस भारत माता की गोद में तड़फ रहे हैं। दया करना उन सरदी से ठिठरे हुए गरीबों पर जिनको पूरा वस्त्र न मिलने के कारण वे सरदी में जकड़ २ कर निमोनिया से मर रहे हैं। इस गरीब भारत के जितने मनुष्य संसार व्यापी महासमर में नहीं मरे उससे कहीं अधिक बीमारियों से मर रहे हैं। अकेले इन्फ्लुएंजा की बीमारी से सिर्फ ६ मास में ६० लाख आदमी मर गये, व प्लेग हमारे लाखों भाइयों को प्रत्येक वर्ष मृत्यु के मुख में ले जा रही है। मलेरिया और दूसरी बीमारियों से ४० लाख मनुष्य प्रति वर्ष हमारी मातृभूमि में मर रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने आज संसार को अधिक सुखी अधिक पवित्र बनाने के लिये जन्म लिया था, क्या आप भारत को भी अधिक सुखी अधिक पवित्र और अधिक स्वस्थ नहीं बना सकते? प्रिय आर्य वीरो! आज ऋषिबोधोत्सव के पवित्र दिवस भारत की उस विकराल दुर्दशा का ध्यान करो जिसको मिटाने के लिये आज ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया था। हमने अभी समुद्र में एक बूंद के बराबर काम नहीं कर पाया है। महर्षि दयानन्द आदर्श आर्य वीर थे। हमें आज के शुभ दिवस प्रण करना चाहिये कि हम आदर्श आर्य वीर बने। लोग कहते हैं आह! अब वह पवित्र उत्साह और साहस कहां? कहां है वह निर्भीकता और तत्परता? आज कितने हैं जो पूर्वजों के समान बलिदान होने को तत्पर हैं? आप अपने वीरतायुक्त आदर्शजीवन से निराशावादियों की निराशा भगाइये और आर्य वीर दल के कर्मवीर स्वयंसेवक बनकर संसार को बतला दीजिये कि आर्यवीर धर्मार्थ क्या २ बलिदान कर सकता है? बोलो वैदिक धर्म की जय, महर्षि दयानन्द की जय।

———:०:———

वेद, वेदोद्धारक दयानन्द और आर्यसमाज

———:०:———

(लेखक—श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ)

———:०:———

प्राचीनता की दृष्टि से वेदों का स्थान कितना उच्च है इस बात को 'मनुस्मृति' ने जितना अधिक और अच्छी तरह स्पष्ट किया है उतना किसी भी स्मृति ग्रन्थ ने स्पष्ट नहीं किया —

पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयञ्चवेद शास्त्रमिति स्थितिः ॥९४॥
या वेद बाह्याः स्मृतयः याच काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य ।
तमो निष्ठा हि ताः स्मृताः ॥९५॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च
यन्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया
निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥
चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाः
चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च
सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥९७॥
............................इत्यादि ॥

इसी उच्चस्थिति को श्री स्वामीजी मानते थे और इसी उच्चआसन पर पुनः वेदों को स्थित रखने के लिये श्री स्वामी जी का पवित्र प्रयत्न था। भगवान् शंकराचार्य भीवेदों को इसी प्रकार मानते थे, किन्तु ब्राह्मण वाक्यों को भी वेदों का सा सम्मान देते थे। स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रन्थों क्या किसी भी लौकिक ग्रन्थ को वेदों का सा सम्मान नहीं दिया। हां, वेदानुकूल होने से उनका प्रामाण्य और वेद विरुद्ध होने से उनका अप्रामाण्य माना है। मनुस्मृति ने भी इसी बात को स्पष्ट माना है। भगवान शंकराचार्य को अपने समय में वैदिक प्रणाली का पुनरुद्धार करने में जितना परिश्रम पड़ा उससे अधिक परिश्रम इस युग में स्वामी जी को करना पड़ा। इस युग की सी सैकड़ों मतमतान्तरों की विचित्र परिस्थिति उस समय में नहीं थी। भगवान् शङ्कराचार्य को केवल एतद्देशीय, और वह भी केवल बौद्ध मतोनुयायियों से पाला पड़ा था। भगवान् दयानन्द को एक सौ एक घर के मत और विदेशी ईसाई मुसलमान आदि अनेक मतों से युद्ध करना पड़ा। स्वामी दयानन्द को पाश्चात्य विज्ञान युग से भी टक्कर लेनी पड़ी।

स्वामी दयानन्द और शङ्कराचार्य्य दोनों ही प्रतिभाशाली संस्कारी महापुरुष थे। यदि बौद्धकाल में शङ्कर भगवान न होते तो आगे वैदिक प्रणाली का ह्रास ही होता और यदि इस युग में दयानन्द न होते तो वेदों का महत्व मिट ही जाता। स्वामी दयानन्द ने वेदों को निष्कलंक करने का जितना प्रयत्न किया है उतना प्रयत्न महाभारत के पश्चात् लेखक की सम्मति में—किसी ने नहीं किया। यदि स्वामी जी अपने जीवन काल में ही चारों वेदों का भाष्य करने में समर्थ होते (ईश्वरीय इच्छा नहीं थी, उनको जीवनकाल में अन्य अनेक गृह संशोधन अर्थात् समाज संशोधनादि अनेक कार्य थे जिससे केवल ऋग्-यजु पर प्रकाश डाल सके) तो वह एक देखने योग्य बात होती। अब तो वेदोद्धार का समस्त भार उन के अनुयायियों

पर ही आ पड़ा और वह भार तब उतरेगा जब कि आर्यसमाज के होनहार नवयुवक विद्वान-एक नहीं सैंकड़ों-केवल वेदोद्धार के निमित्त ही अपने आप को अर्पण कर देवें। ऐसे नवयुवक संसार चिंता, वृत्ति चिंता आदि से परे होने चाहिये। हमने पिछले पचास वर्षों में देख लिया कि अल्पश्रुत संसारी वृत्तिके विद्वानों से शास्त्रों का उद्धार नहीं हो सका, वेदोद्धार की बात तो कौन कहे-प्रत्युत हम एक विचित्र उत्क्रान्ति देख रहे हैं और अपनी आंखों से देख रहे हैं वह यह कि आर्यों की संतान वेद शास्त्रों की श्रद्धालु नहीं निकल रहीहै। सार्वदेशिकसभा एक ऐसी विद्वत्समिति का संगठन करे जिसका कार्य केवल वेदोद्धार ही हो। सार्वदेशिक सभा का मुख्य कर्त्तव्य भी यही होना चाहिये। संस्कृत में एक न्याय है कि "सति कुड्ये चित्रम्"दीवार हो तो चित्र खींचा जाय। वेद रक्षा हो तो समाज रक्षा भी हो और विदेश प्रचार भी। दूसरा प्रति तीन मासके पश्चात् प्रत्येक प्रांत में विद्वानों का अधिवेशन हुआ करे और वह अधिवेशन केवल घर के आर्यों के संदेह मिटाने के लिए हो। उसमें धर्म संशयों का निर्णय हुआ करे बाह्य प्रचार के साथ यदि गृहस्थिति न संभाली गयी तो आर्यों की जो जनसंख्या बढ़ रही है इससे कोई लाभ न होगा। आर्यसमाज की सत्ता और महत्ता तभी बढ़ेगी जब कि उपर्युक्त दोनों बातों की ओर ध्यान दिया जायगा। वेदों की रक्षा और आयसमाज का घनिष्ठ सम्बंध है। एक की रक्षा में दूसरे की रक्षा है। स्वा० दयानंद तो अब केवल आर्यसमाज के ही नहीं रहे वे तो संसार के महापुरुषों में आ गये। उनका मिशन भी अपना काम कर चुका। अब देखना है वर्त्तमान स्फूर्तिशाली समाज उस मिशन को कितना आगे बढ़ाता है। वेदपालित आर्यसमाज ही धर्मद्वारा संसार की रक्षा करने में समर्थ हो सकेगा।

इति

———:o:———

आर्य संस्कृति और ऋषि दयानन्द

———:o:———

(लेखक—राजरत्न आत्माराम जी अमृतसरी)

———:o:———

आर्य संस्कृति का आधार विज्ञान, तर्क वा मानव परोपकार है। इस महान् तत्व की इस युग में आदि तथा परम प्रचारक योगी राज ऋषि दयानन्दही हैं। उनसे पहिले हिन्दू जगत अपनी संस्कृति खोने के लिये विवश हो रहा था। ऋषि प्रदर्शित बुद्धिवाद वा अनुसंधान से इस समय हम सिद्ध कर सकते हैं कि हमारी उक्त संस्कृति की तरफ युरोप के भारी विद्वान भी आ रहे हैं। दृष्टांत की रीति से हम कुछ बातें लिखेंगेः—

(१) मानव धर्म शास्त्र अनुसार प्रत्येक शिखाधारी पाओं के बल बैठ रानें वा घुटने पेट की तरफ दबाकर मल त्यागन करता था और ग्राम व घर से एक कोस दूर जंगल में उक्त शौच के लिए जाया करता था। उक्त विधि के विरुद्ध विलायती कमोड प्रथा थी, जिसमें विलायती मनुष्य इस प्रकार बैठा करते हैं जैसे कुरसी पर। इस कमोड

प्रथा से जो हानियां व रोग आंतों को होते हैं उनको आजकल विलायत के सब नामी डाक्टरों ने अनुभव कर लिया हैं। अब वह एक मत से कमोड प्रथा का स्वयं खंडन कर रहे हैं। बम्बई के सरकारी मैडीकल कालेज में जो पाठ्य पुस्तक स्वास्थ्य संबन्धी है--उसमें कमोड प्रथा को त्यागने और "हिन्दू शौच विधि" का ग्रहण करने का उपदेश तथा आदेश साफ तौर पर दिया गया है।

(२) शिखाधारी लोग मिट्टी तथा जल से शौच के पीछे हाथ धोते हैं और मिट्टी वा राख से बरतन साफ करते हैं। डा० फार्बस (Dr. Forbs M. D.) लिखते हैं कि मट्टी तथा राख भारी Disinfectant (शोधक पदार्थ) हैं।

(३) भारतवर्ष में ब्राह्मण लोग प्रातः काल मीठे तेल तथा नमक को दातों की सब तरफों में घिसकर लार निकालकर पीछे बबूल की नरम ताजा दातून को धीरे धीरे चबा २ कर नरम कूची बना उससे दांतों को ही साफ करते और दातुन को बीच से चीर कर जबान पर फेर कर जबान का मैल दूर करते हैं। खाना खाने वा दूध पीने के पीछे बहुत से पानी के कुल्ले करने के साथ नमक भी दातों पर फिर मला करते हैं। मिठाई, गुड़, बरफ के पानी, बरफ की कुलफी, सोडा वाटर, चाय, तम्बाकू, मांस, शराब, अंडा, मछली, बिसकुट आदि विलायती पदार्थों को छूते तक नहीं। दिन में दो बार भोजन करते और दो पहर को मौसमी फल खाया करते हैं। इनके दांत जैसा कि डाक्टर Forbs (फार्बस) लिखते हैं १०० वर्ष तक दृढ़, उत्तम तथा सुन्दर रहते हैं और विलायती लोगों के दांत जो ब्रश सेवी तथा चाय, कुलफी, बरफ के पानी, सिगार, बिसकुट, मांस, मछली अन्डें और शराब पीते हैं उनको ४० वर्ष की आयु में दांतों के रोग हो जाते हैं।

(४) ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में कूप जल को आदर्श पीने का जल कहा है। प्रत्येक हिन्दू मंदिर व धर्मशाला में भारतवर्ष भर में आप कूप जरूर पावेंगे। शीतकाल में कूप जल गरम और गर्मियों में ठंडा होता है--इस लिए स्नान के लिए भी उत्तम है। अनेक प्रकार के क्षार (Soda) आदि कूप जल में होते हैं इससे अधिक पाचन होता है। नल जल को आज डाक्टरों ने इससे नीचे वर्ग का तथा हानिकारक माना है। Diseases of to day नामी पुस्तक जो एक नामी डाक्टर ने लिखी है--उसके पाठ से आप जान लेंगे कि नल जल हाजमे को नष्ट करता है कारण कि उसमें Lead poison (जस्त का विष) मिलता रहता हैं।

(५) केरुसीन तेल वा मिट्टी के तेल का लैंप जहां जले वहां Carbondioxide [विषमय धूम] इतना पैदा होता है जितना ११ मनुष्य सांस लेकर पैदा करें। छाती के रोग उक्त धूम से पैदा होते हैं। आंखों की ज्योति भी मन्द करता है। दो वर्ष हुए इंग्लैंड में Photographer's Gongress हुई थी--उसमें उन्होंने बिजली के लैम्पों को भी आंखों के लिये परम हानि कारक सिद्ध किया और अन्तिम निश्चय यह किया कि "Back to candles" अर्थात मोमबत्ती का युग फिर लाओ। क्या यह विजय हमारे सरसों के दीपकों की नहीं। Guard's Lamp [पगीबत्ती] में मीठातेल बराबर जल सकता है। यह पगी बत्ती हरीकेनों की प्रतिनिधि हो सकती है और खाने, सोने तथा पढ़ने के कमरों में वही हमारे सरसों के दीपक जो मोमबत्ती से बढ़कर ठंडी रोशनी देते हैं काम में आ सकते हैं।

(६) अंगरेजी राज्य से पूर्व घरों में देहली के मोटे दलदार लोहे के तवों पर लकड़ी वा कंडे चूल्हे में जलाकर मोटी रोटी बनाया करते थे। आज विलायती चूल्हे चल पड़े हैं जिनमें दुर्गन्धी वाला तेल जलाकर पतले बरतन में पकाई जाती हैं। Physical Culture के संपादक अमरीका में

जल्दी पक जाने वाले भोजनों को स्वाद तथा सार रहित लिख रहे हैं। हमारी दादी बड़े डलदार डेगचे में दाल पकाया करती थी वह स्वादु तथा सार युक्त होती थी। इस लिए हमें विलायती पकाने के साधनों को त्यागना होगा। अमरीका में इनके खंडन में नामी डाक्टर लेख लिख चुके हैं।

(७) मद्रास से जो Health नामी मासिक निकलता है उसमें नामी डाक्टरों ने सिद्ध कर दिया है कि High Heeled boots पहनने से देवियों को मन्दाग्नि रोग तथा प्रसव संबन्धी रोग होते हैं। हिन्दू चपली से यह रोग नहीं होते।

॥ इति ॥

---:o:---

"महर्षि महत्व"

---:o:---

(लेखक—पं० आर्यमुनि निखिलतन्त्र स्वतन्त्र प्रिंसिपल डी० एम० संस्कृत कालिज, मोगा)

---:o:---

मेरे विचार में हिंदू धर्म के संस्कार कर्त्ताओं में चार महापुरुषों का पद बहुत ऊंचा है [१] श्री मच्छङ्कराचार्य, जिन्होंने हिंदू फिलासफी को ऐसा पलटा दिया कि बौद्ध धर्म की निर्वाण फिलासफी का बीज भी अब ढूंढना दुष्कर है। दूसरे वैष्णव धर्म के मुख्य आचार्य स्वरामानुजाचार्य हैं। जिन्होंने अद्वैतवाद और मायावादसे तिरोहित वैदिक द्वैत फिलासफी को दुबारा जन्म दिया। यद्यपि रामानुजाचार्य्यका द्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद के नामसे प्रसिद्ध है, तथापि यह मत द्वैतवाद ही है क्यों कि यह जीव, ईश्वर और प्रकृति तीनों को अनादि काल से भिन्न २ मानते हैं, और सदैव के लिए यह तीनों तत्व भिन्न २ रहेंगे। यह मत इन्हों ने वेद, उपनिषद और गीता से प्रसिद्ध किया है। गीता के क्षेत्रज्ञाध्याय में प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावपि ॥ १६ ॥ प्रमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥ इत्यादि वाक्यों से जीव, ईश्वर तथा प्रकृति भिन्न २ प्रसिद्ध है। इस से हिंदू धर्म पर उन्होंने ऐसा उपकार किया कि अघटित घटना पटीयसि। मिथ्या मायासे मोहित जीवों को स्वतंत्र बना दिया, यूं कहो कि अकर्मण्यता के प्रवाह में बहते हुओं को कर्मण्यता की नौका पर सवार कर दिया।

तीसरे महापुरुष गुरु गोविन्दसिंह जी हुए हैं। जिन्होंने हिन्दु धर्म के योद्धाओं के सरद खून को फिर गरम कर दिया व यों कहो कि खैबर घाटी के आगे एक ऐसे दृढ़ चट्टान को आरोपित कर दिया कि जिस से हिन्दु धर्म अब पुराने आपदा के समय के समान अब आपद्ग्रस्त न रहेगा।

चौथे महर्षि दयानन्द सरस्वती थे, जिन्होंने वेदों के अर्थों को बहुत ऊंचा किया है। जैसाकि अष्टापदीभिराहुतः इन वाक्यों के अर्थ जहां कई एक टीका कार यह करते थे कि आठ पैरों वाले पशुका यज्ञ में हवन करे वहां महर्षि दयानंद सरस्वति ने आठ चरणों वाली वेदवाणी से हवन करें यह अर्थ किये हैं। बहुत क्या वेदों के प्राकृत् अर्थात् जङ्गली अर्थ करने वाले पुरुषों को ऐसा नीचा दिखला दिया कि अब वे सदियों तक सिर न ऊंचा करेंगे

सार यह है कि पशुमेध यज्ञकी धूर से जो वेद धूसर हो रहा था उसे पुनः उज्वल कर दिखलाया। इस विषय को नीचे की कविता लिख कर मैं समाप्त करता हूं।

कबित्त

तुलसी समान राम कथा न बखान कीन्ही,
शंकर समान बौद्धमत न भगायो है।
गोबिन्द गुरु समान दला न मलेच्छ दल,
कड़ा, कृपाण, कच्छ, केश न सजायो है।
पशुमेध यज्ञ धूर पूर रही वेदन में,
दयानंद मताधार वाको न उड़ायो है।
क्षण २ करते बिहाय गई औद्ध मेरी,
देखत ही देखत बुढ़ापा दौर आयो है॥

अब हम कहां हैं ?

(लेखक आयुर्वेद भूषण रामगोपाल शास्त्री, लाहौर)

आज ऋषि के बोध का दिन है। दयानन्द चरितामृत लिखने वाले कवि ने ठीक कहा है कि "नहिं नहिं हिलियो मूल संसारा"। अर्थात् शिव रात्रि की रात को मूल [शंकर] का हृदय ही नहीं हिला प्रत्युत सारे संसार का मूल (जड़) ही उस दिन हिला था। कवि की यह उक्ति बिलकुल ठीक निकली स्वामी जी महाराज के विचारों ने सारे संसार के विचारों को परिवर्तन करने में महान कार्य किया है।

धार्मिक जगत में परिवर्तन

स्वामीजी ने जिस समय प्रचार आरम्भ किया था उस समय बड़े २ विद्वान् स्वामीजी को आग्रही कहते थे। काशीके विद्वानोंने तो यहां तक कह दिया था कि दयानंद उल्टो गङ्गा बहानी चाहता है। मुसलमान और ईसाई स्वामीजी के आक्षेपों को सुनकर पहले पहल उपहास किया करते थे। प्रायः उस समय के सब मतावलम्बी यही कहते थे कि एक दयानन्द क्या कर सकता है। पर जो लोग उस समय भी दीर्घदर्शी थे उन्होंने ऋषि की शक्ति को पूरे तौर से अनुभव कर लिया था। इसके सम्बन्ध में हम एक विदेशी के विचारों का दिग्दर्शन कराते हैं:—

अमेरिका के मिस्टर ए० जे० डेविस ने तो तभी कहा था कि—

" To restore primitive Aryan religion to its first pure state was the fire in the furnace called " Arya Samaj " which Started and burned brightly in the bosom of that inspired son of God in India. Dayanand Saraswati. From him the fire of inspiration was transfered to many noble inflaming souls in the land of Eastern dreams. Hindus and Muslims run together to extinguish the consuming fire, which was flaming on all sides wiih a fierceness that was never dreamed of by first kindler Dayanand. And christians,

too, whose alter fire and sacred candles were originally lighed in the dreamy East, joined Muslims and Hindus in their efforts to extinguish the new light of Asia. But the heavenly fire increased and propogated itself."

भावार्थ—ईश्वर के पुत्र दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रदीप्त अग्निरूपी आर्यसमाज आर्यावर्त के पवित्र और प्राचीन धर्म की फिर से स्थापना करना चाहती थी। दयानन्द की आत्मा से निकली हुई इस अग्नि ने अनेकों आत्माओं को प्रभावित किया। हिंदू और मुसलमानों ने निरन्तर इस अग्नि को जो चारों ओर एक अचिन्तनीय वेग से फैल रही थी बुझाने का यत्न किया। ईसाई लोग जिनकी वेदी की अग्नि और [गिरजे] की बत्तियें भी प्रथम इसी पूर्व देश से ही प्रदीप्त हुईं थीं हिंदू और मुसलमानों के साथ इस भारत की नयी ज्योति को बुझाने का यत्न करने लगे। परन्तु वह ईश्वरीय अग्नि बढ़ी और फैली।

इस एक सम्मति से ही आपने अनुभव कर लिया होगा कि ऋषि की विचार तरङ्ग को बुझाने का कितना यत्न किया गया। भारत के करोड़ों व्यक्ति एक ओर और दयानन्द अकेला एक ओर। आप जरा उस परिस्थिति को अपने मन में लायें। साधारण लोग बिरादरी, भाई, स्त्री, माता, पिता वा मित्रों के विरोध को नहीं सहार सकते। थोड़े से विरोध पर अपने सिद्धांत से गिर जाते हैं। इसकी अपेक्षा आप ऋषि के समय को जरा मन में लाइये।

उस समय के मतावलम्बियों ने शरीर और वाणी से दयानन्द की इस अग्नि को बुझाने का यत्न किया, ऋषि पर मिथ्या आरोप लगाये, ऋषि को दुराचारी बनाने के लिये वेश्यायें भिजवायीं, ऋषिको विष दिये, तलवार और लाठीके वार किये, सरकार को भड़काया, जनता को भड़काया। परन्तु उस समुद्र वत् गम्भीरता ने इसकी पर्वाह न की। आज वही समय है कि उन मतावलम्बियों ने अपने अनुयायियों के विचार परिवर्तन को देख अपने अपने धार्मिक ग्रन्थों के भाष्यों में परिवर्तन किया है। पुरान, कुरान और अंजील के अर्थों में अब और तरहकी टीका टिप्पणी की जाती है। इतना अवकाश नहीं कि प्रत्येक के पोल खोले जावें। परन्तु आजकल के इन ग्रन्थों की इन टिप्पणी पढ़ने वाले सब जानते हैं। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि ऋषि की तर्क की तलवार के सामने सब झुके हैं।

सामाजिक परिवर्तन

इस समय सारे देश में [Social reform] का कोलाहल है। कांग्रेस तथा दूसरी संस्थाओं के नेता स्पष्ट कह रहे हैं कि जबतक हमारी सामाजिक कुरीतियें दूर नहीं होंगीं तबतक स्वराज्य स्वप्न है। ऋषि दयानन्द ने आज से पचास वर्ष पूर्व ही इस बात की घोषणा की थी। आप जिस ओर देखें उसी ओर स्वामी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में उल्लेख किया है। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की कृपा सेदेश में कुछ सामाजिक परिवर्तन हुआ है परंतु वह आशा जनक नहीं।

[१] राष्ट्रीय शिक्षा [२] विधवा विवाह [३] दलितोद्धार [४] ब्रह्मचर्य्य अर्थात लड़की लड़कों का बड़ी आयु में विवाह करना [५] मद्यादि मादक द्रव्यों का निषेध [६] गो पालन [७] कृषि सुधार [८] परदा [६] खान पान बन्धन नाश [१०] बेजोड़ विवाह [११] कन्या शिक्षण [१२] आर्य भाषा (हिन्दी) का राष्ट्र भाषा बनाना [१३] समुद्र पार जाना [१४] शुद्धि [१५] बेजोड़ विवाह [१७] संस्कारों पर अधिक व्यय [१८] जात पात बन्धन आदि आदि सब सामाजिक संशोधनों पर ऋषिने अपनी लेखनी उठायी और व्याख्यान दिये। उस समय

स्वामीजी को इन संशोधनों के कारण बहुत २ आपत्तियें उठानी पड़ीं।

आजकल देश में [Age concent commi ttee] अर्थात् विवाह का काल क्या होना चाहिये इस नाम की एक कमेटी दौरा कर रही है । क्या आश्चर्य नहीं करते, कि जिस प्रांत मेंभी वह कमेटी गयी है सब स्थानों पर प्रायः स्त्री पुरुषोंने स्त्रियों की विवाह की आयु १६ वर्ष हो यही गवाही दी है। अब "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी" वाली बात क्यों नहीं ? यह ऋषि और आर्यसमाज के प्रचार का फल है।

स्थान २ पर विधवा सहायक सभा खुल रहीं हैं, दलित जातियों को उठाने के लिये स्थान २ पर काम हो रहा है, विहार में परदे की प्रथा को उठाने को अब कितना यत्न हो रहा है। विवाह गुण कर्मा नुसार ही हों। प्राचीन ब्राह्मण, खत्री अरोड़े बिरादरियों के आडंबरको छोड़देना चाहिए इसके लिए भी स्थान २ पर सोसाइटियें बन रही हैं। स्थान २ पर गुरुकुलों, वा राष्ट्रीय शाला खोलने का विचार बढ़ रहा है, हिंदी प्रचार के लिये भरसक यत्न किया जा रहा है। कन्याओं को शिक्षित करने के लिये विचार हो रहा है।

प्यारे आर्यो ! यह सब काम जो इससमय अंकुर वा बृक्ष के रूप में परिणत हो रहे हैं इन सब की जड़ उस महर्षि के मस्तिष्क (दिमगाग) में थी उसी ने एक ऐसा भूकम्प ला दिया है कि सारे का सारा देश हिल गया है। सोई हुई जाति अब उठ खड़ीहुई है।

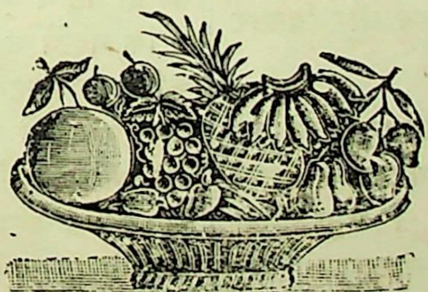
अब हम कहां हैं ?

प्यारे आर्यो ! ऋषि ने जो धक्का दिया उस से देश में जागृति हो गयी परंतु हम अब कहां हैं ! प्रत्येक आर्य दयानंद का सिपाही है। पुराने आर्यों ने इस काम में जो कष्ट उठाये हैं वे अकथनीय है। पर अब हम अपनें में एक त्रुटि देख रहे हैं। वह यह कि आप हम में वह उत्साह नहीं रहा जो पुराने आर्यों में था। हम अब उसी पुराने बहाव में और नयी सभ्यता के बहाव में वहे जा रहे हैं।

स्मरण रक्खो ऋषि दयानंद पांच हजार वर्ष के बाद एक हुआ है जिसने यह काम किया है। यदि उस की स्पिरिट नष्ट हो गयी तो आने वाले लोग हमें पापी कहेंगें

अतः हमें चाहिये कि फिर से अपनी कमर कस कर ऋषि के बचे हुए उस काम को करें जिस से—

[१] आर्य सभ्यता की विजय हो
[२] हिंदुस्थान की स्वतन्त्रता हो
[३] हिंदू जाति की रक्षा हो



निर्मल, निर्भय तथा सम्यक् तत्त्वदर्शी ऋषि दयानन्द

———:०:———

(लेखक—बा० श्यामसुन्दरलाल जी, बी० ए० एल० एल० बी०, मैनपुरी)

———:०:———

उमङ्ग उठती है ऋषि मूर्ति को बाहर बिठला।
लेखनी कहती है पूरा नहीं सकती दिखला॥

मेरे हृदय में जो ऋषि दयानन्द का चित्र है और उसके दर्शन से जो मुझको नित्य प्रति आह्लाद होताहै और मानवीय जीवन की विविध साधारण असाधारण घटनाओं से उत्पन्न सन्ताप के समय जो उस से मुझे आश्वासन मिलता है उसका 'दयानन्द बोधांक' के पाठकों को दर्शन और अवलोकन कराने के लिये मेरा इस लेख में संकल्प अवश्य है परन्तु ऋषि का विशाल और दिव्य चित्र जो ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के दीर्घ कालीन अध्ययन और अनुशीलन तथा उसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों के तुलनात्मक अवलोकन से मेरे हृदय में चिन्तित हुआ है उसकी प्रतिकृति पाठकों के समक्ष लघुरूप में प्रस्तुत करना मेरी निर्बल लेखनी के लिए विशेषतः संकुचित समय की दृष्टि से अति कठिन है। मैं प्रयत्न करूंगा कि अपने कुछ भाव और विचार ऋषिराज के विषय में प्रस्तुत करूं।

संसार के इतर ऐतिहासिक महापुरुषों की उन के जीवन चरित्रों उनकी जीवन घटनाओं द्वारा जो लिखी मिलती हैं मैंने भेट की है। मनुष्यों की अधिक संख्या पर अपना धार्मिक साम्राज्य स्थिर रखने वाले महात्मा बुद्ध के दर्शन किये। प्रभु ईसामसीह को भी विनीत भाव से देखा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा योगिराज कृष्ण से भी साक्षात् किया। इन महानुभावों के उज्ज्वल जीवनों की आभा बहुत आकर्षक है बहुत रम्य है। हृदय उन के दर्शनों से गद्‌गद् हो जाता है परन्तु तुलनात्मक दृष्टि का विचार छोड़ कर जो इन महापुरुषों के विषय में त्याज्य और अनुचित है केवल यथातथ्य विचार से देखा जावे तो महर्षि दयानंद का जीवन किसी अंश में भी न्यून निर्मल नहीं है प्रत्युत, सम्भव है कि कालकी निकटता से ऐसा भासित होता हो, अधिक प्रभायुक्त प्रतीत होता है। महर्षि के ब्रह्मचर्य्योपदेश के लिये जो उनके ग्रन्थों में यत्रतत्र प्रचुर रूप में ग्रंथित मिलता है महर्षि स्वयं दृष्टान्त मूर्ति थे। उन का महा व्रत जो उन्होंने बालकपन ही में इस जगत के रचयिता देवों के देव महादेव के साक्षात् करने का धारण किया था चाहता था कि वह पूरे व्रती बने। मल विक्षेपों से सम्यकरूपेण पृथक रहें। किसी प्रकार की कुत्सित् भावनाओं को अपने हृदय से स्पर्श करने का अवकाश न दे तथा केवल विमल विचार धाराओं का प्रभाव अपनी आत्मामें प्रवाहित होने दें। महर्षि के जीवन से प्रकट है कि उन्होंने उक्त प्रकार का ही महान व्रत निरंतर धारण किया। यही हेतु है कि महर्षि के धार्मिक विचारों की कठिन से कठिन आलोचना की जा रही है। विविध मतों तथा पंथों के अनुयायी भिन्न २ रूपों में महर्षि को स्मरण करते हैं, उन के रचे ग्रंथों पर उलटे सुलटे तक कटाक्ष करते है परंतु आज तक किसी को भी यह साहस नहीं हुआ है कि महर्षि के निर्मल चरित्र पट पर किसी प्रकार के धब्बे को बतला सकें। भौतिक शरीर है कि अपनी विशालता और तेज पुंजता में (Sound mind in a sound

body) "निर्दोष बुद्धि के लिये निर्दोष शरीर" की कहावत को चरितार्थ करता है। मनोमय, विज्ञानमय शरीर है कि अपनी शुद्धि निर्मल तथा उच्च विचार जन्य पावन रश्मियों को भीतर से बाहर विकसित कर रहा है जिन के प्रभाव से प्रत्येक देखने वाला पुरुष पूजा के भावों से पूरित हो जाता है और चाहता है कि वह अधिकाधिक उस प्राणप्रद वातावरण में स्थित रहे जो ऋषिके चारों ओर समुपस्थित रहता था।

निर्भीकता में महर्षि का दर्जा अति उच्च है। किसी प्रकारका सांसारिक प्रलोभन अथवा राजनैतिक भय उन को सत्य के प्रकट करने से नहीं रोक सका। सत्य पर सर्वस्व निछावर करने के लिये वह सर्वदा उद्यत रहते थे। सत्य से विचलित होना वह मनुष्यपन से बाहर समझते थे। महर्षि के जीवन में विकट समस्याएं उपस्थित हुईं जिन के होते हुये सत्य के असाधारण प्रेमियों के भी पैर उखड़ जाते हैं परन्तु ऋषिराज चट्टानवत् उन समस्याओं के मध्य में अविचलित रहे। कभी २ देखा गया है कि महात्मा पदवी से भूषित सच्चे महापुरुष भी जिन्होंने स्वार्थ का सर्वथा परित्याग कर दिया है जिन के त्याग की पराकाष्ठा पर कोई अंगुली नहीं उठा सकता अपने लिये नहीं किंतु अपने विचार से देश की भलाई के लिये सत्य के उज्ज्वल मुख को सुरक्षित नहीं रख सके हैं ऋषि दयानंद के सत्य के ओदर्श और उस के परिरक्षण में, सत्याग्रह देश, काल की सीमा को उल्लंघन कर जाता है। महर्षि की दृष्टि में यह असम्भव है कि किसी देश वा जाति का वास्तविक कल्याण त्रिकाल में भी सत्य की यत-किञ्चित् उपेक्षा वा अवलेहना करने से भी हो सकता है। ऋषि का सम्पूर्ण जीवन " सत्यमेव जयते नामृतम् " के अटल सिद्धान्त पर व्यतीत हुआ। वह दूसरों से ऐसी बात में जिस में सत्य के प्रकट करने का सम्बन्ध हो समझौता करना सत्य का निरादर समझते थे और उस निरादर के विचार को उन की बलवान आत्मा ने कभी अपने भीतर स्थान नहीं दिया।

मेरी सम्मति में यह बात बिना किसी कटाक्ष के भय के कही जा सकती है कि उपरोक्त दोनों गुणों की प्रचुरता में महर्षि कम से कम अपने समय के अद्वितीय महान् पुरुष थे। परन्तु यदि महर्षि के सम्यक् तत्वदर्शन पर दृष्टिपात किया जावे तो ऋषि की उपमा किसी काल में भी मिलना अति कठिन है। कौनसी वैयक्तिक अभ्युदय अथवा निःश्रेयस् सम्बन्धी जीवन का प्रश्न वा पहेली है वा कौनसी सामुदायिक उत्थान की मीमांसा है जिस को महर्षि ने दो और दो चार की भांति स्पष्ट रूप और सरल शब्दों में हल नहीं कर दिया है ? यहां पर विविध प्रश्नों और पहेलियों को गिनाया जावे और उनका दिग्दर्शन भी कराया जावे तो यह लेख लेख की सीमा में नहीं रह सकता। अतएव मैं केवल अद्वैतवाद और प्रकृतिवाद के प्रश्न पर ही कुछ कथन करूंगा।

इस विषय में प्रिय पाठकों को इस बात के बतलाने की आवश्यकता है कि 'अहंब्रह्मास्मिवाद' ने शताब्दियों तक एतद्देश वासियों को "सम्पूर्ण जगत स्वप्न ओर मिथ्या है" का पाठ पढ़ा कर्तव्य विमूढ़ कर दिया था, उनके सन्मुख न नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव उपास्य ब्रह्म का कोई आदर्श रहा और न उपासक का कोई भाव रहा। जब सब स्वप्न हुआ तो जीवन भी स्वप्न होकर उसके कर्म धर्म कर्तव्याऽकर्त्तव्य सभी कुछ स्वप्न में परिणत हो गये। न उत्थान और न उत्कर्ष की किसी को अभिलाषा रही और न गिरावट का किसी को भय रहा। सारा देश राग, भोग विलास में लिप्त और वैदिक ज्ञानसे शून्य होकर अधःपतन के कूपमें गिर गया और राज हीन तथा ऐश्वर्यविहीन हो गया। प्रकृतिवाद भी, इस अंश में 'अहंब्रह्मास्मिवाद' ही है। जिस प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मिबाद' में वादी से

पृथक कोई उपास्य नहीं रहता उसी प्रकार प्रकृतिवाद में भी प्रकृति से भिन्न कोई चेतन ब्रह्म शेष नहीं रहता जो उपास्य बन सके। अपने से भिन्न किसी उपास्य देव को मानना वास्तव में अनीश्वर वाद है और इस अंश में दोनों ही चाहे 'अहंब्रह्मास्मिवादी' हो वा प्रकृतिवादी, अनीश्वरवादी हैं। महर्षि ने वेदादि सच्छास्त्रों के प्रौढ प्रमाणों तथा अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया कि ये दोनों वादी भूल में हैं। जीवात्मा की अनादि और अनन्त किंतु अल्पज्ञ सत्ता न मानने वाले तीन काल में भी सुख दुख पाप पुण्य की पहेली को नहीं सुलझा सकते। न नित्य शुद्ध बुद्ध युक्त स्वभाव सर्वव्यापक और सर्व नियन्ता ब्रह्म के माने बिना इस ब्रह्माण्ड को, जो परमाणु से लेकर बृहत् लोक लोकान्तरों तक एक प्रकार के अटल नियमों में नियमित और नियन्त्रित दृष्टि आ रहा है, संगीत समझाई जा सकती है। सामयिक प्रकृतिवाद तो जो नित नये आविष्कारों तथा बढ़े चढ़े चमकीले और दमकीले उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कला कौशल द्वारा अभिमान और प्रमादकी कोई सीमा नहीं रखता, आत्मज्ञान की खिल्ली उड़ाता था। परन्तु जब महर्षि ने उसके सन्मुख उस रचनात्मक गूढ़ शक्तियों को दिखलाया जिनके बिना वह संसार के बनाने और स्थिर रखने में असमर्थ दृष्टि पड़ती है तो प्रकृति वादियों को अपना दृष्टिकोण विवश होकर बदलना पड़ा और उनको इस सिद्धान्त की तह में सार प्रतीत होने लगा कि प्रकृति वास्तव में परतन्त्र है। उसको नियमित रूप से विविध रूपो में रूपान्तर करने वाला उसमें ओत प्रोत और उससे बाहर भी रहने वाला एक अद्वितीय ब्रह्म अवश्य है जो जीवों के पाप पुण्य के अनुसार उनके लिए इसी प्रकृति की बनाई हुई नृत्यशाला में सुख दुख का विधान करता रहता है।

निदान जहां महर्षि के पास अकाट्य प्रमाण उपरोक्त वैदिक त्रित के सिद्धान्त पक्ष में थे वहां उदाहरण रूप योग साधन द्वारा उन सिद्धान्तों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का भी सौभाग्य प्राप्त था। सुप्रख्यात श्री० पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० के जीवनचरित से प्रकट है कि आज कल के साइन्स निपुण पं० गुरुदत्त महर्षि के ब्रह्म सम्बन्धी युक्तियों के सन्मुख सिर झुकाने को बाधित होने पर भी अपने हृदय की चाल को ईश्वर विश्वास के विरुद्ध पाते थे। इस विषय में यह लिखना अनुचित न होगा कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों के प्रायः ग्रन्थ जहां प्राकृतिक उच्च विचारों से युक्त होते हैं आत्मिक ज्ञान से सार्वथा शून्य ही नहीं किन्तु पढ़ने वाले को जिसने आर्यसमाज का साहित्य तथा उपनिषदादि का अनुशीलन नहीं किया है संशयात्मा बनानेमें पूर्ण योग देते हैं। आप चाहे जौन टिनडाल के Lectures and Essays आदि ग्रन्थों को देखें अथवा प्रोफेसर हैकल के Riddle of the universe [विश्वकी पहेली नामी ग्रन्थ] अथवा उनके वा अन्य वैज्ञानिकों के अन्य ग्रन्थों को पढ़ें। सब का मन्थन अन्त में इसी फल को छोड़ता है। यही दशा पूज्य पं० गुरुदत्त की थी। परन्तु इस दशा का अन्त किस प्रकार होता है। जब महर्षि दयानन्द अपने शरीर का त्याग जोधपुर में करते हैं उस समय उक्त पं० गुरुदत्त भी महर्षि के अन्तिम दर्शन करने को एक कोने में खड़े होते हैं और जब वह अपनी आंखों से साक्षात् देखते हैं कि महर्षि का किस प्रकार परमात्मा से साक्षातकार हो उसकी स्तुति प्रार्थना पूर्वक अति प्रसन्न चित्त इस पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग करते हैं तो उनका दृष्टिकोण विद्युत की गति की भांति यकायक परिणत हो जाता है और उनका नास्तिक हृदय आस्तिकता की तरंगों से उछलने लगता है, यहां तक कि उनको महर्षि के मिशन को फैलाने के लिए सारा जीवन अर्पण करने को उद्यत कर देता है।

अतएव मेरा अनुभव और विश्वास है कि महर्षि के समान सम्यक तत्वदर्शी मिलना जिसने

हमारे जीवन की प्रत्येक पहेली को अति स्पष्ट और सरल शब्दों में खोल कर दिखाया हो कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। सम्भव है कि कुछ विज्ञ पुरुष न मालूम अपने विचार में किस राजनैतिक भलाई को लक्ष्य में रख महर्षि को असहिष्णु बतलाने का समय असमय राग अलापा करें परन्तु सच यह है कि यदि महर्षि का प्रादुर्भाव न होता नहीं ज्ञात कि संसार जीवन की पहेलियों से संतप्त हो किस अविद्यान्धकार और दुःख के समुद्र में अब तक गोता लगाता पाया जाता।

मेरा विचार है कि महर्षि की शिक्षा का अभी पूरा विकाश नहीं हुआ है और न संसार ने उसको पूर्ण रूप से अब तक जान पाया है। परन्तु समय आ रहा है कि अब पदार्थ विद्या की जगमगाहट में यदि आत्मा को कहीं सुदृढ़ आश्रय मिलेगा तो महर्षि दयानन्द की ही शिक्षा होगी। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह शीघ्र संसार को इस योग्य बनावें कि वह महर्षि के मिशन को भली भांति समझ उस सत्य पथ का पथिक हो जिसके प्रसारण में महर्षि ने अपने अमूल्य जीवन को अर्पण कर दिया और सांसारिक अभ्युदय को प्राप्त करते हुए जीवन के अन्तिम लक्ष्य ब्रह्मानन्द को प्राप्त करे।

यदात्म तत्वेन तु ब्रह्म तत्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्व तत्वैर्बिशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ॥
श्वेता० उप०

ओ३म् शम्

:o:

वेद प्रचार और आर्यों का कर्त्तव्य

:o:

(लेखक--श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

:o:

तमिद्वोचेमा विदथेषु शंभुवं मंत्रं देवा अनेहसम्। इमां च वाचं प्रति हर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ऋ० १। ४०। ६

अर्थ—हे (देवा) विद्वानो (वः) आपको (विदथेषु) जानने योग्य (अनेहसम्) दोष रहित शंभुवम्) कल्याण कारण (मंत्र) मनन योग्य अर्थात वेद मंत्र (वोचेम) उपदेश करें (तम) उस वेद का (इत) ग्रहण करो (इह) जो (इमांवाचम्) इस वाणि को जानो तो (विश्वा) सब (वामा) प्रशंसनीय पदार्थ (वः) आपको (अश्नवत) प्राप्त हों।

भावार्थ में स्वामी जी ने लिखा है—विद्वानों को योग्य है कि प्रचार के लिए मनुष्यों को निरन्तर ......वेद का उपदेश करे।

आचार्य ने इस मंत्र में वेद प्रचार का आदेश किया है और परलोकवास के समय देश देशान्तर में वेद संदेश पहुंचाने की आज्ञा की। इस समय आर्यसमाज इस अज्ञा की अवहेलना कर रहा है क्योंकि वेद प्रचार के मुख्य दो साधन हैं—जन और धन। आर्यसमाज के वृद्ध पुरुष प्रचार के लिए उद्यत ही नहीं, उनका कथन है वह इस कार्य के योग्य ही नहीं हैं। हमने मान लिया वह योग्य

नहीं हैं और उनसे पूछते हैं कि आप में कोई योग्यता भी है वा नहीं ? जो योग्यता है उसी से वेद प्रचार की सहायता करो तो भी उनका भ्रम नहीं टूटता और वह परिवार के मोह में अथवा विषय-वासना में फंस रहे हैं और स्वयं दुखी हैं तथा समाज के कलंक हैं।

उनके पश्चात युवक हैं उन से कहने में मुझे भी संकोच है क्या पता है इस समय वह आवेग में कुछ करें पश्चात जीवन की पवित्रता का पालन न कर सकें तब इतः भ्रष्टः ततः भ्रष्टः हों तो भी जो युवक अपने पर विश्वास करते हैं उन्हें इस मार्ग में आना चाहिये।

दूसरा साधन धन है। इस समय आर्यसमाज में जो बुरी अवस्था इस निधि की है उतनी और किसी की नहीं है। समाजें उपदेशक मांगती हैं और वेद प्रचार में धन देना उनके लिये मौत है क्योंकि उनकी कन्या पाठशाला, स्कूल, गुरुकुल कालिज ही धन देने के लिए पर्याप्त हैं। और सभाओं को छोड़कर पंजाब प्रतिनिधि को लें जो सब से अच्छी मानी जाती है और अपेक्षा कृत अच्छी ही है उसके पास अब तक वेद प्रचार का स्थायी कोष ४० हजार ही है जब कि अन्य निधियों में लाखों जमा हैं कई समाजें हैं। जो पाठशालाओं के लिए सहस्त्रों प्रति वर्ष व्यय करती हैं परन्तु उपदेशक रखने के लिए उनके पास भी धन नहीं है।

इसके अतिरिक्त कुछ सज्जनों ने प्रचार को धन का साधन बनाकर कार्यारम्भ किया है। इस विषय में मुझे यशवन्तसिंह के भजन से कुछ पाठ लिखना उचित प्रतीत होता है। आप एक वार काशी के उत्सव पर गये थे उस समय वहां की अवस्था देखकर उन्होंने यह छन्द घडा था।

गाने की कदर घटाय दी इन फीसदार भजनीकों ने।
चूसा खून समाज का इन बेईमान खटीकों ने॥

मैं उपदेशक और भजनीकों को सम ही समझता हूं इस लिए जो फीस नियत करके काम करते हैं वह पृथक हो जायं तो अच्छा है। यदि न हों तो समाजें सोचें उनका क्या कर्तव्य है। यदि ऐसा भी न हो तो कार्य कर्ताओं को ही बूचड़ के हाथ में गौ देकर पृथक हो जाना चाहिये।

अन्त में इतना निवेदन और है। इस समय आवश्यकता है केवल प्रचार को अपना उद्देश्य बनाकर कार्यकर्ता आवें और केवल निर्वाह मात्र की आशा रखें वह भी मोटा वस्त्र और ग्रामीण भोजन और परिवार केवल अपना शरीर हो तब प्रचार होगा और समाजों को सब से अधिक धन इस निधि में भेजना चाहिये और विदेश प्रचारार्थ सार्वदेशिक सभा का कोष पूर्ण कर देना चाहिये।

विरोधाग्नि और उसकी शान्ति

—:०:—

(लेखक--बा० शिवनारायण जी एडवोकेट लखीमपुर)

—:०:—

समाजों में वढ़ती हुई विद्वेषाग्नि को बुझाने का उद्योग करना सभी का कर्तव्य है। इस समय आर्य समाज के पत्रों में इस विषय पर प्रमुख विचारकों के भिन्न भिन्न प्रस्ताव Suggestions प्रकाशित हो रहे हैं। मैं भी अपनी तुच्छ सम्मति इसी सम्बन्ध में सार्वदेशिक पत्र के पाठकों के सन्मुख रखना चाहता हूं।

स्थानीय न्याय सभा

प्रत्येक समाज में एक न्याय सभा होनी चाहिये जिसमें लगभग ऐसी योग्यता के सभासद हों।

(१) कम से कम ५ वर्ष आर्य सभासद रहे हों और सदाचार पूर्वक अपनी आय को वास्तव में शतांश देते हों।

(२) कम से कम ३५ या ४० वर्ष की अवस्था हो।

(३) सन्यासी हों (तो शतांश से मुक्त)

समाज सम्बन्धी सब झगड़े इसी के सन्मुख उपस्थित हुआ करें। आया कोई सभासद आर्य सभासद होने का सदाचार पूर्ण अधिकारी है या शतांश देता है या नहीं इसी प्रकार की सभा तय कर देवें।

इस न्याय सभा को अधिकार होगा कि:--

(१) किसी व्यक्ति को अर्थ दंड देकर वह धन समाज के वेद प्रचार फंड को दिला देवे।

(२) कुछ काल के लिए किसी व्यक्ति को आर्य सभासद, प्रतिनिधि, पदाधिकारी होने से बन्द कर देवें।

(३) सभासदी से पृथक कर देवे।

जो व्यक्ति स्थानीय न्याय सभा से असन्तुष्ट हो वह प्रांतिक न्याय सभा को अपील भेज सकता है। प्रांतिक न्याय सभा में कुछ अन्तरङ्ग सभासद, कुछ विद्वान उपदेशक, कुछ सन्यासी होने चाहियें प्रांतिक न्याय सभा का निर्णय प्रतिनिधि का निर्णय समझा जावे। यह सभा कुछ इस प्रकार दंड दे सकती है:--

(अ) वह सब दंड जो स्थानीय सभा दे सकती है।

(ब) किसी को नियत काल तक प्रतिनिधि न लेना।

(स) समाज को कुछ काल के लिए Suspend कर देना अर्थात पदाधिकारी निर्वाचन करने के अधिकारों से बंचित रहना।

(द) सभा से समाज को पृथक कर देना।

प्रांतिक सभा का निर्णय वाकयात पर अन्तिम होगा। अगर आर्य समाज के किसी नियमोपनियम का सम्बन्ध उस झगड़े से हों तो प्रांतिक सभा के निर्णय की अन्तिम अपील

सार्वदेशिक न्याय सभा

के पास भेजे जिसमें प्रांतिक सभा के २ सभासद और सार्वदेशिक सभा के प्रधान होंगे। बस इसका निर्णय अन्तिम होना चाहिये।

मेरी सम्मति में कुछ इस प्रकार की व्यवस्था कर लेने से काम चल जायगा। आशा है आर्य समाज के विद्वान लोग इस पर विचार करके इसे कार्यरूप में लाने की कोशिश करेंगे।

—:०:—

क्या अन्य लोकों में भी प्राणियों का वास है?

——:o:——

ऋषि के वैदिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिक पुष्टि

——:o:——

(लेखक-श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ, अजमेर)

——:o:——

महर्षि दयानंद ने सत्यार्थप्रकाश (समु०८) में प्रश्न उठाया है—

(प्रश्न) सूर्य, चन्द्र, तारे क्या वस्तु हैं ? उन में मनुष्य आदि सृष्टि है वा नहीं ? (उत्तर) ये सब भूगोललोक और इन में मनुष्य आदि प्रजा भी रहती हैं। क्योंकि-एतेषुहिइदं सर्वहितम। इदं हि सर्वं वासयन्ते तद्- यद् इदं सर्वं वासयन्ते तस्माद् वसव इति। शत कां० १४,६-७-४ ॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, अकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इन का 'वसु नाम इस लिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती है, और येही सब को बसाते हैं। जिस लिये ये निवास करने के घर हैं, इस लिये इन का नाम 'वसु' है। जब पृथ्वीके समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र 'वसु' हैं पश्चात् इन में इसी प्रकार की प्रजा के होने में क्या संदेह, और जैसे परमेश्वर का बनाया यह छोंटासा लोक मनुष्य आदि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे ? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता, तो क्या इतने असंख्य लोकों मे मनुष्य आदि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है ? इस लिए सर्वत्र मनुष्य आदि सृष्टि है। (प्रश्न) जैसे इस देश में मनुष्य आदि सृष्टि की आकृति अवयव है वैसे ही अन्य लोकों में भी होंगी वा विपरीत ? [उत्तर] कुछ २ आकृति में भेद होना सम्भव है। जैसे इस देश में चीन, हबस, और आर्यावर्त योरोप में अवयव और रंग रूप और और आकृति का भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोकान्तरों में भी होता है। परंतु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसीं जाति ही की वैसी सृष्टि अन्य लोकों में भी है अर्थात् शरीर के जिस २ प्रदेश में नेत्र आदि अंग हैं उसी प्रदेश में लाकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। क्योंकि—

सूर्या चंद्रमसौ धाता यथा पूर्व मकल्पयत्।
दिवंचपृथिवीं चान्तरीक्षमथो स्वः ॥ अ० १०।१६०।३।

धाता परमात्माने जिस प्रकार के सूर्य, चंद्र, द्यौः, भूमि, अंतरिक्ष और तत्रस्थ सुख आदि विशेष पदार्थ पूर्वकल्प में रचे थे वैसी ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं। तथा लोक लोकान्तरों में भी बनाये गये हैं। भेद किंचिंत्मात्र नहीं रहता"

महर्षि दयानंद की लोकलोकान्तरों में सृष्टि होने विषयक युक्ति और वेदका प्रमाण बड़ा स्पष्ट और बुद्धिको प्रभावित करने वाले हैं। महर्षि ने वेदके सिद्धान्तों को युक्ति से पुष्ट किया है। परंतु वेद के सिद्धान्तो को प्रकट करने में महर्षि ने किसी अन्य प्रमाण को मुख्यता नहीं दी। यह प्रश्न जटिल है समस्त अन्य ग्रह, नक्षेत्रों में सृष्टि का मान लेना तो दूर की बात है। मंगल ग्रह पर सृष्टि होने तक में वैज्ञानिकों के बड़े मतभेद हैं। तो भी वैदिक सिद्धांत को निराश होने की आवश्यकता नहीं। सत्य के अन्वेषी कब सत्य का पीछा

छोड़ने वाले हैं। वेद तो सत्य ज्ञान है ही। वेद के अतिरिक्त मानुषिक स्थापनाएं केवल कल्पना मात्र हैं। उनके प्रमाणित हो जाने के बाद उनकी सत्यता स्थिर होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत विषय पर भी वैज्ञानिक लोग अपने विस्मयजनक सिद्धान्त प्रकट कर रहे हैं। वे भी महर्षि की ही युक्ति से ही लोकलोकान्तरों में भी सृष्टि और मनुष्य सत्ता को मानने के लिये बाध्य हुए है।

हाल ही के दिनों में न्यूयार्क से प्रकाशित 'हार्यस् मैगजीन' में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के विख्यात ज्योतिषी प्रोफेसर आर्थर एस एडिंगटन ने संसार में मनुष्य का स्थान शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया है। इसमें आपने सूर्य के ग्रहों मेंसे शुक्र और मंगल के विषय में विचार प्रकट किये हैं। आप कहते हैं कि सूर्य के ग्रहों में से शुक्र और मंगल दो ही ग्रह स्पष्ट दीखते हैं। शुक्र की दशा हमारी पृथ्वी के समान है। हम यदि सहसा इस भूतल को छोड़ कर शुक्र लोक में चले जायं तो हम वहां बिना किसी स्वभाव परिवर्त्तन के सुख से जी सकेंगे। शुक्र पर बादल छाये रहते हैं। इसलिये हमें उसके जल थल का ठीक ज्ञान नहीं होता। पृथ्वी के पिण्ड से चन्द्र का पिण्ड जब अलग हुआ तो बहुतसा भाग खाली हो जाने से फालतू जल, थल को थोड़ कर उस गढ़े में भर गया है। वही समुद्र का भाग है। यदि यह गढ़ा भर जाय तो अवश्य सब पृथ्वी जलमय हो जाय। परन्तु शुक्र का कोई चन्द्र नहीं। कदाचित् उस पर जलमय समुद्र ही है जहां मच्छी आदि ही विशेष जलजन्तु हो सकते हैं।

मंगल में जल और वायु बहुत कम मात्रा में हैं। उसमें समुद्र नहीं है। उसमें रेगिस्तान और जंगल हैं। ध्रुव भागों पर हिम पड़ी रहती है। मेघ भी उठते हैं, दिन और रात में गर्मी सर्दी बहुत बदलती है। वहां शीत अधिक है। सूर्यास्त होते ही बर्फ की सी ठंड हो जाती है। मौसम २ में जंगलों की हरयाली बढ़ती है। वहां वानस्पतिक जीवन अवश्य है। तो क्या हम पशु सृष्टिसे इनकार कर सकते हैं?

मनुष्य सृष्टि के बारे में प्रोफेसर साहब लिखते हैं कि मंगल के तल पर काली २ रेखा देख कर बहुत से वैज्ञानिकों ने वहां लम्बी २ नहरों का अनुमान किया है। जिनके आधार पर वहां बड़ी उन्नत सभ्यता वाली मनुष्य सृष्टि का अनुमान भी कर लिया है परन्तु वह स्थापना बहुत पुष्ट नहीं है। मंगल ग्रह अब बूढ़ा हो चुका है। अस्तु। यह तो हमारे सूर्य परिवार की कथा हुई परन्तु सौर परिवार की सीमा से भी बहुत परे लक्षों और करोड़ों तारे हैं जिनको हम सूर्य मान रहे हैं उनके भी तो ग्रह परिवार होंगे।

It would be rash to assume that no where else in the Universe has nature repeated the strange experiment which she has performed on the earth.

यह समझना मूर्खता है कि विशाल संसार में कुदरत ने अपने इस विचित्र परीक्षण अर्थात् जीव सृष्टि को इस पृथ्वी पर तो किया और इसको और किसी भी लोक में न दोहराया होगा।

उक्त प्रोफेसर साहब तारों की सृष्टि और रचना के विषय में लिखते हैं कि समस्त तारों में प्रति तीन तारों में से एक युगल मूर्ति है। उन दोनों में से भी प्रत्येक विशाल सूर्य है। उनके भी ग्रह होने सम्भव हैं। यह भी सम्भव है कि उनके ग्रह न हों सम्भवतः उनके ग्रह न फूटे हों। इन दूरतम सूर्यों के ग्रहों को हम दूरबीन से भी नहीं देख सकते। जे० एच० जीन महाशय ने यह प्रसिद्ध कर दिया है कि महान सूर्य की अपनी तीव्र गति उसको तोड़ कर दो सूर्य बना देतीहै फिर उनके ग्रह नहीं फूटते यदि ऐसे युगल सूर्यों के पास से कोई और महान सूर्य गति करता हुआ गुजर जाय तो उसके प्रबल आकर्षण से ही उन दोनों युगलों में से भी बहुतसे

ग्रह कच्चे बच्चों की तरह फूट निकलते हैं और और बाद में वे उनके ग्रह हमारी पृथ्वी के समान ही बसने योग्य हो जाते हैं।

चाहे ज़ीन महोदय की यह कल्पना कभी भी घटित होती हो तो भी प्रत्येक सूर्य रूप तारे को जीवनप्रद होने की शक्ति प्राप्त है। माना कि कुदरत [Nature] बड़ी फिज़ूल खर्च है। माना कि यदि कुदरत का यह भी कोई उद्देश्य न हो कि वह अपने सब से उच्चकोटि के परीक्षण 'मनुष्य सर्ग' के निमित्त घर प्रदान करे तो भी उसकी यह रीति है कि वह लाखों तारे बखेर देती है। जिन में से कोई एक सौर परिवार ही अपने उचित अवसर पर मानव सर्ग रूप उच्च प्रयोजन को पूरा कर देता है। चाहे पहले २ बहुत से लोक लोकान्तर मनुष्य सृष्टि का घर न बन सकें तो भी पता नहीं कितने महासूर्य अन्य सूर्यों की प्रबल शक्ति से फट फट कर कितने ही ग्रहों को बखेरते रहते हैं। आगे क्रमशः उनकी अवस्था बदलती २ उनमें जीव सृष्टि की सत्ता को प्रमाणित कर देती हैं। और अगले परिणाम ही जीव सर्ग की उच्च कोटि और नीच कोटि की सत्ता के प्रमाण भी प्रस्तुत करेंगे। उपसंहार में प्रोफेसर साहेब लिखते हैं कि—

'I presume however that at the end of weeding out, there will be left few rival earths dotted here and there about the Universe.

अर्थात्—मनुष्य सृष्टि के अयोग्य ग्रहों को छोड़ते २ भी हमारी पृथ्वी के समान कुछ एक भूमण्डल समस्त जगत में छिटके हुए ही प्राप्त होंगे जिनमें मनुष्यसृष्टि उत्पन्न होती होगी।

इसके अतिरिक्त आप एक और भी विशेष बात लिखते हैं कि यदि पृथ्वी की जीवनी पर दृष्टि डालें तो उसकी बहुत ही कम उमर है जिसमें वह अपने पृष्ठ पर मनुष्यों को उत्पन्न करने में समर्थ रहती है। तो भी इसके विरोध में एक भी ऐसा प्राकृतिक प्रमाण नहीं है कि मनुष्य जब एक वार पृथ्वी पर उतर चुके तो वह क्यों न अगले लाखों करोड़ों वर्षों तक अपनी सृष्टि पैदा करता रहे पर क्या यह कल्पना हो सकती है ? पर यदि मान भी लें कि पृथ्वी के जीवन के बहुत कम भाग में मानुषसृष्टि रहती है तो भी मेरे विचार में पृथ्वी के समान लाखों पृथिवियां विद्यमान रहेंगी जहां बहुतों में मानवसर्ग समाप्त होने को होगा तो बहुतों में मानव सर्ग प्रारम्भ होने को होगा।

पाठकगण ! विद्वान वैज्ञानिकों की युक्तियों पर ध्यान देंगे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि किस प्रकार युक्ति प्रतियुक्तियों से वे भी उसी परिणाम पर पहुंचे जिन पर वैदिक ऋषि और महर्षि दयानन्द वेद द्वारा पहुंचे। महर्षि का यह वैदिक बोध था जिसका प्रथम उद्भव छोटे से शिव मन्दिर में बैठकर हुआ था और अनन्तर महान बोध उस विश्वव्यापी भूतेश्वर की ज्ञानमयी गोद में विचरते हुए वैदिक प्रकाश में हुआ।

नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥



एक महान यज्ञ

--—:o:—--

(लेखक—बाबू पूरणचन्द्र जी बी० ए० एल० एल०बी०,एडवोकेट)

——:o:——

कुल रीतियों के निवारण और संसार के सुधार के लिए यज्ञों की स्थापना की गई। यज्ञ शब्द का हवन अर्थ केवल एक संकुचित रूप से है। विस्तार की दृष्टि से इसके अनेक अर्थ हैं, और विशेष कर निम्न लिखित तीन अर्थों में यह शब्द उपयोग में लाया जाता है। अर्थात् देव पूजा, संगतिकरण, और दान इन तीन अर्थों पर विचार करते हुए संसार के समस्त महान कार्य इस के अन्तर्गत आजाते हैं। मनुष्य के आचरण सम्बन्धी सब प्रकार के नियम इनके अन्तर्गत आ जाते हैं। यदि आर्य समाज के दश नियमों के ऊपर विचार करें तो ज्ञात होगा कि महर्षि दयानन्द ने समाज की स्थापना क्यों की है यों कहना चाहिये कि एक महान यज्ञ की जिसको उनके अनुयायियों का कर्तव्य है कि हर समय आहुतियां देकर प्रज्वलित रखें। पहले पांच नियम देव पूजा की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्शित करते हैं, सच्चे अर्थों में देव पूजा करने के योग्य होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो कि परमात्मा क्या है और उसके गुण क्या है? और उसको यह भी समझना चाहिये कि परमात्मा का बताया हुआ सत्य मार्ग अथवा सत्य ज्ञान कौन सा है? उसके लिए केवल यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं है कि सत्य ज्ञान या सत्य विद्या कौन सी है, परन्तु उसको अर्थ सहित जानना चाहिये। ओर ऐसी विवेक बुद्धि होनी चाहिये कि सत्य और असत्य अर्थ में भेद कर सके। केवल सत्य अर्थ जान लेना भी पर्याप्त नहीं है, वेदों के रावण ऐसे भाष्यकार भी हुए हैं परन्तु सत्य ज्ञान के सत्य अर्थ जानते हुए उनके अनुसार आचरण भी करना चाहिये महर्षि यह भी जानते थे कि साधारण रीति से मनुष्यों की यह धारणा है कि विद्वान् देव पूजा के ज्यादा योग्य और मूर्ख उससे विमुख रहते हैं, वास्तव में होना भी ऐसा ही चाहिये, परन्तु संसार का इतिहास इसके प्रतिकूल भी साक्षी देता है, प्रत्येक देशमें और प्रत्येक समयमें ऐसे विद्वान हुए हैं जिन के जीवनमें विद्या उपार्जनका यह परिणाम निकला कि वह ईश्वरके भक्त न बनकर ईश्वर की सत्ता से भी उनका विश्वास हट गया। यूरोप में इस समय भी बहुत बड़े बड़े विद्वान इस नास्तिकता के चक्र में फंसे हुए हैं, होना तो यह चाहिये था कि प्रकृति के सम्बन्ध में जितनी वह खोज करते उतना ही ईश्वर की सत्ता में दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिये था, या वेदों के शब्दों में रचना को देखकर रचियता का बोध होना चाहिये, होता इस के प्रतिकूल है, इस त्रुटि को मिटाने के लिए पहले नियम का निर्माण किया बड़े से बड़े विद्वान के ऊपर यह आवश्यक है कि वह इस बात को ध्यान में रखें, कि सारी विद्याओं का केन्द्र परमात्मा और सबका आदि गुरु भी वही है, और कोई मनुष्य कितनी ही अपनी विदया की खोज से नवीन पदार्थों का आविष्कार क्यों न करे उस सबका आधार पारब्रह्म परमात्मा ही है, ईश्वर के विश्वासियों में भी ईश्वर सम्बन्धी अनेक भ्रम मूलक विचार प्रचलित रहते हैं, जो उन्हें नामके लिये आस्तिक बना देता है परन्तु नास्तिकों

से भी उनकी दशा बुरी होती है। इस कारण से महर्षि ने पहिले नियम में ईश्वर को सत्य विद्याओं का आदि मूल बतला कर दूसरे नियम में ईश्वर के लक्षण वर्णन किये हैं, तीसरे नियम में सत्य विद्याओं की पुस्तक क्या है? इस ओर संकेत किया है, और तीसरे चौथे और पांचवे नियम में मनुष्यों का जो कर्त्तव्य वेदों के सम्बन्ध में है द-र्शाया है, इस प्रकार मनुष्य को देव पूजा के लिए ईश्वर और वेद सम्बन्धी ज्ञान देकर सर्वथा योग्य बनने की शिक्षा दी गई है। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक पशु है, अर्थात उसका मिल जुल कर रहने का स्वभाव है, ऐसी अवस्था में एक व्यक्ति कैसा ही ईश्वर भक्त और सदाचारी हो उसको दूसरे से मिल जुल कर चलना ही पड़ेगा। अर्थात् संगति करण के नियमों की भी आवश्यकता है छटा, सातवां और आठवां नियम संगति करण अर्थात् सङ्गठन के नियम हैं। जब एक से अधिक मनुष्य मिल कर रहें या चलें तो उनका लक्ष्य एक निश्चित और महान होना चाहिये, छटवां नियम इस उद्देश्य की ओर संकेत करता है, वह उद्देश्य केवल अपनी भलाई नहीं परन्तु संसार की भलाई बतलाई गई है। सर्वांग उन्नति क्या है अर्थात् शारीरिक-आत्मिक व सामाजिक उन्नति करना। यदि छटा नियम उद्देश्य बतलाता है, तो सातवां और आठवां संगठन की विधि निश्चित करते हैं परस्पर में प्रीति पूर्वक धर्मानुसार और यथा योग्य वर्तना चाहिये, इस विधि के प्रतिकूल चलकर संसार में कितनी हानि हुई और हो रही है यह सब भली भांति जानते हैं, आठवां नियम यह शिक्षा देता है कि सब को मिलकर परस्पर ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये, नवां और दशवां नियम संगठन स्थापित होने के बाद दान की मर्यादा न हो, तो संगठन छिन्न भिन्न हो जाता है, दान केवल कुछ धन दे देने का नाम ही नहीं है। परन्तु अपने तन मन धन से दूसरों की उन्नति के लिए उद्यत रहना दानशील कहा जा सकता है, दशवां नियम व्यक्ति और समाज का वास्तविक संबंध निर्धारित करता है, समाज को व्यक्ति से इतने दान की आशा नहीं करनी चाहिये, कि उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जावे, और न व्यक्ति को इतनी स्वच्छन्दता करनी चाहिये कि समाज का संगठन छिन्न भिन्न हो जावे, मैंने इस संक्षिप्त लेख में दशों नियमों को सामने रखकर यह बात सिद्ध करने का उद्योग किया है कि—

यज्ञ शब्द के तीनों अर्थ आर्य समाज के स्थापना के संबन्ध में लागू होते हैं, और हम यह बात कह सकते हैं कि आर्यसमाज रूपी महान यज्ञ की स्थापना संसार में सब प्रकार की अवनति को हटाकर उन्नति की ओर ले जाना है, क्या इसको सुरक्षित रखना आपका कर्तव्य नहीं है?

इति

ऋषि दयानन्द और एकेश्वर वाद

—:o:—

दक्षिण भारत में ऋषि के सन्देश की विशेष आवश्यकता

—:o:—

(लेखक-श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति सम्पादक वेदसन्देश मंगलौर)

—:o:—

जिन महापुरुषों ने बिल्कुल शुद्ध रूप में एकेश्वर पूजा का प्रचार करके संसार के धार्मिक इतिहास में क्रांति पैदा कर दी ऋषि दयानंद का नाम उनकी प्रथम पंक्ति में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। अन्य युगों का इतिहास छोड़ते हुए यदि इस कलियुग के धार्मिक और सामाजिक इतिहास पर एक समालोचनात्मक दृष्टि दौड़ाई जाय तो साफ मालूम हो जायगा कि शुद्ध रूप में एकेश्वर पूजा का प्रचार करने वाले आचार्य तथा साधु सन्त कवि समाज सुधारकादि बहुत ही थोड़े हुए हैं। केवल सत्य सनातन वैदिक धर्म को छोड़ कर और किसी मतमतान्तर में सर्वथा शुद्ध रूप में न तो ईश्वर का स्वरूप बताया गया है और न केवल उसी की उपासना का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। पारसी मतके प्रायः सब ग्रन्थों में अच्छाई और बुराई के लिये दो पृथक् देवों की कल्पना है। यहूदी, ईसाई इस्लाम पौराणिक मतों में ईश्वर की कल्पना अधिकतर मनुष्यसदृश (Anthromorphic) करते हुए उसके जन्ममरण कष्ट रोग द्वेष तथा माननीय निर्बलताओं का वर्णन है अथवा ईसामसीह मुहम्मद जैसे माध्यमों (Mediators) की कल्पना की गई है जिसपर विश्वास रखे बिना कोई भी आदमी (उन मतानुयायियों के अनुसार) संसार सागर से पार नहीं हो सकता। बौद्ध सम्प्रदाय तो शीघ्र ही अनीश्वरवादी का रूप ग्रहण कर गया। प्रसिद्ध आचार्यों में से श्री शंकराचार्य द्वारा प्रचारित अद्वैत वादको एकेश्वरवादी नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि बौद्ध जैन आदि उस समय के नास्तिक मतों के पूर्णतया खण्डन के लिये उस महा प्रतिभाशाली आचार्य ने अद्वैत का प्रतिपादन किया हो (जैसे कि ऋषि दयानन्दादि अनेक विचारकों ने बताया है) पर उसका परिणाम एकेश्वरवाद के लिये हानिकारक ही हुआ जहां एक ओर ब्रह्म की सर्वथा निर्गुण रूप में कल्पना की गई तथा पूजा उपासनादि को भी 'माया कल्पित' बताकर अनेक स्थानों में 'मायावाद मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च' इस पुराणवाक्य के अनुसार उसे अनीश्वर वाद का रूप मिल गया और दूसरी जगहों पर व्यावहारिक दृष्टि से सगुण रूप में कल्पना करके हजारों देवी देवताओं की उपासना को भी संगत बताया गया। जिसके परिणाम स्वरूप आज कल श्री शंकर के अनुयायी सर्वत्र मूर्तिपूजा करते दिखाई देते हैं। श्रीशंकर ने मूर्तिपूजा का समर्थन चाहे न किया हो पर उसका स्पष्ट शब्दों में खण्डन भी नहीं किया प्रतीत होता।

श्री मध्वाचार्य ने अपने ग्रन्थों में "नह्यचेतनकं किंचित् फलदं स्यात्कदाचन्। तस्मादचेतनो पास्तिं, न कुर्यात्क्वापि कश्चन।

(उपासना लक्षण)

"अचेतनासत्यायोग्यान्यनुपास्यान्यफल विप-

र्ययाभ्याम् ।” संकर्षण सूत्र । इत्यादि प्राचीन ग्रंथों के वाक्यों को उद्धृत करते हुए एकेश्वर पूजा के प्रचार का यत्न जरूर किया मालूम होता है पर अपने समय में मूर्ति पूजा का जोर होने के कारण आखिर उन्होंने इस विषय में समझौता कर लिया यह बात

"अग्नौ क्रियावतां विष्णुर्योगिनां हृदये हरिः ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥"

अर्थात्—यज्ञादि करने वालों का विष्णु 'अग्नि में, योगियों का हृदयमें अज्ञानियों का मूर्तियों में और ज्ञानियों का सर्वत्र रहता हैं इत्यादि उनके वचनों से प्रमाणित होती हैं । श्रीरमानुजाचार्य का सम्प्रदाय तो केवल भक्तिवादी होने के कारण अवतार पूजा में अधिकतर प्रवृत्त हुआ। श्रीवल्लभ के अनुयायियों की लीलाओं को तो लेखनी से लिखते तक लज्जा आती है। यही अवस्था मध्य काल के श्री कबीर, श्री तुकाराम, श्री नामदेव आदि अनेक सन्तों की प्रतीत होती है। वे कहीं तो साफ निराकार सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन करते हैं और कहीं मच्छ कच्छ बराहादि रूपों को उसका अवतार मानते हैं। (श्री गुरुनानक आदि इसमें कुछ थोड़े से अपवाद जरूर हैं) ऋषि दयानन्द ने वेदों के आधार पर जिस शुद्ध रूप मे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया है वह इतना तर्कसंगत और उत्तम है कि बड़े २ विचारकों को उसके आगे सिर झुकाना पड़ रहा है और हमारा विश्वास हैं कि यूरोप अमेरिका के बड़े २ दार्शनिक शीघ्र ही उसे अपना लेंगे जब वह अपने शुद्ध रूप में उनके सामने रखा जायगा। उसमें कोई आडम्बर नहीं। कोई असम्बद्धता नहीं और किसी तरह का संकुचित साम्प्रदायिक भाव नहीं पाया जाता। श्रद्धाके साथ तर्क का मेल करके वहां सोने में सुगन्ध कर दिया गया है। इस बात की बड़ी भारी जरूरत है कि ऋषि दयानन्द द्वारा पुनः प्रचारित वैदिक धर्म के उस विशुद्ध एकेश्वरवाद को दुनियां के विचारकों के आगे विद्वत्ता पूर्वक रक्खा जाए। यह दुःख की बात है कि इस विषय में अब तक आर्यसमाज की तरफ से बहुत ही थोड़ा कार्य हुआ है। जहां इस समय ईसाई और मुसलमान प्रचारक अपने कई बेहूदे प्रतीत होने वाले सिद्धान्तों तक को वैज्ञानिक और दार्शनिक रूप में संसार के सामने रखने का विशेष प्रयत्न कर रहे हैं वहां आर्यसमाज की तरफ अंग्रेजी भाषा में ही फ्रेंच जर्मन आदि भाषाओं की तो बात ही जाने दीजिये) इन सिद्धांतों के समर्थन में कौनसा उच्चकोटि का ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हुआ है। कोल्हापुर में प्रिंसिपल बालकृष्ण जी M. A. PH. D. के द्वारा अभी कुछ दिन पूर्व मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य और साथ ही दुःख हुआ कि सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद (स्वर्गीय चिरंजीव भरद्वाज जी कृत) जब उन्हों ने कई सुशिक्षित अंग्रेजों को पढ़ने के लिये मुफ़्त दिया तो थोड़ा सा ही पढ़ कर उन्हों ने यह कहते हुए लौटा दिया कि हमें तो इसका अर्थ ही मालूम नहीं पड़ता। वास्तव में सामान्यतो दृष्ट, हिरण्यगर्भ विराट, व्याप्ति, अतिव्याप्ति प्रत्यक्ष इत्यादि शब्दों को बहुत बड़ी संख्या में देखकर कौन संस्कृत जाननेवाला घबरा न जायगा ? दाम भी ४) हैं इस लिए सब से पहले सत्यार्थप्रकाश जैसे ग्रन्थों के प्रत्येक भाषा में सस्ते और उत्तम अनुवादोंकी आवश्यकता है। ऋषि जन्म शताब्दी के समय घोषणा की गई थी और श्रीमान आचार्य रामदेव जी, श्रीयुत गंगाप्रसाद जी M.A. जज टिहरी आदि सुयोग्य विद्वानों की एक उपसमिति आर्य सिद्धांतों पर अंग्रेजी में विशेष कर विदेशीय दार्शनिकों के सामने रखने योग्य पुस्तक के निर्माण के लिये नियत की गई थी किंतु यह दुःख की बात है कि आज लग भग ४ वर्ष बीतने पर भी उस अत्यन्त उपयोगी विचार को क्रियात्मक रूप नहीं मिला । श्रीमती सार्वदेशिक सभा का ध्यान आदर पूर्वक इस वि-

षय की ओर आकर्षित करते हुए मैं आशा करता हूं कि इसके सम्बन्ध में अति शीघ्र कार्रवाही प्रारम्भ कराई जायगी।

दक्षिण भारत के लिये तो ऋषि का 'एकेश्वर पूजा' विषयक यह संदेश अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है क्योंकि मूर्ति पूजा ने इधर जितना घर किया हुआ है उतना उत्तर भारत में नहीं। बड़े २ सुशिक्षित हाईकोर्ट के जज वकील प्रोफेसर इत्यादि मूर्ति पूजा करते और उसका समर्थन करने में तरह २ की युक्तियां पेश करते नहीं थकते। स्वामी विवेकानंद के ग्रंथों के प्रचार ने इस में और भी ज़्यादह सहायता दी है जब कोई युक्ति नहीं चलती तो झट श्री रामकृष्ण परमहंस का नाम पेश कर दिया जाता है। मठों मंदिरों देवालयों की कोई हद ही नहीं। बड़े २ मठों में प्रतिदिन सैकड़ो रु० ब्रह्मभोजों और हज़ारों आरति आदि में उड़ाये जाते हैं। यद्यपि शुद्धि संगठन गुरुकुल आदि के लिए बार २ अपील करने पर भी इनको कुछ देते हुये भय लगता है। बहुत से मंदिर देवदासी प्रथा के कारण (जिस के समर्थक सैकड़ों तिलकधारी पंडित हैं) सचमुच वेश्यालय से बने हुये हैं। वैदिक शिक्षाओं और ऋषि कृत ग्रन्थों का प्रांतीय भाषाओं में प्रचार ही इन खराबियों को बहुत कुछ दूर कर सकेगा ऐसी आशा है। कर्णाटक भाषा में सत्यार्थ प्रकाश के उत्तम अनुवाद कराने का प्रबन्ध हो रहा है। प्रारम्भ में इसके लिये काफी रु० की आवश्यकता होगी। (यद्यपि फिर ऐसे ग्रन्थों की बिक्री भी अच्छी हो सकेगी)। श्रीमती सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना की गई है कि वह कुछ उधार के रूप में और कुछ सहायता के रूप में द्रव्य देकर इस पवित्र कार्य में हमारा हाथ बटावें। आशा है उस प्रार्थना को स्वीकार कर प्रशंसनीय सभा कर्णाटक प्रांतीय जनता के धन्यवाद की विशेष पात्र बनेगी।

इति

———:०:———

पूर्ण मनुष्य दयानन्द

———:०:———

(ले०--श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ)

———:०:———

प्रकृति और आत्मा के संयोग विशेष से मनुष्यादि प्राणियों का प्रादुर्भाव होता है। प्रकृति तथा आत्मा के गुण धर्मों के भेद के कारण मनुष्य के शरीर तथा आत्मा के गुण, कर्म स्वभाव में भेद अनिवार्य है। आत्मा अविकारी है, प्रकृति परिणामिनी है। ठीक इसी भांति आत्मा का धर्म अपरिवर्तनीय किन्तु प्रकृति परिणाम शरीर का धर्म बदलता है। आत्मा के कल्याण के लिए एक और केवल एक ही साधन भगवदुपासना है, किन्तु शरीर के कल्याण के लिए समय तथा देश के भेद से साधनों में भेद आना अवर्जनीय है। शीतकाल में शरीर के लिए गरम वस्त्रों की आवश्यकता है। ग्रीष्म में उन वस्त्रों से कष्ट होता है। शीत प्रधान देशों में ग्रीष्म ऋतु में भी गरम कपड़ों की अपेक्षा होती है।

किन्तु गरम देशों में वैसा नहीं होता। किन्तु आत्मा की उन्नति का एक ही उपाय है, चाहे वह काले का हो या गोरे का।

मनुष्य न केवल आत्मा है, और न केवल शरीर। वह तो दोनों है। अतः उसे युक्ति से दोनों धर्मों का पालन करना योग्य है। जो पुरुष केवल आत्मा की उन्नति करना चाहते हैं, शरीर की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। वे आत्मोन्नति कर ही नहीं सकते क्योंकि वे साधनकी उपेक्षा करते हैं। साधन हीन मनुष्य कभी भी अपने उद्देश्य को सिद्ध नहीं कर सकता। साधनों की उपेक्षा करने वाले को फिर वैसे साधन मिल सकेंगे, इसमें भी सन्देह है। क्यों कि यह प्राकृतिक नियम है, कि जिस वस्तु की हम उपेक्षा करें, वह वस्तु हमसे छीन ली जाती है, क्योंकि हमने नियमों की अवज्ञा की है। इस भाव को सामने रखकर वेद ने कहा है---

ततो भूय इवं ते तमो य उ विद्याया ँ रताः जो केवल विद्या-ज्ञान-आत्मचर्चा में ही लगे रहते हैं। शरीर की सर्वथा अवहेलना करते हैं, वे और भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं।

जो मनुष्य केवल शरीर पोषण में तत्पर रहते हैं। आत्मा को चिन्तना ही नहीं करते। उन्होंने तो मानो प्रकाश से अपना सम्बन्ध हटा लिया है, क्योंकि आत्मा चेतन होने से प्रकाशस्वरूप है, उसकी ओर से विमुख होने का अर्थ प्रकाश की ओर पीठ करना है, जिसने प्रकाश से मुख मोड़ा, उसके अन्धकार ग्रस्त होने में तो किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता इसी भाव को वेद ने 'अन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते' वे लोग घोर अन्धकार में पड़े हैं जो अविद्या--शरीर पुष्टिमात्र का ही ध्यान रखते हैं। ये दोनों प्रकार के मनुष्य कल्याण से बंचित रहते हैं। जैसे एक पहियेकी गाड़ी का चलना अशक्य है, वैसे ही एकांगी धर्म का पालन करने वाला कल्लाण कैसे प्राप्त कर सकता है। पूर्ण मनुष्य तो वही है, जो दोनोंके धर्मों का यथावत पालन करे। शरीर की भली प्रकार रक्षा करते हुए वह मृत्यु से बचा रहेगा, क्योंकि शरीररक्षा न करने से मृत्यु =आत्मा से शरीर का वियोग शीघ्र हो जाएगा, और मनुष्य प्राप्तव्य की प्राप्ति से वंचित रह जाएगा। इस वास्ते मृत्यु—अभीष्ट समय में शरीर वियोग से बचने के लिए अविद्या —विधिवत शरीर की रक्षा का अवलम्बन करते हुए आत्म कल्याण के लिए ज्ञान की चर्चा करते रहना चाहिए, इसके निरन्तर अभ्यास से वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, अपने स्वरूप में स्थिति का दूसरा नाम 'अमृत' है। इसको वेद ने 'विद्यां चाविद्यां च यस्त द्वेदो भयं ँ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽ मृतमश्नुते।

विद्या=आत्मचिन्तन तथा अविद्या=शरीर रक्षण के सहयोगको, एक साथ अनुष्ठान के महत्व को जो अनुभव करता है, वह अविद्या=शरीर रक्षण के द्वारा मृत्यु=अपमृत्य को परे करके विद्या=आत्मचिन्तनके द्वारा अमृत=स्वरूपस्थिति=मोक्ष को प्राप्त करता है।

ऋषि दयानन्द में यह दोनों धर्म उचित मर्यादा से लक्षित होते हैं। अतः यदि ऋषि को पूर्ण मनुष्य कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी।

ऋषि का सर्वाङ्ग सुन्दर बलिष्ठ शरीर, उनकी दीर्घ समाधि उनके इन गुणों के प्रबल परिचायक हैं।

———:o:———



क्रान्तिकारी दयानन्द

दयानन्द की आत्मा

(लेखक—पं० केशवदेव ज्ञानी आन्ध्र)

दक्षिण भारत में मृतात्मायें अधिक बोलती हैं। इसका कारण स्यात् यहां का समशीतोष्ण जलवायु है। प्रायः प्रत्येक नगर में मृतात्माओं के एजेण्ट रहते हैं। गुण्टूर के स्थानीय एजेंट एक लक्ष्मण स्वरूप एम० ए० हैं। आप स्थानीय कालिज में दर्शन शास्त्र के उपाध्याय हैं। आप की मनोवृत्ति बहुत ही कल्पनात्मक और भावुकतापूर्ण है। जरा जरा सी बात में मूर्छा आ जाती है जिसे इनके भक्त 'समाधि' का प्रतिष्ठित नाम देते हैं।

कुछ दिन हुए एक आदित्यवार को इनका थियोसोफिकल लाज में व्याख्यान था। विषय—'मृतात्माओं का निवास स्थान था।' ऐतिहासिक गवेषणाओं के साथ व्याख्यान प्रारम्भ हुआ और "एलसियोन", "मैडम ब्लैवेट्स्की", "कर्नल आल्काट", 'डाक्टर ऐनी बेसेन्ट', 'विशप लैडबीटर' आदि थियोसोफिकल नेताओं के पुराने जन्मों का इतिहास बतलाते हुए वर्त्तमान युग के अवतार कृष्ण जी की दैवीय उत्पत्ति के साथ समाप्त हुआ। व्याख्यान के अन्त में उद्घोषित किया गया कि यदि कोई कुछ पूछना चाहे तो व्याख्याता महोदय उत्तर देने के लिए तैयार हैं। लेखक ने खड़े होकर बड़ी नम्रतासे पूछा कि क्या व्याख्याता महानुभाव को स्वामी दयानन्द की आत्मा के विषय में कुछ पता है? हां, तुरंत जबाब मिला, वह चन्द्रलोक में है। वहां क्या कर रही है? आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न। यदि तुम विशेष जानना चाहते हो तो शनिवार सायंकाल मेरे मकान पर आओ, मैं दयानन्द स्वामी की आत्मा को बुलाऊँगा, और जो कुछ तुमने पूछना हो उस समय पूछ लेना।

\+ \+ \+

बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा के साथ पांच दिन बीते, आखिर शनिवार आया। प्रातःकाल से ही दिल में था वहां जाना है। वहां जाकर क्या पूछूंगा? कैसे बातचीत प्रारम्भ होगी? आत्मवादियों की कुछ चालाकियां भी सुन रखी थीं, उनसे कैसे बचूंगा? और यदि मीडियम ने कोई धोखा देना चाहा तो उसका पता कैसे लगेगा? इत्यादि, इत्यादि।

मध्यान्ह हुआ, हम भोजनांतर कुर्सी पर बैठे समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। इतने में मृतात्माओं के एजेण्ट का एक संदेशहर आया। एक पत्र भी लाया जिस में लिखा था कि ठीक ६॥ बजे सायंकाल बैठक प्रारम्भ होगी। आप अवश्य दर्शन दें।

जिसने भला पहले पांच दिन गिन २ कर बिताए हों उसे भी निमन्त्रण की आवश्यकता और 'अवश्य दर्शन दें' का आग्रह। अस्तु, हम ६ बजे ही वस्त्र पहिन घर से निकले। रास्ते में कुछ सामाजिक मित्रों से बातचीत होती रही। हमें भय था कि कहीं देर न हो जाय, शीघ्र ही नमस्ते कर प्रोफेसर लक्ष्मणस्वरूप जी के मकान की ओर बढ़े। दरवाजे पर पहुंच कर खयाल आया घड़ी तो देखें। घड़ी जेब से निकाली। अभी केवल ६ बजकर बीस मिनट हुये थे। दस लम्बे मिनट शेष थे। अब वापिस जाना अनुचित समझकर पौढ़ियों से प्रोफेसर साहिब की लाइब्रेरी में जा पहुंचे। एक मेज सजी हुई थी। हलके गुलाबी रंग का मखमली टेबल क्लाथ जिसके नीचे सुनहरी रंग के झालर लटक रहे थे, मेज की शोभा बढ़ा रहे थे। मेज के

ठीक बीच में एक फूलों का गुलदस्ता जिसकी धीमी २ सुगन्ध मादकता लाने वाली थी, रखा था। मेज के एक किनारे एक छोटी सी प्लैञ्चिट जिसके दो छोटे २ रबर के पहिए और तीसरे पहिये के स्थान पर एक वायलिट पैंसिल लगी थी, पड़ी थी। उसी के साथ सफेद ग्लेज़ पेपर के कुछ ताव थे।

ठीक साढ़े छः बजे लाइब्रेरी का दरवाज़ा अन्दर से बंद कर दिया। एक कोने में छोटे से स्टैण्ड पर मोमबत्ती जलाकर उसपर आकाशी रंग का ग्लोब चढ़ा दिया गया। मेज के चारों ओर छः व्यक्ति बैठे थे। प्रोफेसर साहिब, मीडियम, प्रोफेसर साहिब के २ मित्र, मैं और एक परदेशी। धीरे धीरे कुछ संस्कृत के श्लोक बोले गए, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं सुना। शायद वे किसी तंत्र ग्रंथ में से हों। पहले मेरे और परदेशी के अतिरिक्त शेष चारोंने प्लैञ्चिट पर हाथ रखे प्लैञ्चिट हिलने लगी। नीचे एक कागजका ताव रख दिया गया। कुछ रेखायें पड़ीं। प्रोफेसर साहिबने आज्ञा दी कि साफ २ लिखो। कुछ अक्षर दिखाई दिए। पता लगा कि कोई आत्मा परलोक से आई है और हम लोगों से बहुत प्रसन्न हैं। यदि हम कुछ चाहें तो करनेको उद्यत है।

प्रोफेसर साहिब ने पहिले कुछ इधर उधर के प्रश्न पूछ कर कहा" क्या आप दयानन्द स्वामी की आत्मा को जानते हैं? हां! " वह कहां पर है?" चन्द्रलोक में।" वहां क्या करतीं है" अपनी उन्नति के कार्य।" वहां के कार्य किस प्रकार के होते हैं? इस के उत्तर में स्थूल, सूक्ष्म, और भौतिक, अभौतिक कार्यों पर विवेचना होती रही जिस से हमें यहां प्रयोजन नहीं। अन्त में प्रोफेसर साहिब ने पूछा " क्या आप दयानंद स्वामी की आत्मा के पास हमारा निमन्त्रण लेजा सकते हैं? मृतात्मा ने कुछ रुक कर जवाब दिया' मुझे दुःख है, मेरी वहां तक पहुंच नहीं। चंद मिन्ट हम कुछ निराशा की अवस्था में रहे। पुनः एकदम प्लैञ्चिट हिलने लगी। पता लगा कि आगत-आत्मा का एक मित्र है। जो सम्भवतः हमारा सहायक हो सके।

अस्तु:, लगभग आधे घंटे तक सब निश्चल बैठे रहे। केवल मीडियम का हाथ प्लैञ्चिट पर था प्लैञ्चिट जोर से हिली। नीचे रखे कागज पर तेज़ी से लकीरें पड़ने लगीं। प्रोफैसर साहिब ने भी प्लैञ्चिट पर हाथ रखा। पता लगा कि स्वामी दयानंद की आत्मा आ गई है और कहती है ' जल्दी करो' जो कुछ पूछना है पूछो, मुझे अवकाश कम है। प्रोफेसर ने मेरी ओर देखा और दयानंद की आत्मा से पूछा ' क्या आप इन्हें जानते हैं जो मेरे बाईं ओर तीसरे नम्बर बैठे हैं? हां! ये पंडित केशदेव ज्ञानी आर्यन मिशनरी हैं। ये पंजाब के रहने वाले हैं आन्ध्र-देश में बड़ा उत्तम कार्य कर रहे है,। मैं इन से बहुत प्रसन्न हूं। उन्हें मेरा आशीर्वाद कहिये।

अब स्वामी जी से बात चीत करने की हमारी बारी आई। ' पूज्य स्वामी जी! आज कल आप किस विशेष कार्य में लगे हुए हैं? हम ने पूछा। चंद्रलोक में जितनी आत्माएं हैं उन्हें पुनर्जन्म से छूटने के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। मैं भी वही कर रहा हूं। अभी कितना समय लगेगा? चार वर्ष। उस के बाद मैं देवयोनि में आजाऊंगा। फिर? तुम्हें इन बातों के जाननेकी आवश्यकता नहीं।

अच्छा! आप का जन्म स्थान कहां था? काठियावाड़ में मौरवी ग्राम! आप के पिता का क्या नाम था? अम्बाशंकर। आप के भाई बहिन कितने थे? केवल एक बहिन थी। जिस शिवालय में आप पूजा के लिये गए थे उसे किसने बनवाया था? मेरे पिता ने। वह मंदिर ग्राम के किसओर है? इस के उत्तरमें प्लैञ्चिट कुछ रुक गई मानो विचार रही हैं। फिर हिली। पता लगा

पश्चिम में। नदी के किस ओर? प्लैञ्चिट फिर ठहरो, और कुछ समय बाद उत्तर मिला, पूर्व में।

[हमें सन्देह हुआ क्योंकि ऊपर के दोनों ही उत्तर अशुद्ध थे। मंदिर ग्राम के दक्षिण ओर तथा नदी के पश्चिमी किनारे पर है]

प्रस्तुत आर्यसमाज का संस्थापक कौन था? 'मैं स्वामी दयानंद, समाज के वर्तमान आर्य के विषय में आप की क्या सम्मति है?' यद्यपि समाज ने शिक्षा और शुद्धि के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है तथापि जो मेरी इच्छा थी वह पूर्ण नहीं हुई। मैं चाहता था कि समाज में वेदों के विद्वान उत्पन्न हों और देश देशान्तर तथा द्वीप द्वीपांतर में फिर से आर्य-सभ्यता के सूर्य का उदय हो। समाज में जो पार्टियां हो गई हैं, उन से भी बहुत नुकसान हो रहा है। समाज के वर्तमान कार्यकर्त्ताओं में सच्चा धार्मिक भाव नहीं है। वे इसे राजनीति और जातिवाद की दल दल में धसेलना चाहते हैं। एक बार मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा।

स्वामी जो! वह सुदिन कब और कहां होगा? 'मैं आज से दस वर्ष बाद फिर जन्म लूंगा। पंजाब में लुधियाना एक नगर है। वहां एक सच्चरित्र ब्राह्मण परिवार है। उसी में मैं फिर शरीर धारण करूंगा, षडङ्ग-वेदाध्ययन कर संन्यासी बनूंगा। वेदभाष्य जो अभी तक असम्पूर्ण है। उसे समाप्त करूंगा। प्रस्थान त्रयी की भी त्रैत-दृष्टि से टीका करूंगा। समाज में जो पार्टियां हैं, उन्हें नष्ट कर सभी सभासदों और संस्थाओं को एक सूत्र में पिरोऊंगा। ३५ वर्ष की आयु में कुछ सहायक साथ ले एशिया के भिन्न २ देशों में वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ निकलूंगा। तदुपरान्त अमरीका और योरप भी जाऊंगा।

'अच्छा! मेरा समय हो गया। तुम्हारे से मैं बहुत प्रसन्न हूं। आशीर्वाद।

प्लैञ्चिट रुक गई। घड़ी ने ठीक आठ बजाए। हम सब उठे और चुपचाप अपने घरोंका रास्ता लिया।

❀ ❀ ❀

बहुत दिन हो गये, मैं इसी उधेड़ बुन में था कि क्या सचमुच दयानंद की आत्मा आई थी? और यह संदेश उसी का था? मन में स्वभावतः अविश्वास था परंतु अविश्वास का कारण न पता चलता था।

ठीक एक सप्ताह बाद, आदित्यवार प्रातः समाज का सत्संग था। अग्नि होत्र के अनंतर मैंने यजुर्वेद के एक मंत्र की व्याख्या की। आज की सभा में उस दिन का मीडियम भी आया हुआ था। समाप्तिपर मैंने उसे भोजनके लिये निमंत्रण दिया। सब लोग चले गये और हम दोनों भोजन की प्रतीक्षा में परलोक सम्बंधी बातें करने लगे। उसने लंडन-आत्मिक-सोसाइटी और सर ओलिवर लॉज की बहुत सी बातें बतलाईं। ...... । अन्दर से भोजन के लिये आवाज़ आई। मीडियम, मैं और शान्ति जी इकट्ठे भोजन के लिये बैठे। भोजन शुरू किए थोड़ा समय ही गुजरा था कि मीडियम ने कुछ चबाते हुए कहा 'ज्ञानी जी! आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि पिछले शनिवार बैठक से पहले प्रोफेसर जी ने मुझे कहा था कि प्लैञ्चिट पर हाथ बहुत हलका रखना, और जैसी मैं चलाऊं चलने देना।" यह सुनते ही हमारे हाथ का ग्रास थाली में ही गिर गया और हमने सन्देह तथा आश्चर्य से पूछा "तब उन्हें स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में इतना परिज्ञान कैसे हुआ?" मीडियम ने खिलखिला कर कहा—"पिछले मंगलवार आपसे कोई लाला लाजपतराय की लिखी "दो आर्यसमाज" नामक अंग्रेजी की पुस्तक पढने ले गया था?" हमने सिर खुजा कर कहा 'हां'। "वह प्रोफेसर साहब ने ही मंगवाई थी।"

———:o:———

बंगाल-प्रांत में ऋषि के कार्य की पूर्ति कौन करे ?

———:०:———

[ले० प्रो० रमेशचन्द्र बनर्जी नरेल विक्टोरिया कालिज रतनगंज बंगाल]

——— :०:———

जगत गुरु दयानन्द ने लगभग तीन महीने बंग देश में रहकर अपना वेदप्रचार व्रत पालन किया था। ई० १८७२ साल के डिसेम्बर में स्वामी जी महाराज का कलकत्ते में पधारना तत्कालीन एक मात्र स्थानीय अखबार "इंडियनमिरार" में निम्न लिखित शब्दों में प्रकाशित हुआ था ।

"मूर्तिपूजा के महाखंडनकारी पं० दयानन्द सरस्वती, जो काशी के शास्त्र युद्ध में पंडितों को पराजित कर के उत्तर भारत में मशहूर हो चुके हैं, कलकत्ता पधारे हैं और राजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर के बागीचे में ठहरे हैं।"

उस समय कलकत्ते में "इंडियन मिरार" (Indian Mirror) की प्रतिष्ठा उतनी ही थी जितनी प्रतिष्ठा अब 'फारवार्ड' (Forwrrd) या 'अमृत बाजार [Amrita Bazar] की है। अंग्रेजी भाषा में शिक्षित बंगाल्लियों का वह ही मुखपत्र था। "इंडियन मिरार" बराबर स्वामी जी के प्रति श्रद्धा के साथ उनके काम को मदद देते थे।

बंगालियों के मुखिया व्यक्ति सभी स्वामीजी के दर्शन के लिए आते थे, उनके व्याख्यान सुनते थे, शंका समाधान करते थे। पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न, पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति, केशवचन्द्र सेन, राजनारायण वसु, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, वारिष्टार चन्द्रशेखरसेन इत्यादि महानुभावों का आगमन नित्य होता था। आदि ब्रह्मसमाज के ४३वें वार्षिकोत्सव में स्वामी जी को आमंत्रण किया गया था और उस अवसर पर अनेकों के साथ वैदिकधर्म सम्बन्धीय वार्तालाप हुआ था।

स्वामी जी की भाषणशक्ति ने बंगवासियों को आश्चर्यित कर दिया था, ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध लेखक राजा राममोहन राय के जीवनी लेखक श्रीयुत नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने स्वामी जी के संक्षिप्त जीवनचरित में लिखा है: "जिस रोज मैंने पहले केशव बाबू के घर में स्वामी जी का व्याख्यान सुना उस रोज एक नयी ताज्जुब चीज मुझकोप्रत्यक्ष हुई। मैं नहीं जानता था कि संस्कृत भाषा में ऐसा सरल मीठा भाषण हो सकता है। स्वामी जी ऐसी सरल भाषा में बोलते थे कि संस्कृत के महामूर्ख भी आसानी से समझ लेते थे। और एक विषय मुझे आश्चर्य मालूम हुआ। मैंने पहले अंग्रेजी के अनभिज्ञ हिन्दू संन्यासी के मुंह से धर्म या समाज सम्बन्ध में ऐसा उदार सिद्धांतों का व्याख्यान कभी नहीं सुना।"

बंगाल के मुखिया पुरुषों के चित्त में महर्षि का प्रभाव बड़ा गहरा हुआ था। हुगली में एक सार्वजनिक सभा में जहां प्रसिद्ध भूदेव मुखोपाध्याय उपस्थित थे स्वामी जी के साथ ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ हुआ और तर्करत्न का पराजय हुआ। इस शास्त्रार्थ का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था।

वस्तुतः स्वामीजी के वेद भाष्य इत्यादि ग्रंथों के प्रकाशनकी चर्चा भी हुई थी। 'इंडियनमिरार' ने लिखा था कि "हम आशा करते हैं कि स्वामी

जी के संस्कार मूलक सिद्धान्तों को छोटे २ ट्रैक्ट रूप में प्रकाशन के लिए एक कमेटी बन जायगी।''

परन्तु स्वामी जी के बंगाल से प्रस्थान के बाद सब काम बन्द हो गया। कईयों का कहना है कि स्वामीजी के बंगाल में फिर न आने का कारण यही था कि आप बंगालियों से बहुत नाराज हुए थे। स्वर्गीय देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने ठीक ठीक कहा था कि जिस सन्यासी ने जगत के हित के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था उनके हृदय में प्रांतीय पक्षपात होना असम्भव है।

स्वामीजी की महान आत्मा परमात्मा की गोद से दुःख के साथ देखती हैं कि उनका अधूरा काम पूरा करने के लिए यथोचित प्रयत्न नहीं किया जाता है।

जब स्वामी जी महाराज बंगाल में आए थे तब ब्रह्म समाज का अतुलनीय प्रभाव था। यद्यपि ब्रह्म समाज का दृष्टिकोण दूसरा था, तथापि संस्कार कार्य के विषय में ब्रह्म समाज आर्य समाज का काम ही करता था। इस लिए सम्भव है कि उस समय तुरन्त आर्य समाज की स्थापना यहां नहीं हुई। परन्तु अब लगभग अर्द्ध शताब्दी के बाद चित्र पलट गया। ब्रह्म समाज का उतना प्रभाव नहीं रहा। शुद्धि संगठन के कारण आर्य समाज की प्रतिष्ठा भी बढ़ गयी परन्तु कार्य कर्ताओं के अभाव से इस प्रांत में आर्य समाज का काम हिन्दू मिशन और हिन्दू सभा ने ले लिया है। महर्षि के अनुयायी पीछे हट गये।

हा महर्षि! तुम्हारा अधूरा काम कब पूरा होगा? कब प्रांतीय संकीर्णता का पाप तुम्हारे अनुयायियों में से दूर हो जायगा?

स्वामी जी महाराज शूरवीर थे। एक संस्कृत के कवि ने ठीक कहा है कि— "उत्तम चरित्र के पुरुष सैकड़ों बाधाऐं आजाने पर भी आगे ही बढ़ता है" जब स्वामीजी महाराज ने जोधपुर जाने का संकल्प कर लिया। तब कुछेक भक्तों ने उनको कहा कि जोधपुर में भारी विपदा की सम्भावना है। स्वामीजी महाराज के वीर हृदय ने डर को नहीं जाना था। वे तुरन्त चल पड़े। सच्चा मिशनरी को स्वभावही ऐसा होना है जहाँ रुकावट वहाँ ही प्रबल प्रयत्न। परन्तु हम क्या देखते हैं? एक महा· सेठजी ने उस रोज़ मुझे कह दिया:— "बंगाल से मैं निराश हूं।" आप कलकत्ते में करोड़ों रुपया कमाते हैं और इधर उधर बहुत दान देते हैं परन्तु बंगाल को थोड़ा ही मिलता। अस्तु। ये सब जंगल में रोना है। परन्तु मेरे मन में बराबर यही प्रश्न उठता है—"महर्षि का अधूरा काम कब पूरा होगा?



महर्षि दयानन्द के महत्व के हेतु

(लेखक—भवानीप्रशाद जी हल्दौर जिला बिजनौर)

आज संसार में सनातन सार्वभौम धर्म के सम्मान्य संस्थापक, वैदिक विधि के अनुपम प्रचारक, भव्य भारत भूमि में साम्प्रतिक सर्व सुधारों के आदि आविष्कारक और प्रबल प्रसारक, कल्याणी वेद वाणी की सुविचारसंगत अभिनवभाष्यशैली के प्रादुर्भावक, विलासिता और विषय सेवन के विष से विह्वल विश्व के लिए ब्रह्मचर्य की संजीवनी बूंटी के विधायक वैद्य, सर्वविध उन्नतियों के आदिम आन्दोलक, आर्य समाज के प्रतिष्ठाता आचार्य, अधमोद्धारक, पतित पावक और परमोदार महर्षि दयानन्द के बालविशाल हृदय में बोधांकुर उपजाने वाले पुण्य पर्व श्रीमद्दयानन्द बोधरात्रि के आदरणीय अवसर पर उक्त सुगृहीतनामधेय, धर्मधौरेय महात्मा के गुणानुवाद का सुयोग्य अवसर प्राप्त है। इस समय जगद्गुरु वृद्ध भारत ही नहीं, किन्तु सारा संसार महर्षि के महत्व के आगे सिर झुका रहा है और उस कर्मवीर की गुणगरिमा की गाथा गाते हुए उस के कर्म कलाप की शतमुख से स्तुति कर रहा है। ज्यों ज्यों समय आगे बढ़ता जायगा, संसार महर्षि के महोपकारों का अधिकाधिक कृतज्ञ होता जायगा। महापुरुषों की गुणावली का गान और यशों का बखान किसी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक वीर पूजा का एक प्रधान अंग है और तद्द्वारा बल-प्राप्ति का सुलभ साधन है तथा गुण-ग्राहकता के रूप में उज्ज्वल पक्ष का निदर्शक है। किन्तु उसमें अतिशयोक्ति, मिथ्या कल्पना और श्रद्धाजाड्य की अति मात्रा, साम्प्रदायिक व्याधि और मतमतान्तर के हानिकारक रोग के उत्पादक हैं और उससे बलसंचय और उत्साह वृद्धि के लाभ के स्थान में मानसिक दौर्बल्य और किसी अलौकिक शक्ति के पराश्रयण की हीनता आ जाती है। परमोदार महर्षि के संस्थापक आर्यसमाज को अपने सम्मान्य संस्थापक की वर वीर पूजा में पश्चात्पद न रहना चाहिये और वह अपने इस कर्तव्य पालन में कभी किसी से पीछे भी नहीं रहा है। किन्तु खेद है कि आर्य समाज में स्वल्परूप में इस उपर्युक्त व्याधि का भी आविर्भाव हो चला है और इस लिए उसके स्वास्थ्य के संरक्षक हितैषी वैद्यों का कर्तव्य है कि वे इस व्याधि के प्रतीकार का अभी से उपक्रम करें। भलाई चाहने वाले व्याधि अग्नि और शत्रु को कभी छोटा नहीं समझते। जैसा कि महा कवि माघ की उक्ति है—

उत्तिष्ठमानस्तु परो, नोपेक्ष्यो भूतिमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ, वर्त्स्यन्तावामयः स च ॥

बढ़ती हुई व्याधि और वैरी कभी उपेक्षा के योग्य नहीं है। इस लिए इस क्षुद्र किन्तु वर्धमान व्याधि का कुछ निदान नीचे दिया जाता है--

१. कुछ लोग अन्य मतों के संस्थापकों के समान आर्य समाज के संस्थापक, मिथ्या विश्वास के मूलोच्छेदक महर्षि दयानन्द को भी अलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शक प्रसिद्ध करने के प्रयत्न में हैं। एक अति श्रद्धालु, किन्तु तार्किकम्मन्य पुराने आर्यसमाजी रईस ने अपने शिशु की अति रुग्णावस्था में, उनको स्वप्न में महर्षि दयानन्द के दर्शन देकर, आगे से उस शिशु के रोग निवारण की

सूचना वा वरदान देने तथा निद्रा से जागते ही उसके रोग के सर्वथा लुप्त हो जाने की घटना सुनाई थी। उन्हीं महाशय ने किसी से सुनी हुई यह कथा भी कही थी कि महर्षि दयानन्द सूत के एक कच्चे धागे को ऊपर फेंक कर उसके सहारे आकाश में चले गये थे और फिर इसी के द्वारा नीचे उतर आये थे। ऐसे लोगों के निर्विवेक वर्णन इस समय आर्य समाज में वही समय ला रहे हैं जो कि मुसलमानी मत के इतिहास में उसके संस्थापक मोहम्मद महोदय की मृत्यु के पश्चात् उनके विविध सहवासियों के मुख से उनकी अलौकिक जीवन सम्बन्धी घटनाओं के वर्णन के रूप में हदीसों के साहित्य की उत्पत्ति का काल था। प्रत्येक मत के ग्रन्थ उसके संस्थापक की जीवनी के अलौकिक वर्णनों से भरपूर हैं। पौराणिकों के पुराण, बौद्धों के जातक, मुसलमानों की हदीसें और ईसाइयों की इंजीलें इसके निदर्शन हैं। क्या आर्य समाज के संचालक भी आर्य समाज में इस प्रकार का साहित्य उत्पन्न हुआ देखना चाहते हैं?

२. महर्षि दयानन्द के कुछ अन्ध भक्त महर्षि दयानन्द को निर्भ्रान्त और सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते हैं। उनके विचार से महर्षि दयानन्द के किसी वर्णन में, यहां तक कि ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णनों में भी कहीं कोई भ्रांति नहीं है। आज कल की ऐतिहासिक अन्वेषणाएं कई प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थापनाओं को भी भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर रही हैं। उदाहरणार्थ पृथ्वीराज और जयचन्द्र के दिल्ली में अनङ्गपाल द्वारा गोद लिए जाने, कन्नौजाधिपति जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर में उसके पृथ्वीराज द्वारा हरे जाने तथा ईर्ष्या से जयचन्द्र के शाहबुद्दीन गोरी को दिल्ली पर चढ़ा लाने की घटनाएं निराधार सिद्ध हो चुकी हैं। भौगोलिक आधारों में तो प्रायः परिवर्तन होते ही रहते हैं। ऐसी अवस्था में महर्षि दयानन्द के किसी भी ऐतिहासिक या भौगोलिक वर्णन में भी निर्भ्रांति की भावना निरी भ्रांति ही है। इसी भावना के वशवर्ती होकर एक आर्यसमाज के उत्सव के बहुमूल्य समय का आधा दिन इसी वितण्डा में बीता था कि गीतगोविन्दकार जयदेव और श्रीमद्भागवत प्रणेता बोपदेवके भाई होनेका महर्षि कृत वर्णन सत्य है वा नहीं। इस मन्दमति लेखक की समझ में यह अभी तक नहीं आया है कि श्री जयदेव और बोपदेव के भाई प्रमाणित न होने से महर्षि दयानन्द की क्या गौरव-हानि हो सकती है? आर्य समाज में एक और कल्पना प्रबल हो रही है कि संस्कृतज्ञता, वैयाकरणता तथा दार्शनिकता में महर्षि दयानन्द का कोई समकालीन विद्वान उनका समकक्ष न था वा उक्त विषयों में महर्षि दयानंद से कभी कोई स्खलन न हो सकता था अथवा उनकी संस्कृत रचना में कोई प्रयोग भी चिंत्य नहीं हो सकता। इन विषयों को भी लेकर व्यर्थ के वितण्डा और जल्प का पर्याप्त प्रचार हो रहा है। महर्षि दयानन्द का महत्व उनकी अद्वितीय दार्शनिकता, प्रौढ़ व्याकरणज्ञता वा सुललित संस्कृत रचना कौशल में नहीं है प्रत्युत उनका जो सर्वोपरि गौरव है, वह भारत में नवयुग प्रवर्तक और प्रचलित आधुनिक सब सुधारों के आदि आविर्भावक तथा प्रबल प्रचारक के रूप में हैं। उनकी आचार्यता किसी नवीन सम्प्रदाय के प्रवर्तन वा मत संस्थापन के कारण नहीं है प्रत्युत निरुक्तकार यास्क के-

आचार्यः कस्मात्? आचार्य आचारं ग्राहयत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा।

इस वचनानुसार इस कलिकाल में आचारहीन आर्य सन्तानको सदाचार पथ में प्रवृत्त करने, इस युग में लुप्तप्रायः वेदों की युक्तियुक्त यौगिकार्थ मूलक अभिनव किन्तु प्राचीन यास्कीय अर्थ शैली के पुनः प्रचार तथा जनता को प्रत्येक विषय के विचार में बुद्धि स्वातन्त्र्यसे काम लेने का अभ्यासी बनाने से है। किन्तु कोई आचार्य वा महापुरुष न 'सर्वः सर्वं जानाति' के न्यायानुसार न तो सब

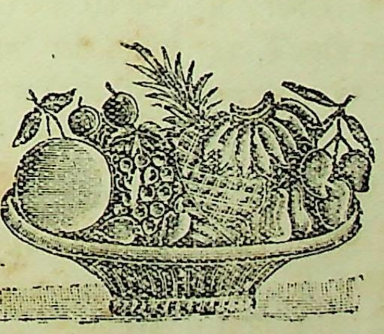
विषयों का सर्वज्ञ विद्वान् ही हो सकता है और न ही मानवी बुद्धि का सर्वोपरि विकास किसी पुरुष विशेष तक सीमित रह सकता है। तब महर्षि दयानन्द को इन कल्पनातीत उपाधियोंसे विभूषित करना उनके सुन्दर स्वरूप और रम्य रूप को विकृत करना मात्र है। संस्कृत सी सम्प्रति साहित्यमात्र प्रयुक्त और अव्यवहार्य भाषा की रचना में किसी चिन्त्य प्रयोग की अप्राप्ति की आशा दुराशा मात्र है। ऋषि मुनियों और महा कवियों तक के ग्रन्थ व्याकरण दृष्ट्या अपप्रयोगों से रहित नहीं हैं। उनके कर्ताओं के आदरातिरेक के वशवर्ती हो कर हम उनके अपाणिनीय प्रयोगों को आर्ष प्रयोग कह कर ही अपना समाधान करते रहते हैं। तब महर्षि दयानन्द के भी किन्हीं चिन्त्य वा विवादास्पद प्रयोगोंको आर्ष कह कर इस व्यर्थ विवाद का अन्त क्यों न कर दिया जाया करे?

३. आजकल आर्यसमाज के मौखिक प्रचार-विभाग में संगीत भाषा और भाव के भञ्जक भजनोपदेशकों के भजन जनता में किस कुरुचि का संचार कर रहे हैं वह सुरुचि के उपासकों के लिये कम उद्वेजक नहीं है। इन्हीं भजनाभासों का एक भाग महर्षि दयानन्द के चरित्रगान के अर्पित है। उनमें महर्षि के चरित की कई घटनाओं को इस प्रकार घटा बढ़ा कर और तोड़ मरोड़ कर कटु अपशब्दों में ऐसी भद्दी रीति से गाया जाता है कि उनको सुन कर आर्यसमाजिकों के सहवासी अन्य मतावलम्बी भारतवासियों का जी दुःखे बिना नहीं रह सकता। उदाहरण के लिए अ० भा० वर्षीय ख्याति के एक आर्यसामाजिक महोत्सव पर एक सभ्यता की सीमा को लांघने वाले, नाम निकले हुए "बदज़बान" आर्यभजनोपदेशक ने महर्षि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ की घटना को ऐसे अस्त-व्यस्त रूप तथा निन्दित और घृणित कटु बचनों में गाकर सुनाया था कि जहाँ उससे उस घटना के इतिहास का रूप सर्वथा पलट गया था वहाँ एक ही वेद को प्रमाण मानने वाले दो सम्प्रदायों में वैमनस्य की अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए वह बेहूदा बकवास तोप के पलीते का काम दे सकती थी। इस पर भी अधिक खेद की बात यह थी कि उन जुगुप्स्य भजनाभासों को आर्यसमाजकी चोटी के नेता कहलाने वाले कई शान्तिमूर्ति महानुभाव सिर हिला हिला कर सुन रहे थे। प्रथम तो काशी शास्त्रार्थ स्वयं एक ऐसी घटना है जो शिष्ट सम्मत सभ्यानुसृत न्यायशास्त्र की गौतम पद्धति के संवाद की सीमा लांघती हुई जन कोलाहलपूर्ण वितण्डा के अधिकतर समीप पहुंचती हुई प्रतीत होती है और पुरानी पंडित मंडली की स्वविपक्षी को येन केन प्रकारेण गिरा कर स्वविजयोद्घोष का एकमात्र उद्देश्य रखने वाली मल्लयुद्धानुसारिणी शास्त्रार्थ शैली का स्मारक मात्र कही जा सकती है। फिर उसको मतवाद के नील के माट में डुबा कर अधिक गहरा रंग चढ़ाने से उसका रूप कुछ का कुछ हो जाता है और काल पाकर वह मुसलमानों के शीया सम्प्रदाय के सुन्नियों के खलीफाओं पर तबर्रा पढ़ने की कलहोत्पादक कुप्रथा की प्रतिकृति बन सकता है। उस शास्त्रार्थ के वादी प्रतिवादियों का परस्पर कटुवचन वाण वर्षा चाहे उस समय की प्रचलित शास्त्रार्थ प्रथा के अनुसार क्षम्य मान ली जाय किन्तु इस समय भारतीय राष्ट्र की निर्माण वेला में उस समय की काशीकी गौरवभूत विद्वन्मंडली को पोप आदि जघन्य अपशब्दों से स्मरण करना सभ्यताभिमानी आर्य नामधारियों के लिए शोभाप्रद नहीं है। फिर ऐतिहासिक घटनाओं की ऐतिहासिक यथार्थता क्षुण्ण रखना भी इतिहास प्रेमी आर्य विद्वानों का परम कर्तव्य है। महर्षि दयानन्द के जन्मस्थान के शोध के विषय में प्रबल उद्योग करके आर्य इतिहासकारों ने स्वकर्तव्य का परिचय दिया भी है और महर्षि के पाञ्चभौतिक नश्वर देहत्याग के कारणभूत विष प्रयोग प्रकार के विषय

पर भी कुछ शोधात्मक आन्दोलन आर्य पत्रों में हुआ था आशा है कि उसके समान महर्षि की जीवनी सम्बन्धी तथा आर्यसमाज की अन्य घटनावली विषयक ऐतिहासिक तथ्य की अन्वेषणा होकर इतिहास की संरक्षा भी होती रहेगी और उसका शुद्ध स्वरूप मतवाद के प्रहार से सुरक्षित रहेगा।

उपसंहार

उपसंहार में यही निवेदनीय है कि महर्षि दयानन्द की महामहिमा और महत्व के हेतु उस कर्मवीर के कर्मयोगमय क्रियाकलाप निष्काम कर्मण्यता और महोपकार में ही अन्तर्निहित हैं। महर्षि दयानन्द के पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती एक से एक बढ़ कर बड़े २ दार्शनिक, संस्कृत व न्यायके प्रकाण्ड पंडित, मानसिक विकास के महाकाय प्राणी तथा योग विद्या के रहस्यों के पारंगामी और शारीरिक उन्नति के दानव, अनेक कला कोविद, भारत राष्ट्र के गौरव धन भारत वसुन्धरा पर अवतीर्ण होते रहे हैं पर उनमें से विविध आधि व्याधि-व्यथित भारत माता के दारुण दुःखों के लिए कितनों के हृदयों में वेदना का अनुभव हुआ था? कितने दर्दमन्द दिलों को इस दर्द ने बेचैन बनाया था और कितनों को उसकी ओषध की खोज में वन वन भ्रमाया था? विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दि में भारत माताके सर्व दुःखों की अमोघ औषधि का सब से पहले यदि किसी ने प्रयोग किया तो वह उसके सुपूत दयानन्द ने ही किया था। अन्य विविध विद्याओं के विद्वान् कलाओं के कोविद और योगी अपने अपने विद्यानन्द और योगानन्द में ही तल्लीन रहते थे। भारत जननी की दुःख परम्परा ने दयानन्द के दयामय हृदय को बिह्वल बना कर और ब्रह्मानन्द से हटा कर भारत के नगर नगर और ग्राम ग्राम की गलियों में भटकाया था और रोगी जनता के गाली गलौच और प्रहार तक सहन करने में आनन्दानुभव कराया था। जिन सुधार आन्दोलनों की आजकल विशाल भारत में सर्वत्र धूम है उनका सूत्रपात आज से ५० वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द के हाथों हो चुका था। आज भारत का विचारक मस्तिष्क महर्षि दयानन्द के बतलाए विधानों और प्रयोगों का अनुयायी है और भारत के कोने कोने में उनको काम में लाया जा रहा है। महर्षि दयानन्द के आविर्भाव से लेकर इस समय तक भारत में युगान्तर उत्पन्न हो चुका हैं और यदि पीछे की ओर दृष्टिपात किया जाता है तो प्रतीत होता है कि हम कहीं से कहीं आ पहुंचे हैं यद्यपि चलने के लिए आगे बहुतसा मार्ग पड़ा है। ऐतिहासिक की दीर्घ दृष्टि में इन उन्नतियों और कचस्यःपरम्पराओं का सारा श्रेय आर्यसमाज के प्रतिष्ठाता आचार्य के सुकर्म कलाप को ही रहेगा। और यही महर्षि दयानन्द के महत्व के मुख्य हेतु हैं।



ऋषि दयानन्द और साधन ।

——:o:——

(लेखक श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य अमृतधारा लाहौर)

——:o:——

हम देखते हैं कि कई दूसरे मतों में लोग इसलिए प्रविष्ट होते हैं कि वहां उनको कुछ उन्नति के साधन दिखाई देते हैं।

निस्संदेह ऐसी जनता भी है जो कि यह देखती है कि अमुक स्थान पर मेरा अपना उपकार किया हुआ है मेरी आत्मा नीचे को जाती है वा उभरती है. मुझे कुछ शान्ति सन्तोष मिला है, अथवा आगे से भी चञ्चल हूं।

मुझे एक बार एक भाई राधा स्वामी मिले, उन्होंने कहा कि पहले मैं आर्य था, मैंने उनसे प्रश्न किया कि श्री स्वामी जी तो हमारे लिए नियम ही बना गये हैं कि "असत्य को छोड़ने और सत्य को ग्रहण करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए" परन्तु यह तो बतलाइये कि वहां आप को कौनसी सचाई मिली है, उन्होंने कहाकि यह मैं नहीं जानता, मुझे तो इससे शान्ति है कि वहां कुछ मिला है, कुछ साधन सीखा है उसको कर रहा हूं, मन कुछ एकाग्र होता है, कई वर्ष आंखें बंद करके संध्या करते रहे परन्तु मन कहां टिकता है।

सोचने से पता लगता है, कि आर्य्यसमाज के प्रवर्तक ने तो बराबर इन बातों का उपदेश किया था, परन्तु जगत् सुधार के प्रवाह में हमने अभ्यास और साधनों को पीछे डाल दिया, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में जहां उपासना विषय लिखा है, वहां पातंजलि योग सूत्रों का ही अनुवाद किया है, और पीछे कह दिया कि अधिक देखना हो तो योग शास्त्र पढ़ें, और योग समाधि में मन को एकाग्र करके शांति पावें।

नैत्यिक संध्यामें भी अभ्यास करने का उपदेश है यहां तक आवश्यक समझा है कि संस्कारविधि में श्री स्वामी जी महाराज कहते हैं कि ब्राह्म मुहूर्त में उठकर बाहर चले जावें, शौच आदि से निवृत होकर योगाभ्यास की रीति ईश्वरोपासना का आनंद उठाकर घर में लौटकर संध्या अग्नि होत्रादि करें, संध्या जो कि नित्य का कर्म है, उसको भी अपने अभ्यास से पृथक् कर दिया, परन्तु हमारे हां तो न सीखे और न किसी को सिखाया, जिसको स्वामी जी की पुस्तक से लगन भी हुई उसको कहीं बाहर से जाकर ही सीखना पड़ा।

आर्य्य समाज का पदारोपण इस ओर बहुत ढीला है, इसीलिये आज मैंने यही निवेदन किया है कि आर्य्य विद्वान् सोचें और ऐसी विधियां स्वीकार करें जिससे आर्य्य समाज के भीतर यह प्रवाह चल जावे, और आर्य्य समाज के सत् संगों में ही भक्ति रस आजावे भक्ति के बिना कोई भी धर्म रूखा है।

हमारे स्वामी जी पहिले जब घर से निकले तो उन्होंने योगियों की ही खोज की, और जब तक स्वयं समाधि का आनंद लाभ नहीं कर लिया और किसी का ध्यान ही नहीं किया श्रीस्वामी जी पूर्ण योगी थे, परन्तु देश की अवस्था के अनुसार

पहले उनको असत् मत खंडन का काम आवश्यक ज्ञात हुआ, इसलिये वह अधिकतर इसी ओर लगे, परन्तु अपने शिष्यों को निरन्तर योगाभ्यास का आदेश करते रहे, और आगामी काल के लिये अपनी पुस्तकों में स्पष्ट लिख दिया। हम अपने गुरु के आदेश का विचार करके आर्य्य-समाज में साधन मंडलियां बनाने में कृत कार्य्य होते हैं वा नहीं, समय बतलावेगा।

---:o:---

स्वामी दयानन्द सरस्वती

---:o:---

(ले० बा० सीताराम बी० ए० एल० एल० बी०)

---:o:---

जब जब किसी जाति का घोर पतन होने लगता है तब उस जाति के सुधार के लिये उसी में से कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न हो जाता है जो एक बड़ा धक्का देकर उस को सावधान कर देता है।

यह मनुष्य मात्र की स्वभाविक इच्छा है कि हम सब प्रकार के क्लेशों से छुटकारा पाकर सुख के भागी बनें। जो जो उपाय क्लेशों से छुटने और सुख प्राप्ति के हैं उन को शास्त्रकारों ने बतलाया हैं। सुख प्राप्ति का मुख्य साधन यथार्थ ज्ञान और उसका सद् उपयोग्य है। यदि मनुष्योंको संसारके सारे तत्वों व क्रियाओं का यथार्थ ज्ञान हो जावे और यह जान लेवें कि कौन कौन तत्वों और क्रियाओं के प्रयोग से क्या क्या यथाथ में सिद्ध होते हैं तब मनुष्य वही कार्य करेंगे जिन से उनको सुख प्राप्त होगा, और जिन कार्यों से उन को दुख प्राप्त होगा उनका परित्याग करेंगे। ऊपर लिखा हुआ नियम एक साधारण नेम है जिसको हर मनुष्य जो संसार की घटनाओं पर विचार करता है भली भांति समझ सकता है परंतु हम को संसार में देखने से विदित होता है कि जो लोग सुखी हैं उनकी संख्या बहुत न्यून है और जो लोग दुखी हैं उनकी संख्या अधिक है।

संसार को दुखी देखकर महात्मा बुद्ध के मन में विचार पैदा हुआ कि उन उपायोंको ढूंढें जिन से दुख की निवृत्ति होवे बस अपना राज पाट छोड़ और अपनी प्यारी स्त्री और प्यारे पुत्र से विमुख हो सद् मार्ग और सद् ज्ञान की तलाश में निकल पड़े। अपनी शक्ति भर उन्होंने उपाय किया और एक समय में बौद्ध धर्म सार्वभौमिक धर्म बन गया।

बुराई और भलाईकी शक्तियां प्रत्येक नर नारीके अधिकार में हैं जिससे अपनी सुशिक्षा व स्वकार्य से अपने आप को देवता बनाले चाहें वह अपने दुराचारों व दुर्व्यसनों से अति घृणित श्रेणी पर पहुंच जावे जब किसी जातिका पतन हो जाता है और इस के विपरीत जब किसी जातिकी व्यक्ति-ऊंचे आदर्श रखते हैं अपने और दूसरों को लाभ पहुंचाने के काम करती है सच मुच ईश्वर की कृपा होती है तब उस जाति का उत्थान होता है।

भारत जाति एक प्राचीन जाति है, अनेक वार इस का पतन हुआ और अनेक वार इस का उत्थान हुआ महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती भी उन महान पुरुषों में से हैं जिन्होंने भारत जाति के उठाने में कोशिश की और उस को बड़े जोर से धक्का दिया।

किसी महान पुरुषके काम काअंदाजा लगानेके लिये यह जरूरी है कि उस के काम के शुरू करने

से पहले उस जाति के स्थिति सही सही जानी जावे स्वामी दयानंद ने हिंदू जाति में जन्म लिया था ,जो मुसलमानों से पराजय होने से पहले आर्य जाति का हिंदू शब्द संस्कृत भाषा का शब्द नहीं है और न संस्कृत भाषा में इस का प्रयोग करने से इस के कोई ठीक अर्थ निकलते हैं परन्तु जिस देश से मुसलमान भारतवर्ष में आये उन के भाषा में यह शब्द जरूर है और इस का अर्थ काफिर और गुलाम के हैं। मेरे मन में तो जरा भी शंका इस विषय में नहीं है कि मुसलमों ने यह नाम आर्य जाति को दिया और वेकसी के कारण इस ने स्वीकारकर लिया। पहले पहल जिस कुरीतिपर स्वामी दयानंदजीने ध्यान दिया वह धर्म सेसम्बंध रखने वाली कुरीति थी। हिंदुओं का धर्म एक बड़ी बुरी अवस्था में हिन्दुओं में था धर्म के नाम से कई फिर्के कहलाये जाते हैं जो ईश्वरको माने वह भी हिंदू और जोईश्वर को न माने वह भी हिंदू, जो सारे संसारको केवल ब्रह्म माने वह भी हिन्दू और इश्वर को एकदेशी मान कर मूर्ति पूजा करे वह भी हिंदू

यह एक साधारण सिद्धांत है कि जब तक किसी जाति के व्यक्तियों के समान विचार और आचार न होंगे तब तक उस जाति का संगठन नहीं हो सकता और जब तक किसी जाति के आचार और विचार अज्ञान तथा अविद्या के आधार पर रहते हैं तब तक उन में परिवर्तन होता रहता है और इस कारण भी संगठन नहीं होता।

मूलशंकर (स्वामी दयानंद) के पिता शिव के उपासक थे। यह पूर्ण विश्वास रखते थे कि शिव की पूजा से कल्याण प्राप्त होता है और जब मूल शंकर समझने वाली अवस्था को पहुंचे तब इनको भी पिता जी ने आज्ञा दी कि शिव रात्रि का व्रत्त रक्खें और रात्रि को जागरण करते हुये मूर्ति की पूजा करें। जो कि मूल शंकर के माता और पिता एक ही धर्म के अनुयायी थी परंतु इस विषय में भी दोनों के विचारों में भिन्नता थी। मूलशंकर से शिवरात्रि का व्रत रखाया गया और उन्होंनें जागृत अवस्था में रहते हुवे पूजा करना स्वीकार कर लिया।

यह शिवरात्रि की रात भारतवासियों के लिये सौभाग्य वाली रात थी। इस रात्रि के प्रभाव से भारतवर्षमें एक वार उज्वलताका प्रकाश हुआ जो केवल भारत ही का नहीं बल्कि सारे संसार के अन्धकार और दुख के नाश करने का सामर्थ्य रखती है।

रात्रि का बहुत समय व्यतीत हो चुका है, शिव मन्दिर में सारे पूजा करने वाले सो गए हैं मूल शंकर के पिता जी भी सो गए हैं परन्तु मूलशंकर अपनी प्रतिज्ञानुसार जागृत अवस्था में हैं। परमेश्वर उनकी सदैव की जागृति के लिए एक चिह्न भेजते हैं। एक चूहा निकलता है और वह शिवमूर्ति को खराब करने लगता है। क्या यह मूर्ति परब्रह्म है जो अपने आप को चूहे से बचा नहीं सकती? यह प्रश्न मूलशंकर के चित्तमें उत्पन्न हुआ और उन की आत्मा ने उसी समय उत्तर दिया कि यह मूर्ति ब्रह्म नहीं हो सकती। दुनियामें अकसर देखा जाता है कि छोटी छोटीसी घटनायें बड़े२ नतीजे पैदा कर देने वाली होती हैं। फलों को पृथ्वी पर गिरते हुए आदि सृष्टि से मनुष्य ने देखा है परन्तु जब न्यूटन ने एक फल को पृथ्वी पर गिरते हुए देखा तब उन्होंने उससे आकर्षण शक्ति के नियमों को भली भांति प्रकाशित किया। असंख्यों मनुष्यों ने मूर्ति पर चूहे को चढ़ते देखा होगा परन्तु इस घटना ने मूलशंकर के हृदय पर ऐसा असर किया कि वह इस दुनियां में एक उत्तम श्रेणी का ऋषि हुआ।

घर में और घटनायें भी होती गईं और नतीजा यह हुआ कि अपने घर को छोड़ कर वह जंगलों और पहाड़ों में घूमते रहे और हर प्रकार का ज्ञान हासिल करते रहे और अन्त स्वामी विरजानन्द जी के पास मथुरा नगर में जाकर प्राचीन आर्ष ग्रन्थों और वेद विद्या को पढ़ा और गुरुद-

क्षिणा में अपने गुरु से यह प्रतिज्ञा की कि वह भारतवर्ष के अन्धकार और कुरीतियों को यथाशक्ति दूर करेंगे।

जो जागृति उन्होंने भारतवर्ष में पैदा कर दी है वह किसी से छिपी नहीं है। प्रथम काम जो उन्होंने किया वह यह है कि संसार में यह आवाज लगा दी कि अन्ध विश्वासों को छोड़ कर अपनी बुद्धि और ज्ञान से प्रत्येक नर नारी को काम करना चाहिये। मनुष्यों को जितनी तकलीफ झूंठे विश्वासों से पहुंचती है उतनी और किसी से नहीं यदि सारे भारतवासी तथा संसार के लोग यह निश्चय कर लेवें कि जो बात सत्य है उसी को हम मानेंगे और जो बात बुद्धि ज्ञान और संसार के नेमों के विपरीत है उसको नहीं मानेंगे तब संसार का वैमनस्य और दुःख बहुत कम हो जावे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी हिंदुओं में उत्पन्न हुए थे इस जाति के सुधार के लिए उन्होंने यह आवश्यक समझा कि वह अपना गलत दिया हुआ हिंदू नाम छोड़कर असली नाम आर्य धारण करें जिन लोगों ने उनको अपना गुरू माना उन्होंने ऐसा ही किया परंतु हिंदू जनता जिन्होंने उनके मत से विरोध किया अपने आपको आर्य कहलाना अति घृणा की बात समझी और स्वामी के अनुयायियों को आर्य कहना एक हास्य की बात समझी। हिंदू लोग आर्यों से बहुधा चिढ़ते रहे आर्य समाज के मुकाबले में सनातनधर्म सभायें कायम कीं जिसमें सनातन धर्म सभा के उपदेशक स्वामी दयानन्द और आर्य समाजियों को बुरा भला कहते रहे और अब भी ऐसा ही करते हैं।

कुछ ज़माने से पोलिटीकल लहर चली और हिन्दुओं ने यह खयाल किया कि मुसलमान लोग संगठित होने के कारण ज्यादा पोलिटीकल हकूक हासिल कर रहे हैं और कांग्रेस के लोग जिसमें ज्यादातर हिन्दू ही हैं वह हिंदू मुसलमान का भेद नहीं करते इस लिए हिन्दू सभायें राजनैतिक भाव से कायम की जावें। हिंदू जाति का सुधार तो इस लहर से नहीं हुआ। हिन्दुओं में बुराइयां दूर करने का कुछ काम नहीं हुआ, हिंदुओं में जातीय वैमनस्य ज्यादा फैल गया परन्तु इस लहर का परिणाम आर्य समाज पर अति घृणित हुआ। बड़े बड़े आर्य समाज के सभासद जिन्होंने वर्षों आर्य समाज की सेवा की थी और जो अपने आपको हिंदू कहना एक दूषित बात समझते थे हिंदू सभा के मेम्बर बन गये और अपने आपको पुनः हिन्दू कहलाने में जरा भी घृणा नहीं की और स्वामी दयानन्द के परिश्रम को निष्फल कर दिया।

स्वामी दयानन्द ने मनुष्य मात्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक समझा कि सब के धार्मिक विचार एक से होवें और वह विचार सृष्टि नियम और मनुष्यों की बुद्धि और ज्ञान के अनुकूल होवें इसी कारण यह एक नियम रखा कि प्रत्येक मनुष्य को सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में सदैव तत्पर रहना चाहिये। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि किसी जाति की राजनैतिक व्यवस्था उसके धार्मिक विचार और पारस्परिक व्यवहार के गठन पर निर्भर रहती है। जिस जातिके धार्मिक विचार ऊंचे हैं जिसके आचार विचार अच्छे हैं जिसके पारस्परिक व्यवहारों में सत्यता और प्रीति हैं उस जाति की राजनैतिक व्यवस्था भी उत्तम होगी और किसी अन्य जाति को उस पर राज करने का साहस न होगा। भारत जाति को उच्च बनाने का उन्होंने आर्य समाज को साधन बनाया और उच्च बनाने के सारे साधनोंका प्रचार किया। यदि आर्य समाज के लोग अपने गुरू की बातों में विश्वास रखते और अपने में साहस रखते हुए काम करते तो शुद्धि, संगठन, दलितोद्धार, अछूतोद्धार अन्य अन्य संस्थाओं की किंचित मात्र भी आवश्यकता न होती।

स्वामी दयानन्द के सिद्धांत ही ऐसे सिद्धांत

हैं जो सारे मनुष्य मात्र को एक जगह इकट्ठा कर सकते हैं और एक दूसरे की यदि उनमें सत्यता और ईमानदारी है वैमनस्य दूर करा सकते हैं। ऐसे गुरू की शिक्षा को कभी भुलाना नहीं चाहिये और जिन लोगों के हृदय में दूसरों के भलाई करने की लगन है उनको अवश्य स्वामी जी के ग्रन्थों का पठन करना चाहिये और उनकी शिक्षा से लाभ उठाना चाहिये।

शिव रात्रिकी रात हिंदू लोग तो पवित्र समझते ही है पर उन लोगों के लिये भी जो स्वामी जी को अपना गुरु मानते हैं यह आवश्यक है कि इस रात्रि पर स्वामी जी के सिद्धांतों पर पुनः विचार करें और सत्य और ईश्वर में विश्वास रखते हुए अपने हृदय और आत्मा को बलवान बनावें और असत्यता की लहरें से बचें।

इति

——:०:——

ऋषि दयानन्द की अनन्य उदारता

——:०:——

(लेखक—श्री ठाकुरदास जी हल्दौर निवासी)

——:०:——

सद्गुण किसी न किसी अंश में तो सामान्य जनों में भी हुआ करते हैं उन का पूर्ण विकास महापुरुषों में ही होता है।

ऋषि दयानन्द का स्थान संसारके महापुरुषों में कितना ऊंचा है यह उन के किसी गुण विशेष पर दृष्टि देने से ही विदित हो सकता है

इस छोटे से लेख में श्री स्वामीजी की उदारता के विषय में विचार किया जायगा।

सब से प्रथम जब वे सत्य का प्रचार करने जनता के सम्मुख उपस्थित होते हैं, तो अन्य महापुरुषों की भांति स्व मातृ भाषा के प्रेम के संकोच को वे पास नहीं आने देते। मातृ भाषा में विचारों का प्रगट करना सुगम होता, तो भी उन्होंने देव बाणी संस्कृत और उस की ज्येष्ठ पुत्री सर्वोत्तम हिंदी का ही प्रयोग किया

उन्होंने सत्य का प्रकाश और पाखंड का नाश करने के लिये सत्यार्थप्रकाश लिखा जो उन का मुख्य ग्रन्थ है, किंतु उन के विशाल हृदय में यह संकीर्णता नहीं आई कि वे इस ग्रन्थ का पठन पाठन आर्यों के लिये विदित करके अपना गौरव स्थापित करते उन्हो ने आर्यों के लिये वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना ही परम धर्म माना है। अन्य महापुरुषों ने तो अपने पुस्तकों को प्रचरित करने और लोगों में उन के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये उन्हें ईश्वर कृत तक बता डाला है।

स्वामी जी ने अपनी कोई गद्दी, मठ या ऐसा चिन्ह तक नहीं रहने दिया जिस से उन के पश्चात् जनता किसी भ्रम में पड़ कर उन की पूजा करने लगें, है कहीं ऐसा उदार भाव ? अन्यों ने तो अपने लिए कहीं सर्व गुरु, कहीं ईश्वर का खास बेटा और कहीं पैगम्बर होने के दावे किए हैं और अपने नाम को ईश्वर की उपासना में भी लोगों से लिखाने का विधान किया है।

इन बातों पर विचार करके यही कहना पड़ता है कि ऋषि दयानंद का स्थान संसारके महापुरुषों में सब से ऊंचा है।

——:०:——

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के प्रचारार्थ बहु संख्या में ये ग्रंथ एकत्र किये गये हैं और निश्चय किया गया है कि पुस्तक विक्रेताओं को, वैदिक प्रेस की अपेक्षा कमीशन भी कुछ अधिक दिया जावे। छोटे बड़े सभी ग्रन्थ अच्छे कागज़ पर बड़े आकार में हैं उनका मूल्य सहित विवरण इस प्रकार है--इसके मंगाने के लिए शीघ्र आर्डर भेजने चाहियें:—

(१) आर्याभिविनय	।-)
(२) सत्यार्थ प्रकाश बढ़िया कागज उमदा छपाई बड़ा आकार	१)
(३) काशी शास्त्रार्थ	-)
(४) सत्यधर्म विचार	-)॥
(५) पञ्च महायज्ञ विधि	-)॥
(६) आर्योद्देश्य रत्नमाला	)॥
(७) संस्कार विधि बढ़िया कागज़ उमदा छपाई बड़ा आकार	॥)
(८) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका बढ़िया कागज उमदा छपाई बड़ा आकार	१॥)
(९) व्यवहार भानु	=)॥
(१०) वेद विरुद्ध मत खण्डनम्	=)॥
(११) शिक्षापत्री स्वा० नारायण मत खण्डन	=)
(१२) भ्रमोच्छेदन	-)
(१३) भ्रान्ति निवारणम	=)
(१४) गो करुणानिधि	=)
(१५) स्वीकार पत्रम्	)॥
(१६) महर्षि का संक्षिप्त जीवन चरित्र मय रंगीन चित्रों के	।)
(१७) दयानन्द ग्रन्थमाला दो जिल्दों में	५)

पुस्तकालय की अन्य पुस्तकें

१ संस्कृत सत्यार्थप्रकाशः—

यह महर्षि दयानन्द कृत हिन्दी सत्यार्थप्रकाश का संस्कृतानुवाद है। अनुवादक गुरुकुल वृन्दाबन (मथुरा) के संस्कृत विभाग के मुख्याध्यापक श्री० पं० शङ्करदेव पाठक हैं। अनुवाद की भाषा मधुर एवं सरल है। महर्षि का आशय ज्यों का त्यों प्रकट किया गया है। मूल्य २।) सजिल्द २॥)

२ प्राणायाम विधिः—

यह पुस्तक जिस में प्राणायाम सम्बन्धी कठिन से कठिन विधियों को सुगम बनाया गया है श्री पूज्यपाद १०८ श्री नारायण स्वामी जी द्वारा लिखी गई है। प्राणायाम के प्रेमियों की एक बड़ी खोज तथा आवश्यकता इस के द्वारा पूरी हो सकती है। मूल्य केवल -) प्रति

३ दयानन्द लहरीः—

इस में भगवान दयानन्द का स्तवन शिखरिणी आदि सुन्दर छन्दों में किया गया है। प्रत्येक छन्द के साथ भाषानुवाद भी दिया गया है। पुस्तक के लेखक श्री पं० मेधाव्रत जी कविरत्न हैं। मू०॥(- प्रति।

४ आर्यपर्व पद्धतिः—

आर्य्य जगत में एक से ही त्यौहार मनाने तथा त्यौहारों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करा देने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई है। इस पुस्तक का प्रत्येक आर्य परिवार में रखना आवश्यक है। मूल्य ॥।) बारह आने।

५ आर्य समाज क्या हैः—

यह पुस्तक पं० गङ्गाप्रशाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रयाग द्वारा लिखी गई है। इस पुस्तक में आर्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास मौजूद हैं। संस्थाओं और आर्य विद्वानों आदि के १९ चित्र हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

६ दश नियम व्याख्याः—

श्री पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी वैदिक यति द्वारा यह "दश नियम-व्याख्या" नाम की पुस्तक लिखी गई है। इसमें आर्यसमाज के दश नियमों की विस्तृत तथा गवेषणापूर्ण व्याख्या की गई है। मूल्य ।) चार आना।

७ ओम्प्रत्यक्षः—

यह पुस्तक श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी वैदिक यती की लेखनी से लिखी गई है। ओ३म् परमात्मा की विस्तृत व्याख्या विद्यमान हैं। मूल्य ।)

८ वैदिक सिद्धान्तः—

इस पुस्तक में आर्य विद्वानों द्वारा लिखित भिन्न २ विषयों पर अत्युत्तम निबंधों का संग्रह है। मूल्य १।) सजिल्द १॥)

16. Crucifixion by an eye witness :—

This valuable book contains a detailed account of the crucifixion of Jesus Christ, given by one who witnessed it with his own eyes.—*Price As. 6. only.*

17, Truth and Vedas ;—

It is an excellent exposition and translation of, "Vibhrat." Price As. 8 only.

18 Truth Bed Rocks of Aryan culture :—

The subject dealt with in this book is the ideal of truth stating candidly by means of Vedic Mantras and fine stories to what extent the Aryan race has lived to this ideal.—*Price As. 10 Only.*

19. Vedic Teachings :—

This book contains the most authentic replies to the objection raised about the Vedas by Dr. Bhandarkar. The learned author has, besides, brought forth the superiority the Vedic Teachings contained. Price Re. 1 As. 12 only

20. Voice of Aryavarta :—

This little book comes from the pen of Mr. T. L. Vaswani and contations reflections on Rishi Dayanand and his life and teaching.

पुस्तकें मिलने का पता :—

आर्य सार्वदेशिक सभा, श्रद्धानन्द बाज़ार, दिल्ली।

दान सूची सार्वदेशिक सभा

बाबत मास दिसम्बर २८ व जनवरी २९

रक्षा निधि पञ्जाब

धन दाता

१००) श्रीस्वामी रामानन्दजी द्वारा संगृहीत देहलीसे

मध्य प्रदेश

३०) श्री गंगाप्रसाद जी आर्य बल्लारपुर (चांदा) द्वारा संगृहीत।

बिहार बङ्गाल

१०=) श्री मेहता चूड़ामणि जी आर्य टोला बेगम पुर पटना द्वारा संगृहीत।

सिन्ध

२६०) आर्य प्रतिनिधि सभा सिंध (कराची)

मद्रास प्रचार

५००) श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला द्वारा
१०) श्री विश्वनाथ जी आर्य ईसापुर (जौनपुर)

विविध दान

५) श्री म० रामदीन जी सरधना (मेरठ)

शुद्धी फण्ड

१०) आर्य स्त्री समाज शाहजहांपुर

सार्वदेशिक पत्र

४।।=)

पुस्तक बिक्री

३६≋)
३३२।-) सूद
१७।) किराया भवन
३००) चन्द्रभानु वेद मित्र स्थिर निधि
३२१०)। श्री दलितोद्धार सभा

५०६२॥≡) सर्व योग

दान दाताओं को अनेक धन्यवाद

रघुनाथप्रसाद पाठक
एकाउन्टेंट
५-२-२६

नारायणदास
कोषाध्यक्ष

सूचना

गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव का प्रबन्ध इस वर्ष आर्य-वीर दल की ओरसे किया जायगा गुरुकुल के अधिकारियों ने स्वयंसेवकों के उतारे और भोजन का प्रबन्ध करने की कृपा की है। मार्ग व्ययका खर्च स्वयं-सेवकों अथवा आर्य-वीर दलों को स्वयं करना पड़ेगा। निम्नलिखित कार्यों के लिये स्वयं-सेवकों की आवश्यक्ता होगी :—

(१) स्टेशन पर स्वागत (२) कैम्प का पहरा (३) सफाई का निरीक्षण (४) स्नान घरों पर पहरा (५) बाज़ार का प्रबन्ध (६) पण्डाल का प्रबंध (७) डाकघर का प्रबंध (८) इनक्वायरी आफिस (९) रोगियों की परिचर्या।

इन सब कार्यों के लिये कम से कम २०० स्वयंसेवकों की आवश्यक्ता होगी जिनमें से कम से कम ५० महिलायें हों। जो आर्यवीर दल प्रबन्ध में भाग लेना चाहें वह मुझे शीघ्र ही सूचना दें। सूचना देते समय स्वयंसेवकों की सख्या की भी सूचना देनी चाहिये। जो सज्जन उपयुक्त कार्यों में से किसी कार्य को विशेष योग्यता से कर सकें वह भी मुझे सूचित करें यह स्मरण रखना चाहिये कि सेवा कार्य के लिए वही स्वयंसेवक लिए जावेंगे जिन्हें पहले से स्वीकृति दी गई हो। इस कारण सेवा करने की इच्छा रखने वालों को अत्यन्त शीघ्र मुझ से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

इन्द्र
प्रधान दलपति

शामियाना बिकाऊ है

सार्वदेशिक सभा ने गत कुम्भ प्रकार के समय एक शामियाना ७५ फीट लम्बा ४५ फीट चौड़ा कानपुर की एक मिल से अच्छे मज़बूत दुहरे कपड़े का बनवाया था जिस की लागत १५०६॥=) है सभा ने इस शामियाना को अब पृथक कर देना निश्चय कर लिया है, यदि कोई समाज या व्यक्ति पूरा शामियाना लेना चाहे तो सभा लागत मात्र पर उन्हें दे देगी, यदि समाजें इतना बड़ा शामियाना न लेकर उसके टुकड़े २ लेना चाहें तो भी सभा उन्हें दे देगी, टुकड़े इस प्रकार हैं :

(१) २२ टुकड़े २५×१५ फीट मूल्य फी टुकड़ा ४४॥=)
(२) ५ ,, २५×२० ,, ,, ५९=)
(३) ८ ,, २५×१० ,, ,, २९॥-)॥

परन्तु ये टुकड़े उसी समय यहां से भेजे जावेंगे जब एक प्रकार के समस्त टुकड़ों के ग्राहक हो जावेंगे, जिन्हें लेना हो वे शीघ्र अपने २ पत्र भेज देवें, पेशगी मूल्य आने पर ही टुकड़े या समस्त शामियाना भेजा जा सकेगा।

सार्वदेशिक सभा]
देहली]

नारायण स्वामी

ताजा सब्ज़ी का बीज मंगाओ।

पता—मेहता डी० सी० बर्मा आर्य टोला पटना सिटी।

५००) इनाम लीजिये

महात्मा प्रदत्त श्वेत कुष्ट (सफेदी) की अद्भुत बनौषधि तीन दिन में पूर्ण आरोग्य। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन दाताओं की दवा कर थक गये हैं तो इसे लगावें। बेफायदा साबित करने पर ५००) इनाम। जिन्हें विश्वास न हो -) का टिकट लगाकर प्रतिज्ञा पत्र लिखालें। मूल्य २)

अखिल किशोरराम

नं० ७ पो० कतरसिराय (गया)

पण्डित रघुनाथ प्रसाद पाठक पब्लिशर के लिये अर्जुन प्रेस श्रद्धानन्द बाजार, देहली से छप कर प्रकाशित हुआ।

Registered No. L 2121

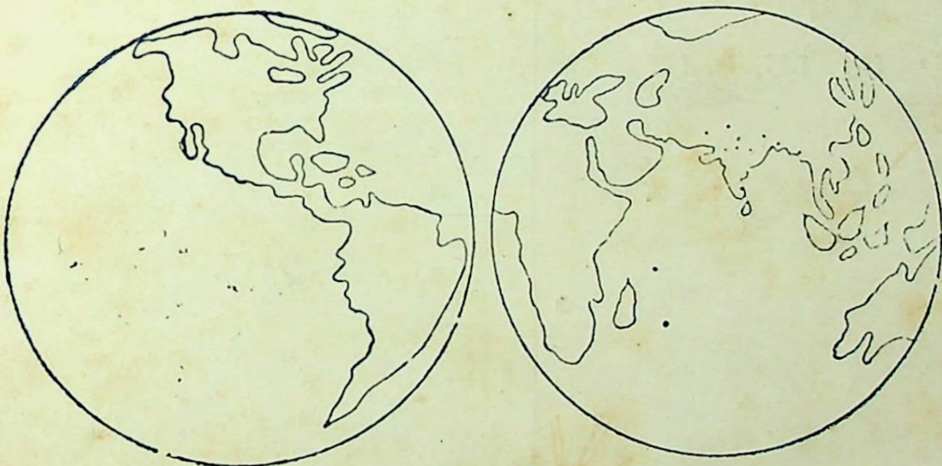
ओ३म्

बैशाख
अप्रेल
१९२९

सार्वदेशिक

दयानन्द
अब्द
१०५

भूमण्डल



कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् ॥ वेद ॥

वार्षिक
मूल्य
२)

सम्पादक--स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती

एक प्रति का
मूल्य
≡)

विदेश से ५ शिलिङ्ग

विषय-सूची

—:o:—

* ओ३म् *

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष ३ | बैशाख १ सम्बत् १९८६ वि० | अप्रैल १९२९ ई०] | [दयानन्दाब्द १०५ | अङ्क २

सम्पादकीय-विचार

प्रवाह

असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने में सर्वथा उद्यत रहना चाहिये।

महर्षि दयानन्द।

फिर वही बीभत्स कांड !

धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता का और नग्न कांड ! एक और प्रकांड तांडव !! एक बार नहीं ! दो बार नहीं !! फिर फिर !! बार बार ! उफ़ ! जिस धर्मांधता के नाम पर लाखों और करोड़ों नर मुंडों की रक्त रञ्जित नदियां बह चुकीं, जिस अरब के रेतीले मैदानों में उमडती हुई। ज्वालामुखी की प्रचण्ड चिनगारियों ने मनुष्य समाज के लह-लहाते हुये न जाने कितने पौधों को तहस नहस कर दिया, उसी धर्मांधता की उमड़ती हुई चिन-गारी फिर फूट पड़ी। कब ? उस भयानक तूफान के समय में नहीं, उस वर्बरता के जमाने में नहीं, बल्कि आज ! इस बीसवीं शताब्दी के शान्ति और सभ्यता के काल में ! हा ! दुःख है ! दुःख नहीं, आश्चर्य है ! आश्चर्य !!

छः अप्रैल को लाहौर में दिन दहाड़े सरे बा-जार, सब के देखते देखते, ब्रिटिश शासन की प्रतिष्ठित छत्र-छाया में एक मुसलमान कातिल

के हाथ म० राजपाल का बध हुआ-बध नहीं, अत्यन्त क्रूर और अमानुषिक हत्या हुई। आज से चार वर्ष पूर्व म० राजपाल ने मुसलमान लेखकों के प्रमाणों और हदीसों के आधार पर लिखी हुई एक छोटी सी पुस्तक 'रंगीला रसूल' के नाम से प्रकाशित की थी। मुसलमानों ने इस पुस्तक पर आपत्ति की। म० राजपाल पर अभियोग चला। परन्तु हाईकोर्ट से वह बरी हो गए। इसपर स्वार्थी और धर्मांध मुल्लाओं के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने काफिर की बोटी बोटी उड़ा देने की धमकियां दीं। लाहौर की एक सभा में भाषण देते हुये प्रसिद्ध (?) मौलाना ने यहां तक कह डाला कि "रसूल की तौहीन करने वाले का सर धड़ से अलग कर देना चाहिये" इन्हीं और ऐसी ही शिक्षाओं (?) से प्रभावित होकर लाहौर में इससे पहले दो वार म० राजपाल पर हमले हुये परन्तु निशाना चूक गया। वह बच गये। अब को यह तीसरा वार हुआ और वह कारगर हो गया।

अब राजपाल इस संसार में नहीं है। मुसलमानों के लिए रसूल की तौहीन करने वाले को बध किया गया रसूल की बेइज़्ज़ती करने वाले से बदला लिया गया,—अच्छा हुआ। वैदिक धर्मियों ने इतना ही कहकर सन्तोष कर लिया कि उनकी जाति से एक और शहीद हो गया। इस लिये अब इस जाति की नींव और दृढ़ हो गई। परंतु बात यहीं तक समाप्त नहीं हो जाती। प्रश्न यह है कि म० राजपाल पर पहले भी हमले हुये हैं, इसलिये उनकी जान खतरे में है। इस बात का प्रमाण होते हुए भी सरकार की ओर से-उस सरकार की ओर से, जो राजनैतिक षडयंत्रों की खोज लगाने में बड़ी प्रवीण है-उस षडयन्त्र को नहीं ढूंढ निकाला गया था, जो मुल्ला मौलवियों के द्वारा राजपाल पर आक्रमण करने के लिए किया जाता था। मौला और मुल्ला तो इस बध के दोषी हैं ही, परंतु साथ ही सरकार की ओर से शिकायत नहीं, ऐसा नहीं है।

हमें यहां पर एक और भी शक होता है, और वह यह है कि इस धार्मिक कलह को सरकार की ओर से राजनैतिक हाथ न दिया गया हो। म० राजपाल का खून हुआ। उनकी अर्थी अस्पताल में पड़ी रही। लोगों ने अर्थी का जुलूस निकालना चाहा। उसमें अड़चनें पैदा की गईं हिंदू नेताओं की जिम्मेदारी लेने पर भी आज्ञा न मिली। किस बात की? शव ले जाने की। मृतक का जुलूस शान्तिपूर्वक जा रहा था, उस पर अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित पुलिस ने-ब्रिटिश शासन के न्याय ने-हमला किया। लोगों को मारा पीटा। ८० से अधिक आदमियों को घायल किया। किस लिए? क्या इस जुलूस के निकलने से ब्रिटिश राज्य में क्रांति हो जाती? राज्य के किसी भाग में विद्रोह खड़ा हो जाता? नहीं। यह कुछ भय नहीं था। हमारी समझ में शासक चाहते थे कि इससे भी समाज में कोई और बवंडर पैदा हो जाये और लोगों को राजनैतिक बातों में एकत्रित होने के लिए अवसर न मिले। नेहरू रिपोर्ट और साइमन कमीशन से राष्ट्र के वातावरण में आशातीत परिवर्तन हो गया था, और यह बात लोगों को खटकती थी। अस्तु—

म० राजपाल का कातिल पकड़ा गया है। अपराधी सिद्ध होने पर उसे दण्ड मिलेगा अवश्य। पर क्या, इतने से ही भविष्य में मज़हब के नाम पर, धर्मांधता के आवेश में की जाने वाली हत्याएं बन्द हो जायगी? नहीं। मूल कारण तलाश किए बिना कभी भी यह भयानक वातावरण शांत नहीं हो सकता। हम चाहते हैं, इस घटना की तह में जो भी षडयंत्र हो, चाहे वह मुल्ला मौलवियों की ओर से, या किसी अन्य की ओर से उसकी एक निष्पक्ष कमीशन द्वारा, जिस में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ओर के सदस्य हों, जांच करे जिससे फिर भविष्य में इस प्रकार के अमा-

नुषिक हत्याओं की सम्भावना बहुत हद तक दूर हो जाय ।

'भारत में अंगरेजी राज्य'

हाल में 'चांद' कार्यालय; इलाहाबाद से प्रकाशित 'भारत में अंगरेजी राज्य' नामक पुस्तक यू० पी० सरकार ने जब्त की है । हमें इस पुस्तक के देखने का अवसर नहीं मिला है, परन्तु उसके संबन्ध में जो कुछ हमें मालूम हुआ है वह यह है कि पुस्तक काफी बड़ी है। उसमें जो कुछ लिखा गया है । वह बड़े परिश्रम से, बड़ा खोज से लिखा गया है । उसमें कोई बत कपोल कल्पित या निराधार नहीं है। प्रायः सब की सब ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर हैं । मेजर बी० डी० बसु की अंगरेजी पुस्तक 'The rise of Christian power in India' प्रयाग विश्व विद्यालय के एम० ए० कोर्स के लिए स्वीकृत है । उसी पुस्तक के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। सरकार को चाहिए था कि वह पहिले इस अंगरेजी पुस्तक को जब्त करती और फिर जैसा चाहती, इस हिन्दी पुस्तक के सम्बन्ध में निर्णय करती । परन्तु ऐसा नहीं किया गया ।

देश में आए दिन गन्दा सा गन्दा साहित्य निकल रहा है । किसी किसी रचनाओं की ओर सरकार का ध्यान भी आकृष्ट किया जाता है, परन्तु फिर भी कुछ नहीं होता और ऐसी सुन्दर तथा अमूल्य पुस्तक को इस निर्दयता और हृदय हीनता के साथ बात की बात में प्रकाशित होने के बाद सिर्फ १॥ दिन के भीतर-भीतर नष्ट कर दिया जाता है । हमें सरकार की इस नीति पर आश्चर्य नहीं, दुख है, ग्लानि है, और हम इसका किसी प्रकार समर्थन नहीं कर सकते। भारत का भावी इतिहास लेखक इस पुस्तक की जब्ती की छोटी घटना को ब्रिटिश न्याय के नाम पर एक काला धब्बा समझेगा।

शहीद की स्मृति में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने म. राजपाल के वीर बलिदान की पुण्य—स्मृति में तीस हजार रुपयों का 'राजपाल शहीदी फण्ड' खोला है । इस रुपये में से दस हजार रुपया सभा के पास इस निमित्त जमा रहेगा कि यदि आवश्यकता हुई तो, म० राजपाल के चार बच्चों की शिक्षा का प्रबंध उसके सूद से चलता रहेगा- उसके पश्चात्-शिक्षा समाप्ति के उपरान्त—उस समय की अवस्था तथा परिस्थिति के अनुसार उन्हीं बच्चों को वह रुपया दिया जायगा अथवा सभा के फण्ड में शामिल कर दिया जायगा । शेष बतीस हजार रुपया सभा के पास जमा रहेगा, और उसके सूद से प्रकाशन का काम जारी रहेगा ।

आर्य भ्राताओं के लिए तीस हजार की तुच्छ रकम कुछ ही दिनों में जमा करना कोई बात नहीं है । ऐसे अवसर पर ऐसा रुपया जितनी ही जल्द जमा कर दिया जाए; उतना ही अच्छा है, उतने ही अधिक गौरव की बात है । वीर राजपूत की वीर धर्मपत्नी ने अपील करने से मना किया है, परन्तु ऐसे अवसर पर आर्य समाज को अपने कर्तव्य की ओर भी ध्यान रखने की जरूरत है । इसी पवित्र कर्तव्य से प्रेरित होकर यह अपील की गई है। आशा है आर्य नरनारी इस अपील को सफल बनाने में काफी उद्योग करेंगे।

गुरुकुल रजत जयन्ती

——:o:——

(लेखक—श्री स्वामी आनन्दभिक्षु जी सरस्वती मन्त्री संन्यासी मंडल)

——:o:——

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रांत ने अगले वर्ष गुरुकुल वृन्दावन की रजत-जयन्ती मनाना निश्चित किया हुआ है। यह जयन्ती अब से ठीक एक वर्ष बाद इसी मास--इसी अप्रेल मास में बड़ी धूम--धाम से मनाई जायगी।

इस जयन्ती के लिए अभी से क्या २ हो रहा है? कैसी--कैसी तैयारियाँ की जा रही हैं? इस सम्बन्ध में उन पत्रिकाओं द्वारा काफी प्रकाश डाला जाचुका है, जो जयन्ती कार्यालय वृन्दावन से अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। जयन्ती के इस अवसर पर आर्य जनता का कर्तव्य है कि वह अपने गुरुकुल-प्रेम का, अपने शिक्षा-अनुराग का, हां, अपने कर्तव्य-परायणता का जैसे भी बने अतीव सुन्दर और सरस परिचय देनेसे न चूकें। ऐसा अवसर जीवन में बार २ नहीं, कभी २ आता है। यह अवसर भी अब से पहले कभी नहीं आया। अब की ही–केवल अब की ही--पूरे पचीस वर्षों में पहिले ही वार आया है। और वह भी कितने तप! कितनी साधना! कितनी लालसाओं! कितने अरमानों के बाद!!

जिन आत्माओं ने अपने गुरुकुल के लिए--उसके शैशव काल में, उसकी सेवा और रक्षा के लिए--एक दो दिन नहीं, हफ़्तों और महीनों नहीं, वर्षों-निरन्तर दस-दस वर्षों तक तपस्या--घोर और कठोर तपस्या का जीवन व्यतीत किया है, और.........और अपना सर्वस्व वार कर, अपने को, अपने परिवार को, सब तरह से मिटा कर, बुरी तरह से भुला कर, दुख-सुख, मान अपमान, हानि लाभ की एक दम न परवाकर गुरुकुल की जान और मान की रक्षा की है, वही कुछ इस दिन का महत्व जान सकते हैं। अवश्य ही सभा के लिए, गुरुकुल के लिये, ब्रह्मचारियों के संरक्षकों के लिए, गुरुकुल के स्नातकों के लिए और हां इन सबों से किसी तरह कम नहीं, आर्य जनता के लिए, यह दिन 'सोनेका दिन' है। क्या अब भी, इस शुभ-अवसर पर भी— क्या खूब!--कोई कुछ उठा रक्खेगा? दिल के हौसले न निकालेगा? निश्चय ही इस मौके पर संदेह करना पाप है—घोर अन्याय करना है!

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली एक आदर्श प्रणाली है। आदर्श प्राप्ति के लिये कितना तप! कितना त्याग! कितनी साधना! कितना संयम! कितना बलिदान! कितना समय चाहिये, यह वतलाना न होगा। यह कोई साधारण बात नहीं है। परंतु तो भी इतनी परिमित शक्ति रखते हुए, इतने प्रबल और निरन्तर विघ्नबाधाओं से गुजरते हुए भी--जो किया गया है, जैसा कुछ बन पड़ा है, उसे देखते हुए, यदि आज हमारे सामने जयन्ती महोत्सव का शुभ दिन आया है, तो हम कह सकते हैं, निसंकोच भाव से कह सकते हैं--कि गुरुकुल प्रेमियों के लिए यह बात बड़े गर्व और सौभाग्य की बात है!

गुरुकुल के सामने एक दो नहीं, पचासों और पचासों तरह की कठिनाइयां हैं, और वह भी एक तरफ से नहीं चारों तरफ से, आज से नहीं, उस दिन से, जबसे उसकी शुभ स्थापना हुई थी, तबसे--परन्तु × × ×! हां, अब उन सारी कठिनाइयों का अन्त करना होगा और यह करेंगे सभा और

गुरुकुल के कार्यकर्ता। परन्तु एक कठिनाई है-- केवल एक कठिनाई है आर्थिक, जिसका अन्त करना होगा आर्यजनता को, गुरुकुल प्रेमियों को। यह एक बड़ी कठिनाई है—शायद सबसे बड़ी कठिनाई है! इसके पीछे गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता पागल रहता है। सभा का प्रधान बावला रहता है, और गुरुकुल का प्रबन्ध जैसा चाहिये वैसा नहीं हो पाता है। इस लिए अब इनको— इनको नहीं, अपने प्यारे गुरुकुल को--इस आर्थिक चिन्ता से एक दम मुक्त कर देना ही सबसे पहिला कर्तव्य है।

"जयन्तीनिधि की अपील को सफल बनाने के लिये गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जी का प्रस्ताव है:-

(१) गुरुकुल के समस्त उपाध्याय, महोपाध्याय अपना एक मास का वेतन,

(२) गुरुकुल के समस्त स्नातक कम से कम सौ रुपया,

(३) गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के संरक्षक अपने एक मास की आय,

(४) आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के सदस्य अपने एक मासकी आय,

(५) आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य कम से कम १५ दिन कीआय गुरुकुल को प्रदान करें।"

ठीक है। सर्व सम्मति, प्रस्ताव की उपयोगिता स्पष्ट है। इस पर दो मत हो ही नहीं सकते। विधि सुन्दर है, उपयुक्त है। एक लाख रुपये की अपील को सफल बनाने के लिए इससे अच्छा और सरल तरीका दूसरा और हो ही क्या सकता है? हमें आशा है—आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है, अपील निरर्थक नहीं जायगी। सफल होगी, जरूर सफल होगी। आर्य जनता अपने कर्त्तव्य से कभी उदासीन नहीं रहने की! फिर ऐसे अवसर पर!! परीक्षा के समय पर!!! उस जयन्ती पर—गुरुकुल कांगड़ी की जयन्ती पर—तीन लाख से अधिक रुपया प्राप्त हुआ था।

गुरुकुल का स्नातक मंडल उत्साह पूर्वक काम कर रहा है। कुछ स्नातक अभी से गुरुकुल भूमि में आकर डट गए हैं। गुरुकुल के आन्तरिक प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने के लिए आर्यसमाज के पुराने सेवक सुप्रसिद्ध अनुभवी कार्यकर्ता श्री रामचन्द्र जी, S. D. O. गुरुकुल में बड़ी लगन और तत्परता से काम कर रहे हैं। अनेक महानुभाव किसी न किसी रूप में अपनी सेवा, अपनी सहायता प्रदान करने के लिए बड़े उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं। भिक्षा मंडलियां घूम रही हैं। जयन्ती कार्यालय में जिस प्रकार उत्साह से भरे हुये पत्र आये दिन आ रहे हैं, उस से पता चलता है कि जनता में जयन्ती समाचार जानने के लिए उत्सुकता उमङ्ग है, चाव है। यह सब प्रमाण है किस बात का? प्रमाण है उस जीवन का जिसके बिना जातियों का जीना, जीना नहीं कहा सकता और जिस जीवन का कभी ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व आर्य जाति में एक दम अभाव था।

निस्संदेह आर्यसमाज एक जीवित समाज है। जीवित समाज की वास्तविक शक्ति का पता ऐसे ही महोत्सवों की सफलता से लगाया जाता है। गत शताब्दी महोत्सव पर आर्यसमाज ने अपनी शक्ति का जैसा अद्भुत, जैसा अनोखा, जैसा प्रभावशाली परिचय दिया है, वह चिरकाल की पराधीनता और दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई, हां, एक तरह से मरी, बुझी हुई जाति के इतिहास में एक दम नवीन और अनोखी वस्तु है। इस महोत्सव के पश्चात् अब यह जयन्ती उत्सव दूसरा अवसर होगा, जब संसार को, आर्यजनता की-विशेषतया यू० पी० की आर्य जनता की— शक्ति का, हां जीवन का पता लगेगा!

आर्य पुरुषो! सुनते हो! समझते हो न!!

———:*:———

जीवन और मृत्यु

——:०:——

(लेखक—श्री मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि गुरुदत्त भवन लाहौर)

——:०——

हमारे ऋषि मुनियों ने अपने योगाभ्यास से परिशोधित एवं अलौकिक मस्तिष्क से विचार विचार कर हमें बतलाया, कि ऐ आर्यजाति, तेरे जीवन का आधार (मूल) ब्रह्मचर्य ही है, जिस प्रकार गगन-चुम्बी विशाल महलों की स्थिरता उनकी नींव पर आश्रित है, ठीक इसी प्रकार वैयक्तिक जीवन अथवा जातीय जीवन की स्थिरता ब्रह्मचर्य पर ही अवलम्बित है। जिस व्यक्ति अथवा जाति में इस उक्त रत्न की प्रतिष्ठा, अर्थात् नियमतः नित्यशः पालना होती है, वह व्यक्ति व जाति अपनी पूर्ण शतायु को भोगती है। लोग कहा करते हैं, कि सतयुग अर्थात् राम राज्य में कभी पिता स्वात्मज की मृत्यु को नहीं देखता था। ठीक, ऐसा हो भी क्यों न? जबकि वे अपने नियमानुसार वीर्य को रक्षा करते थे। यदि अब भी उसी प्रकार वीर्य की रक्षा की जाय तो इस युग में भी वैसा ही हो सकता है, परन्तु जिस दिन से हम लोगों ने वेद के निम्न पवित्र सन्देश को भुलाया है, उसी दिन से आज तक मृत्यु का शिकार बने हुए हैं। वेद का पवित्र सन्देश क्या है:—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत। अथर्व

अर्थात् जब मृत्यु अपने पूर्ण वेग से ब्रह्मचारी को आदबाती है तब आदित्य ब्रह्मचारी अपने तप से उसके उत्साह को भंग करता, और उसे जीतता है, जीतना क्या है? कि उस ब्रह्मचारी को मृत्यु का कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। पाठक वृन्द! ऋषि की मृत्यु हमारे सन्मुख है, शरीर पर रक्त और पीव के भरे हुए पैसे २ के बराबर छाले पड़े हुए हैं, जब कोई डाक्टर देखने को आता तो दांतों तले अंगुली दबा कर चकित हो कर कह देता, कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं अपितु कोई देवता है। देखो, कैसी बुरी अवस्था है, परन्तु मुख चन्द्रवत् खिला हुआ है और तेज से चमक रहा है। धन्य हो दयानन्द! तुम धन्य हो!! तूने जाति के लिए ब्रह्मचर्य की शक्ति का अपूर्व दृश्य दिखा कर हमें उपकृत किया, परन्तु अज्ञानवश देव! हमने इसको भुला दिया, और मृत्यु के मुख का ग्रास बने हुये हैं। आज कल को विचित्र परिस्थिति है, कि हमें छोटी उमर में हीं बुढ़ापा आ घेरता है, और बाल श्वेत हो गिरने लग जाते हैं। इसका यही कारण है कि हम में रोगों की परमौषधि और बुढ़ापे का एक महान शत्रु जो कि ब्रह्मचर्य नाम से पुकारा जाता है नहीं है योगशास्त्र में महामुनि पतंजलि जी लिखते हैं कि:—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभो। योग०

अर्थात् पूर्ण रीत्या ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य प्राप्ति होती है। जैसी कि बाल ब्रह्मचारी भीष्म को, यह वीर १०० वर्ष की अवस्था में बड़े २ महारथियों का सामना करता है, और अन्त में प्रतिज्ञा करता है कि जब तक सूर्योदय दक्षिणायन से उत्तरायण में नहीं होगा, मैं तावत् प्राणों को नहीं त्यागूंगा। क्या ऐसी घोर प्रतिज्ञा कोई वीर्यहीन कर सक्ता है? कदापि नहीं। अस्तु इस प्रकार हमको ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए भरकस प्रयत्न

करना चाहिए। ब्रह्मचर्य की रक्षा सद्वृत्त पर निर्भर है। हम संसार में नित्य प्रति देखते हैं कि कि जब प्रत्येक मनुष्य किसी काम को आरंभ करता है तो आरम्भ करने से पूर्व अवश्य एक अश्लील शब्द बोलता है। रोटी को उठाने के लिए, दातुन तोड़ने के लिए, स्नान करने को पानी लेने के लिए, जब भी उठता बैठता व चेष्टा करता, तभी गाली देता है—अब उसे यह नहीं पता कि इन गालियों का मेरे आचरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी का कारण है कि छोटे २ बालक अनेक घृणित दोषों में प्रारम्भ से ही फंस जाते हैं। इस लिए जहां अश्लील बातें, अश्लील गीत होते हों वहां बालकों को क्या किसी मनुष्य को भी नहीं बैठना चाहिये। जब हमारा आचरण पवित्र होगा, तभी ब्रह्मचर्य की रक्षा अनायास हो सकती है—और ब्रह्मचर्य रक्षा ही जीवन का मुख्याधार (मूल) है। जहां हमारे ऋषियों ने यह उक्त जीवन आधार बताया वहां मृत्यु का आधार (मूल) बालविवाह को भी बताया था। आज संसार में बालविवाह की कुप्रथा प्रारम्भ है, इसी लिए हमारी जाति व देश में बिमारियों का और मौत का साम्राज्य स्थिर हो गया है। आज वह बीमारियें, जिन का हमारे चिकित्सा शास्त्रों में नाम भी नहीं था, आ गई हैं, इसका मूल कारण यदि कहा जाय तो अल्प वयस्की शादी ही है। यदि विवाह के समय हिन्दू (आर्य) लोग डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों की मांग रखते, तो आज हमें ऐसा अनर्थ न देखना पड़ता, छोटी २ बीमारियों में हम वैद्यों के पास जाते रहते हैं। परन्तु इस पवित्र काम में हमने उन को अपमानित कर छोड़ दिया। देखिये सुश्रुत में जो कि चिकित्सा की अपूर्व पुस्तक है-क्या लिखा है:—

पंच विंशे ततो वर्षे पुमान्नारिनु शोड़षे।
समत्वागत वीर्योतु जानीयात्कुशलोभिषक्॥

अर्थात् प्रवीण वैद्य का कर्तव्य होना चाहिये, कि वह उन को बताये कि यह आपका बालक २५ वर्ष का होने पर विवाहाधिकारी होगा, और यह आपकी कन्या १६ वर्ष की होने पर विवाहाधिकारिणी होगी। यदि वह लोग किसी अभिमान में आकर उक्त बात को न मानें, तो कहे:—

ऊन शोडष वर्षायाम प्राप्तः पंचविंशितिम्।
यद्याधत्ते पुमान्गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते॥

कि यदि तुम उक्त नियमानुकूल न करोगे, तो याद रक्खो कि तुम्हारा गर्भ कुक्षिस्थ ही मर जायगा, अर्थात् पैदा नहीं होगा, यदि किसी दवाई बूटी से पैदा भी हो जाय तो उनको निम्न श्लोक सुनाए:—

जातो वानचिरंजी वेद्जी वेद वा दुर्वलेंद्रियः।
तस्मादत्यन्त वालायां न कुर्याद् गर्भ धारणम्॥

कि यदि तुम सन्तान पैदा भी कर लोगे, तो दुर्बल रहेगी और पूर्णायु न भोगेगी, इस लिए तुम इस उक्त शास्त्रीय आज्ञा का अपमान न करो, यदि कल्याण चाहते हो। सचमुच जिस दिन से हमने उक्ताज्ञा को न माना, उसी दिन से मौत ने हमारा पलड़ा पकड़ लिया। प्राचीन विधि तो यह थी कि-धी, श्री, स्त्रीम्, अर्थात् पहिले विद्वान् बनना, और फिर धन-संचय की योग्यता प्राप्त करनी, तदुपरांत विवाहार्थ गृहस्थ में प्रवेश करना। जब ऐसी विधि हमारे देश में पुनः प्रचलित होगी तभी हमारी जाति का कल्याण, देश का उत्थान और मृत्यु के मुख से बचाव होगा।

विद्या और अविद्या

———:०:———

(लेखक—डा० ज्वालाप्रशाद जी बानप्रस्थी)

———:*:———

गतांक से आगे

एक दिन बाबू साहब नगर में किसी बीमार को देखने गए थे कि बड़े जोर का शब्द कान में पड़ा, सुनते ही होश उड़ गए, रोगी और उसके रक्षक सब हैरान! आये थे इलाज करने, अपनी जान के लाले पड़ गये!! पानी के छोंटे दिये, कुछ होश आया कि हाथ में जूते दबा कर भागे, लोग सोच में हैं, क्या हो गया। आगे आगे डाक्टर साहब पाछे २ आदमी। गली से निकलते हो पता चला कि डा० साहब के कारखाने में गैस का पम्प फट गया, पहुंचते २ घर और कारखाना जल कर राख हो गया। एक लड़का बैरिस्टर, दूसरा इन्जीनियर, कमरे में बैठे शतरंज खेल रहे थे कि सब खेल बिगड़ गया। सारे कुनबे की एक साथ अंत्येष्ठि हो गई। बाबू जी की हालत पागलों से वदतर है, बैठे २ "जग्गू बेटा" कभी "मुरली लल्ला" पुकार उठते हैं, बेटे, पोतों को मृत्यु और लाखों की हानि ने १५ दिन में बाबू साहब को ७८ वर्ष की आयु में चलता बनाया। उफ! क्या था क्या हो गया! यह बाबू साहब रात दिन तरह तरह को विद्या सीखने में रत (संलग्न) रहे परन्तु शान्ति देवी के दर्शन न हुए।

अब लगे हाथों पं० विद्याधर न्यायतीर्थ की कथा भी सुन लीजिए यह महाशय सर्व शास्त्र स्वतन्त्र हैं, तर्कशिरोमणि हैं, क्यामजाल जो शास्त्रार्थ में इन से कोई बाज़ी ले जावे, अहर्निश नई युक्तियां सोचने में लगे रहते हैं। परन्तुः—

ऋषि यज्ञं देव यज्ञं भूत यज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृ यज्ञश्च यथा शक्ति न हापयेत्॥
मनु०॥

अर्थः—संध्या, हवन, बलिवैश्य देव यज्ञ, अतिथि यज्ञ, और माता पिता की सेवा कभी न छोड़ना चाहिये।

यह उपरोक्त आज्ञा जानते हुये भी पांचों में से एक यज्ञ भी नहीं होता।

एतान्यपितु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानिति मे पार्थ निश्चितं मत मुत्तमम्॥
गीता॥ १८।६

अर्थः—हे अर्जुन! उन यज्ञादि कर्मोंको अवश्य करना चाहिये,परन्तु उनमें आसक्त नहीं होना चाहिये और न उनके फल को इच्छा करनी चाहिये, यह मेरा निश्चित सिद्धान्त है।

श्रीकृष्ण के प्रत्येक उपदेश को भली प्रकार जानते हुये भी उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। यह पण्डित जी सर्व गुण सम्पन्न हैं। गान विद्या में यक्ता तो बजाने में अपना जबाब नहीं रखते, दूर २ के दस्तकार इनकी शागिरदी का अभिमान रखते हैं। यह कौन सा हुनर है जो इनको नहीं आता। गरज २४ घंटों में से एक मिनट बेकार नहीं रहते। विद्या सीखने सिखाने का शौक एक क्षण भर भी आत्मोन्नति के विचार को मस्तिष्क में आने नहीं देता। यम नियमों की व्याख्या वेदी पर भले प्रकार जोरदार शब्दों में घंटों की जाती है, परन्तु हृदय में इन बातों का वास नहीं। (अपूर्ण)

फिजी में सनातन धर्म और आर्य समाज

(ले०—श्री पं० श्रीकृष्ण शर्म्मा आर्य मिश्नरी)

फिजी में हिन्दुओं की संख्या इस समय लगभग ६० हजार है। भारत के हिन्दुओं, विशेषतः कट्टर सनातनधर्मियों तथा यहां के सनातन धर्मियों में आकाश पाताल का अन्तर है। भारत में जो हिन्दुओं में सुधारक गिने जाते हैं, फिजी प्रवासी सनातनधर्मी उन से बहुत आगे बढ़े हुये हैं। ऊँच नीच और छूत-छात आदि का भेदभाव उनमें नहीं है। जन्म से वर्ण व्यवस्था के बन्धन से वे बाहर हैं। विवाह शादी में कहीं कहीं तो उदारता की सीमा यहां तक पहुंच गई है कि वे ईसाई और मुसलमान घरों के साथ भी वैवाहिक बन्धन के लिये तैयार हो जाते हैं। खान पान में तो कुछ विचार व भेदभाव है ही नहीं। सब बराबर हैं। विधवा विवाह के विरुद्ध सम्मति देना मूर्खता समझी जाती है। देश भर में सैकड़ों मन्दिरों में होने वाली पूजा की छटा के भी दिव्य दर्शन यहां कठिन हैं। कहीं कहीं एक दो मदरासी भाइयों के शिवालय या दो चार साधू बाबाओं की कुटियां हैं। पर उनपर कितना जम घट रहता है, और उन मन्दिरों में कितना चढ़ावा चढ़ता है, यह वही भली प्रकार जान सकता है जिसने उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। भगवान् के दर्शन मात्र से या किसी तीर्थ में स्नान कर मुक्ति पाने पर विश्वास करने वाले उँगलियों पर भी गिनने को न मिलेंगे। वर्ण व्यवस्था के बन्धन को शिथिल करने के लिये यहां जाति पांति तोड़क मंडल के लिए नाम मात्र का ही काम निकल सकेगा। सभी प्रकार के हिन्दुओं में मांस मदिरा तथा मंगोना के सेवन करने वाले अच्छी संख्या में मिल जायेंगे। ऐसे कितने घर होंगे जिनमें मुर्गियों का पालन तथा कंठ छेदन नहीं हुवा करता!

ऐसी हालत में यदि कमियों पर पर्दा डाल उन्हें न देखा जाय तो भला कौन कह सकता है कि वे पुराने विचार के सनातनधर्मी हैं। जब छूआ छूत नहीं, जाति पांति नहीं, समुद्र पार जाने पर प्रायश्चित की व्यवस्था नहीं, विधवा विवाह का विरोध नहीं, जहां जबर्दस्त जाति पांति तोड़क मंडल का क्रियात्मिक प्रचार हो, स्त्री शिक्षा का विरोध नहीं। शूद्रों के उठाने में आपत्ति तो दूर रही उनका नाम भी नहीं, मन्दिरों में पूजा नहीं, पाठ नहीं, तब अपने आप को सनातनधर्मी कहाने वाले भाई और आर्यसमाजियों में भेद ही क्या रह गया? दोनों ही गो और वेद के उपासक हैं, दोनों एक ही ईश्वर के पूजक हैं। यही कारण है कि समझदार भाई (चाहे वे अपने को सनातन धर्मी ही क्यों न कहते हों क्यों कि नाम का विशेष भेद नहीं होता है भेद तो काम से होता है) आर्य समाजियों से अलग नहीं समझते। उनके काम को बड़े प्रेम और सहानुभूति की दृष्टि से देखते तथा उसमें सहयोग देते हैं। आर्यसमाजी भी उनसे मिलकर कार्य करते हैं। सनातनधर्म महामण्डल अबतक आर्यसमाज से मिलकर बड़ी शान

के साथ अपना धर्मशाला स्कूल चला रहा है। आर्य समाज की इस संगठनात्मिक कार्य शैली से हमारे कुछ ईसाई और मुसलमान भाई नाराज़ हैं, कारण स्पष्ट है। जब से आर्य समाज ने इस नीति का अवलम्बन किया है तब से हिन्दुओं की तादाद घटने के स्थान में बढ़नी प्रारम्भ हो गई है। जैसा कि आस्ट्रेलिया से निकलने वाले मिश्नरी रिव्यू में रेवरेंड वर्टन के लेख से स्पष्ट है।

इस प्रकार सहयोग से होते हुए काम को देख कर भारतीयों के शुभ चिन्तकों को खुश होना चाहिये था। परन्तु कुछ ईसाई तथा मुसलिम सज्जन, भारतीय हितचिन्तकता का दावा करते हुए भी भेद नीति से काम लेकर काम को धक्का पहुंचाने के लिए कमर कस कर तैयार रहते हैं।

उदाहरणार्थ डा० आई० ऐच० बीटी महोदय को ही लीजिये। आप चर्च आफ इग्लैंड से सम्बन्ध रखने वाले एक कट्टर ईसाई सज्जन हैं। भारतीय हितचिन्तकता का दावा करते हे, पर उन के कार्य सर्वथा उनके दावे के प्रतिकूल सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए लीजिये दो चार बातें। भारतीयों की एक मात्र Indian Printing and Publising Co. है जिसमें सभी सम्प्रदाय के भारतीयों के सहयोग से कार्य हो रहा है, यदि डाक्टर आई हैमिल्टन बीटी के हृदय में भारतियों से हार्दिक सहानुभूति होती तो उक्त कम्पनी में अधिक से अधिक भाग खरीद कर उसके मैनेजिंग डायरेक्टर बन कर कम्पनी को एक अच्छे पैमाने पर पहुंचा भारतीयों की वास्तविक हितचिन्तकता का क्रियात्मिक आदर्श सभ्य सज्जनों के सन्मुख समुपस्थित करते। परन्तु उन्हों ने उसकी उन्नति करने के स्थान पर उसका तथा उसके पत्र "फीजी समाचार" का विरोध करने के लिए "पैसिफिक प्रेस" से भेद नीति की भंडार "बृद्धि" जैसी मासिक पत्रिका का जन्म दिया। बृद्धि के उपसम्पादक श्री दुर्गा प्रसाद मारकस ने (जो अपने को क्रिश्चन सनातनी कहते हैं) "फीजी समाचार" को हानि पहुंचाने के लिए जो जो घृणित षडयन्त्र रचनायें कीं हैं उन्हें लिख कर व्यर्थ में हम कागज काला नहीं करना चाहते।

आर्य समाज को अनाथालय के लिए धन मिलने पर जनवरी सन १९२८ की बृद्धि में अप्रासंगिक तथा अनुचित टीका टिप्पणी डा०बीटी के ही द्वारा हुई, उसे पढ़ कर प्रत्येक समझदार एवं सुसभ्य व्यक्ति ठीक से पता लग सक्ता है कि डा० बीटी कितने मननशलि विद्वान और भारतियों के शुभ-चिन्तक तथा आर्यसमाज से प्रेम करने वाले व्यक्ति हैं। "बृद्धि" के अतिरिक्त "पैसफिक प्रेस" नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र आपके ही तत्वाधान में सूवा से प्रकाशित होता है। उसका नाम मात्र के लिए सम्पादक नियुक्त कर रक्खा है। इसका प्रमाण यह है कि आज तक जितनी गन्दगी पेसफिक प्रेस द्वारा फैलाई गई डा० बीटी ने उसका कहीं भी किसी अवस्था में विरोध नहीं किया। आर्य समाज के विरुद्ध मुकद्मा चलाने के लिए प्रारम्भिक निर्देश भी इन्हीं पत्रों द्वारा किया गया था। डा० साहब को आर्य समाज से तो इतनी चिढ़ है कि आर्य समाजियों का मुख तक नहीं देखना चाहते। यह मुझे उन्हीं के उपसाथी द्वारा पता चला है। सबसे बड़ा प्रमाण तो इस बात का इस एक घटना से मिल सकता है कि एक दिन पूज्य मेहता जैमिनी जी बी० ए० एल० एल० बी० तथा श्रद्धेय ठाकुर सरदारसिंह जी और आ० प्र० नि० सभा के उपमन्त्री मि० आर परमेश्वर डाक्टर साहब के घर पर मिलने अचानक जा पहुंचे, बात चीत में गरम होकर डा० साहब ने उपरोक्त सज्जनों का Go out from my house जैसे सत्कार पूर्ण शब्दों से आदर किया। पाठकगण! भली भांति समझा जा सकता है कि यह सब क्या हो रहा है? क्या इसी लिए कि आर्य समाज शिक्षा का प्रचार

करता है ? भारतियों को अपने प्राचीन गौरव का स्मरण कराता है। उन्हें ईसाई न होने देकर अपने धर्म में ही रहने का गौरव दिखाता है। और अपने भाइयों को दूसरे के हाथ की कठ पुतली न होने देकर अपने सहारे काम करना सिखाता है। यदि यही आर्य समाज का दोष है तो परमात्मा आर्य समाज को ऐसा दोषी सदैव बनाये रक्खे। इसमें उसका गौरव है।

ईसाई जब स्वयं आर्य समाज के तर्क के आगे खड़े न हो सके तो सनातनधर्म के नाम से अब विरोध प्रारम्भ ,किया है। यूं तो छोटे बड़े कितने प्रहार समाज पर हुये, पर सामावूला स्कूल के ऊपर सब से बड़ा प्रहार हुवा। सन् १९२३ में आदर्श आर्य वीर श्री पं० राघवानन्द जी के सभापतित्व में स्कूल बनाने के बारे में सभा हुई, कमेटी बनाई गई पर दो साल तक काम सुस्त पड़ा रहा। १९२५ में फिर कमेटी बनाई गई। उसमें चार मुसलमान सज्जन भी सहयोग की दृष्टि से ले लिये गये। पर उन्होंने कार्य में कुछ भाग नहीं लिया। मि० राघवानन्द जी ने अपनी बुद्धि चातुर्य्यता से लगभग १९ पौंड मुसलमानों से तथा १०० पौंड सरकार से मिलने की आशा न होने पर भी धन चन्दे के रूप में निकाल ही लिया। आर्य लोग घर का कारवार छोड़ रात दिन नंगे पैर घर २ घूम कर पैसा इकट्ठा करते फिरे आर्य समाज सामावूला के प्रधान चौधरी कन्हईसिंह जी ने जितना परिश्रम तथा धन और समय उक्त स्कूल में लगाया है वह वर्णनातीत है। येन केन प्रकारेण स्कूल बन कर खड़ा हो गया किन्तु आर्य समाज के विरोधियों के सतत उद्योग से आर्य समाज के आदर्श नवयुवक श्री पं० राघवानन्द जी की बदली सूवा से फीजी के द्वितीय भाग नन्दारीवात् के लिये हो गई, जब वे जाने लगे तो उन्होंने बतलाया कि अब तक जो कमेटी बनी हुई थी वह सिर्फ स्कूल बनाने के लिये थी अब स्कूल बनकर तैयार हो गया है अतः आप लोग स्कूल संचालन के लिये दूसरी कमेटी बनालो। जनता ने इस विचार को पसन्द किया और उनकी इच्छानुसार दूसरी कमेटी बनाई गई। उसमें मुसलिम सज्जन नहीं चुने गये। वृद्धि ने अवसर देख कर Injustice to the Muhammadan Community शीर्षक देकर मुसलिम जनता को उभाड़ते हुये एक लेख लिखा जिसमें बिना कमेटी में पास हुआ मिनट छापा गया। आन्दोलन का प्रारम्भ यहीं से होता है। स्कूल खुल गया। श्री ठाकुर सरदारसिंह जी बड़ी योग्यता से उसमें कार्य करने लगे। उनके कार्य से किसी को असन्तोष न था। परन्तु क्यों कि वे आर्य समाजी थे इस लिये ईसाई मुसलमानों की तरफ से विरोध की चिनगारियां उड़ने लगीं। ईसाई मि० हाकिमदीन बी० ए० बी० टी० तथा दुर्गाप्रसाद मारकस और मुसलिम मि० अब्दुलरहमान तथा अब्दुलगफूर साहूखान की संगठित शक्ति से फीजी टायम्स एन्ड हेरल्ड में धड़ा धड़ लेख निकलने लगे इधर से भी खूब मुंह तोड़ उत्तर दिये गये। मामला शान्त होने ही वाला था कि मि० दुर्गाप्रसाद मि० हाकिमदीन और मि० पीयर्सन को एक युक्ति सूझ पड़ी और वह सनातनधर्मियों को फोड़कर आर्यसमाजियों के सन्मुख खड़ा करने की थी।

धीरे २ इन लोगों के उद्योग से "सनातनधर्मी" नाम से कुछ सज्जन इनके जाल में फंसकर विरोध में प्रवृत हो ही गये। सामावूला में एक सभा की गई। मि० हाकिमदीन उसके सभापति बनाये गये पर थोड़ी देर में याद आ गई कि ये सभा सनातनधर्म के नाम से हो रही है अतः नाममात्र के लिये एक गोवर गणेश सभापति बनाकर कुर्सी पर और बैठाल दिये गये। इस सभा में ईसाई, मुसलमानों की खासी भीड़ थी। आर्य समाजियों को नोटिस देकर आने से रोक दिया गया था कि इस सनातनधर्मकी सभामें आर्यों को छोड़कर सब आसकते हैं। आर्य समाज और सामाबूला स्कूल के विरुद्ध खूब

ज़हर उगला गया। उपस्थित जनता को उभाड़ा गया कि खूब आन्दोलन किया जाय कि ये स्कूल सरकार भारतीय कमेटी से छीन ले। अधिकारियों के हस्ताक्षर करा २ कर एक लम्बा चौड़ा पिटीशन सरकार में भेजा गया। मि० पीयर्सन सेक्रेटरी फार इन्डियन एफेयर्स ने जो पहिले ही से इस उद्योग में थे कि किसी प्रकार भारतीयों में कम्यूनल फीलिंग अर्थात् जातिगत प्रतिनिधित्व की भावनायें फैल जाय इन लोगों को खूब सहायता पहुंचाई। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि कमेटी में चार मुसलमान अवश्य होने चाहियें। इसके लिये उन्होंने स्कूल कमेटी को बाध्य भी किया कि फिर चुनाव हो और उसमें सिर्फ धन दाता ही वोट दें। कमेटी के मेम्बरों ने झगड़े को शान्त करने के लिये बिना साल पूर्ण हुए पुनः चुनाव होने की बात को स्वीकार कर लिया। चुनाव के समय मि० कोली डायरेक्टर आफ एजुकेशन मि० बार्कर फीजी टायम्स एन्ड हैरल्ड के एडीटर तथा स्वयं मि० पीयर्सन उपस्थित थे। जिन्होंने धन नहीं दिया था उन बेचारे भारतियों को धक्का देकर स्कूल से निकलवा दिया। पीछे से ये हल्ला भी डा० बी० टी० पार्टी ने मचा दिया कि ये सब काम आर्यों ने कराया है। चुनाव हुआ। किन्तु मुसलमान फिर भी नहीं चुने गये। प्रधान सिक्ख नेता सरदार हरनरेन्द्रसिंह जी तथा मंत्री वैदिक सन्देश के सम्पादक मि० विष्णुदेवजी नियुक्त हुए। मि० पीयर्सन का कर्तव्य था कि अब सब आन्दोलन को शान्त कर देते पर भला ऐसा क्यों करने लगे उन्होंने अपना विरुद्ध आन्दोलन फिर भी बन्द नहीं किया। मि० कोली डाइरेक्टर ओफ एजुकेशन ने भी स्कूल को रजिस्टर्ड नहीं किया और आन्दोलन का बहाना करके सरकार ने भी स्कूल बंद कर दिया तथा कमेटी के सामने ऐसी समस्यायें उपस्थित कीं कि जिससे स्कूल सरकार के हाथ में आ जाय। अन्त में बाधित होकर हिन्दू हैडमास्टर रखने की शर्त पर कमेटी ने स्कूल सरकार को सौंप दिया। स्कूल न दिया जाता तो ठीक होता पर जिस शर्त पर दिया है वह शर्त ऐसी है जिससे उसमें चन्दा देने वालों का कुछ भाग फिर भी रह जाता है।

आशा थी स्कूल ११ फर्वरी को खुल जायगा परन्तु अभी ऐसा होना नहीं बदा था। 'वृद्धि' पत्र में कट्टर सनातन धर्मी हैडमास्टर रखने के लिये सलाह दी गई, और ईसाइयों की ओर से प्रश्न उठाया गया कि न हिन्दू हो, न आर्य, न मुसलमान, वे सब झगड़ते हैं, इसलिये ईसाई होना चाहिये। मामला फिर खटाई में गया है। देखें कब सुलझता है। इस प्रकार इस के इतिहास को देखने से पता लगेगा कि इस तरह स्कूल के विरोध होने से आर्य समाज के शिक्षा सम्बन्धी काम में कितनी बड़ी रुकावट आ गई है।

अभी इतना सब करके भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ है। अब आर्यसमाज का और विरोध करने के लिये डा० बी० टी० सनातनधर्म की आड़ में श्री० रूपसनातन नामक किन्हीं सज्जन को बुलाने की तैयारी कर रहे हैं। यदि कोई इस नाम के सज्जन आने वाले हैं तो हम उन का हृदय से स्वागत करते हैं और उनसे यही प्रार्थना करते हैं कि यहां आकर वे पहले फिजी के सनातनधर्म का अच्छी तरह अध्ययन कर लें और फिर इस प्रकार की नीति से कार्य करें कि जिस से विपक्षी फायदा न उठा सकें और सब भारतीय मिलकर उन्नति कर सकें न कि उलटे एक दूसरे के मार्ग में बाधक बनें।

यह समझ लेना भी भूल होगी कि सभी ईसाई व मुसलमान समाज के विरोधी हैं। न हीं सभी सनातनधर्मी कहाने वाले विरोधी हैं। जो कुछ इने गिने सज्जन विरोध करते हैं उनकी तह में

क्या है, उनके विरोध में कहां तक सार है, यह सब देखकर अत्यन्त सावधानी से काम करने की आवश्यकता है। नहीं तो थोड़ी सी असावधानी से बहुत अधिक हानि हो सकती है।

———:o:———

विराट् भारत की सामायिक-चर्चा

———:o:———

(ले०—श्री स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी)

———:o:———

फिजी में आर्यसमाज की सिलवर-जुबली

आज पूरा अर्द्ध-शताब्दि व्यतीत हुआ जब कि पहले पहल सन १८७९ की पहली मई को 'लियोडिनास नामक जहाज भारतीय शर्तबन्धे मजदूरों को लेकर फिजी द्वीप पहुंचा था। अतएव फिजी प्रवासी भाई आगामी मई मास में भारतीय-आगमन का अर्द्ध-शताब्दी महोत्सव अर्थात् गोल्डन जुबली मनाने की आयोजना कर रहे हैं। फिजी द्वीप-समूह लगभग २५० भागों में विभक्त है इस का क्षेत्रफल ७०८३ बर्गमील है। लगभग ८० द्वीपों में आदमियों की आबादी है। भारतीयों की संख्या सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ६०,६३४ है।

फिजी के सामाबूला नामक स्थान में आर्यसमाज सन् १९०४ में स्थापित हुआ, तब से वहां बराबर वैदिक धर्म का प्रचार हो रहा है। गत दिसम्बर १९२८ के अन्तिम सप्ताह में फिजी के उत्साही आर्य भाइयों ने आर्य समाज की राप्य जयन्ती अर्थात् सिलवर-जुबली बडी धूमधाम से मनाई, उसका विस्तृत विवरण मुझे प्राप्त हुआ है। हम उक्त महोत्सव का संक्षिप्त सम्वाद 'वैदिक सन्देश से नीचे उधृत करते हैं:—

जयंती तथा आर्य प्रतिनिधि सभा के उत्सव की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जारही थी। आखिर वह दिन आही गया। अच्छा जमाव हुआ। दूर २ से आर्य सज्जन पधारे। समाबूला में, कन्या महाविद्यालय की जमीन में, टीनों से छाये हुए सुंदर विशाल मंडप में उत्सव प्रारम्भ हुआ। मंडप की सजावट देखते ही बनती थी। लोगों के चेहरों पर अपूर्व उत्साह और जागृति की रेखा झलक रही थी। ओ३म का तिरंगा झंडा ? उच्च आकाश में अपनी निराली शान के साथ फहरा रहा था। सामाबूला आर्य ट्रूप के स्काउटस तथा आर्यवीर श्री चौधरी कन्हाई सिंह द्वारा झंडे का उदघाटन हो जाने के बाद स्वागत समिति के सभापति पं० जे० पी० महाराज जी ने उत्साह बर्द्धक शब्दों में आगत सज्जनों का स्वागत किया। जयन्ती के प्रधान श्री ठाकुर कुन्दनसिंह जी का भाषण महत्वपूर्ण और आर्य पुरुषों में नवजीवन संचार करने वाला था। आर्य समाज के वयोवृद्ध सेवकों के हृदयों से निकले हुए हर्षोद्गार उत्सव में जीवन फूंकने वाले थे। पं० हरदयाल जी की अध्यक्षता में आर्य सम्मेलन, श्रीमती जे० पी महाराज की प्रधानता में महिला परिषद् और पं० राघवानन्द जी के सभापतित्व में युवक संमेलन हुए। उक्त सम्मेलनों में अनेक प्रस्ताव भी पास हुए। स्वीकृत प्रस्तावों में लाला लाजपतरायजी की हत्या पर शोक, आर्यसमाज के प्रचार

की व्यवस्था और व्यायाम संघ की स्थापना के प्रस्ताव मुख्य थे । धर्म सम्मेलन में पं० ईश्वरी प्रसाद, श्री सामुयेल शरण, महन्त पिंगल दासजी पं० श्रीकृष्ण जी शर्मा और विवेक प्रकाश जी ने भाग लिया था।

जलूस तो अपने ढंग का निराला ही था। सब के आगे कन्हाईसिंह जी ओ३म् का झंडा लिये चल रहे थे, उसके बाद आर्य स्काउट और और आर्य सज्जन थे। बीच में महिलाएं मंगल-गीत गाती हुई चल रही थीं । मोटर ड्राइवरों ने जलूस में शामिल होकर वास्तव में अपने अपूर्व उत्साह का परिचय दिया था। श्री भारतसिंह, श्री विश्वेश्वर सिंह आदि नवयुवकों का उत्साह सराहनीय था। जलूस में सम्मिलित आर्य पुरुषों के जयजयकार से सभी नगर गूंज रहा था।

ठाकुर कुंदनसिंह के अपील करने पर आर्य कन्या महाविद्यालय, सामाबूला के लिये वायदा और नगद मिलाकर लगभग एक हजार पौंड एकत्रित हुआ । लोगों में ऐसा उत्साह उमड रहा था कि श्रमिती जानकी बाई ने अपनी सोने की चूडी उतार कर प्रदान करदी। जिसे श्री इन्द्रनारायण ने १३ पौंड में खरीद कर उक्त श्रीमती को पुनः अर्पण कर दिया। साधू बसावन दास जी ने धन के अतिरिक्त कुछ कपडे भी दान किये, जिसे नीलाम में श्री रणधीर सिंह जी ने ५२ पौंड में खरीद कर पुनः नीलाम करवाया। श्री पूरणसिंह ने उसे ५ पौंड में मोल लिया।

आर्य प्रतिलिधि सभा के उत्सव में मंत्री जी ने वार्षिक विवरण सुनाया, जो सन्तोषजनक था। विवरण के बाद सत्यार्थ प्रकाश की परीक्षा और सत्यार्थ प्रकाश पुरस्कार में देने तथा विना मूल्य वितरण करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव अंगीकृत हुए। नवीन चुनाव में माननीय पं० बद्री महाराज सभा के प्रधान नियुक्त हुए। उत्सव आशातीत सफलता के साथ समाप्त हुआ। पुराने कार्यकर्ताओं के मुह पर सन्तोष और हर्ष की झलक थी, नवयुवकों में अपूर्व उत्साह था और स्काउट बालकों के सामने आशा पूर्ण भविष्य था।

इस अवसर पर "वैदिक सन्देश" का जयन्ती अङ्क भी प्रकाशित हुआ है। इस अङ्क में कई अच्छे लेख और कई सुन्दर चित्र हैं। हम फिजी प्रवासी आर्यों के धर्म भाव और सत्साहस के लिये बधाई देते हैं।

दारस्लाम में आर्यसमाज का उत्सव

गत २२ से २५ दिसम्बर तक टंगेनिक्या प्रदेश अन्तर्गत दारस्सलाम के आर्य समाज का वार्षिकोत्सव अत्यन्त समारोह से सम्पन्न हुआ। यहां १८ साल से समाज स्थापित है किन्तु इससे पहले कभी वार्षिकोत्सव नहीं हुआ था। इस शुभावसर पर टंगेनिक्या प्रदेश के सभी मुख्य मुख्य आर्य भाई एकत्रित हुए थे। आर्य समाज का जलूस देखने हीं योग्य था—जनता में उत्साह उमड़ रहा था। जलूस दरस्सलाम के सभी खास खास सड़कों से होकर गुजरा। आर्य-मन्दिर को तोरण-बन्दरवार और वेद मंत्रों से खूब सजाया गया था। सर्व धर्म सम्मेलन, साहित्य सम्मेलन और आर्य सम्मेलन में अनेक महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़े गये और भिन्न भिन्न विषयों पर विचार विनिमय हुए। सभी सम्मेलन सफलता पूर्वक समाप्त हुए। आर्य सम्मेलन में यह चर्चा शुरू हुई कि टंगेनिक्या के आर्यों के लिये एक गुरुकुल और कन्या विद्यालय की नितांत आवश्यकता है। इस विषय का प्रस्ताव पास होते ही पांच मिनट के अन्दर एक लाख बीस हजार शिलिंग अर्थात् छः हजार पौंड इकट्ठा हो गया। सेठ मथुरादास कालीदास ने ४०,००० शिलिंग, सेठ गोविंदजी पुरुषोत्तम ने ३०,००० शिलिंग, श्री अर्जुन कुंवरजी पटेल ने ५००० शिलिंग

श्री माधवजी विश्राम ने १०,००० शिलिंग, श्री के० जवनादास एण्ड कम्पनी ने १०,००० शिलिंग और नौकरी करने वाले भाइयों ने एक एक मास के वेतन इस शिक्षा कार्य में अर्पण करने का अभिवचन दिये। दारस्सलाम आर्य समाज का दुमंजिला मंदिर है, और टंगेनिक्या में बड़े उत्साह से वैदिक धर्म का प्रचार हो रहा है। दारस्सलाम के महोत्सव पर डाक्टर भगतरामजी सहगल भी उपस्थित थे और आपके विचारों से वहां के आर्य भाइयो ने अच्छा लाभ उठाया।

नेटाल में वैदिक संस्कार

इधर नेटाल प्रान्त में मैंने छोटे-बड़े कई वैदिक संस्कार कराये-यथा विधि और यथाशक्ति वैदिक धर्म का प्रचार भी किया किन्तु गत २० जनवरी को दरबन-निवासी श्री मक्का मुन्नू के पौत्र का नामकरण संस्कार बड़े उत्साह से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर स्त्री और पुरुषों की अच्छी उपस्थिति हो गई थी। सनातन धर्म के महोपदेशक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्त शास्त्री भी पधारे थे। आगत देवियों और सज्जनों पर संस्कार का अच्छा प्रभाव पड़ा। संस्कार के बाद ठाकुर प्रवीण-सिंह का गान और मेरा व्याख्यान हुआ। बालक का नाम देवदत्त रखा गया।

नेटाल में वैदिक धर्म प्रचार

पूर्व अफ्रीका में परिभ्रमण और वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए डाक्टर भगतराम जी सहगल गत ७ फरवरी को सपरिवार दरबन पधारे। आपके साथ आपकी धर्मपत्नी और तीन बच्चे भी हैं। पाठक जानते हैं कि पहले दक्षिण अफ्रीका के शासकों ने डा० भगतराम जी को यहां आने की आज्ञा देने से इनकार कर दिया था किन्तु आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से बडे २ प्रयत्न किये जाने पर ब मुश्किल इस शर्त पर यहां आने की इजाजत मिली कि उनके और उनके परिवार के लिये ८० पौंड नकद जमानत दाखिल किया जाय और छः मास के अंदर वे इस देश से वापिस चले जावें।

इस शर्त के अनुसार श्रीयुत मक्का मुन्नू ने अपनी ओर से छः मास के लिये ८० पौन्ड जमा कर दिया। खैर, किसी तरह भगतराम जी को जहाज से उतार कर दरबन नगर में ठहराया गया। उसी दिन शाम को स्थानीय आर्ययुवक सभा की ओर से उनका आगत-स्वागत किया गया। अध्यक्ष सत्यदेव जी ने 'सार्वदेशिक' में छपे हुए विवरण के आधार पर जनता को डाक्टर साहब का परिचय दिया। तत्पश्चात् पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त-शास्त्री हिन्दू-संगठन पर बोले; मैंने ऋषि दयानंद का सन्देश सुनाया और ठाकुर प्रवीण सिंह जी ने समयोचित भजन गाया। अंत में डाक्टर भगतराम जी ने आदर-सत्कार के लिए आर्य-युवक सभा का उपकार माना; जनता को वैदिक धर्म की शरण में आने की ओर युवकों से आत्मोत्सर्ग करने की प्रेरणा की।

रविवार १० फरवरी को आर्यप्रतिनिधि सभाकी ओर से दरबनके रायल-पिक्चर पेलेस में श्री एस. एल. सिंहकी अध्यक्षतामें एक सार्वजनिक सभा हुई। जनता का जबर्दस्त जमाव था। डाक्टर भगतरामजी का स्वागत करते हुए प्रधान महाशय ने बतलाया कि इस देश में साम्प्रदायिक कट्टरता से अलग रहकर सार्वभौम धर्म के रूप में वैदिक धर्म का प्रचार करने की आवश्यकता है। इसके बाद मेरा और डा० भगतरामजी के भाषण तथा ठा० प्रवीणसिंहजी के भजन हुए। उसी दिन शाम को सूरत-हिंदू- हाल में बम्बई प्रेसीडेन्सी हिंदू एसोसियेशन की ओर से सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा में मेरा, पं० रामगोविंद त्रिपाठी वेदांत शास्त्री और

डाक्टर भगतरामजी के व्याख्यान तथा ठा० प्रवीण सिंह के गान हुए। ता० १३ फर्वरी की गांधी-लायब्रेरी में मेरी ही अध्यक्षता में डा० भगतराम जी ने अंग्रेजी में शांति का संदेश सुनाया-शिक्षित नवयुवकों का अच्छा जमाव हुआ था। कई प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता और कार्य कर्त्ता भी सभा में पधारे थे।

ता १७ फरवरी को सूरत हिंदू ऐसोसियेशन में डा० भगतराम जी का और मेरा 'वेदों की पवित्रता" पर भाषण हुए। इससे पूर्व पं० रामगोविंद त्रिवेदी ने उक्त एसोसियेशन में वेद पर एक व्याख्यान दिया था, जिसमें महोपदेशकजी ने वेदों से मूर्ति पूजा, श्राद्ध, पशुबलि और नरबलि तक सिद्ध करने का विफल प्रयत्न किया था। इससे समझदार हिंदुओं में बड़ी बेचेनी पेदा हो गई थी लेकिन हमारे व्याख्यानों से गुजराती भाइयों को बड़ा सन्तोष हुआ, और त्रिवेदीजी की बातें सुनकर जिनके दिलों में भ्रांति पैदा हो गई थी, वह दूर हो गई। उसी दिन रात्रि को यङ्गमेन आर्य समाज का जलसा तामिल हिंदू विद्यालय में श्री जगन्नाथ कुंजविहारी सिंह की प्रधानता में हुआ। इस उत्सव में भी मैंने त्रिवेदी महोदय की वेद-सम्बधी बेतुकी बातों का प्रतिवाद करते हुए बतलाया कि यदि ऋषि दयानंद अपने योग बल से वेद मंत्रों का गूढ़ाशय न प्रकट कर जाते और वेदों पर लगाई गई लांछनाओं को मिटाकर उसकी शुद्ध और सात्विक अर्थ संसार के सामने न रख जाते तो सच्ची बात तो यह है कि आज हम किसी और ही बाट के बटोही होते। अच्छा प्रभाव पड़ा। डाक्टर साहब ने नवयुवकों को वेदिक धर्म का संदेश सुनाया। अंत में ठाकुर प्रवीण सिंह के भजन के साथ उत्सव की समाप्ति हुई।

ता० २४ फरवरी को दरबन के निकट सिकोलेक में आर्य युवक मण्डल की ओर से सार्वजनिक सभा की योजना हुई थी। सभा भवन मनुष्यों से खचाखच भर गया था। श्री नयनाराज अध्यक्ष आसन पर आसीन थे। वेदिक धर्म के भिन्न २ अंगों पर डा० भगतराम जी का, ठा० प्रवीणसिंह का और मेरा अभिभाषण हुआ। उसी दिन शाम को केटो-मेनर के वेदिक धर्म जिज्ञासु सभा में हम लोगों के आर्यसमाज विषयक व्याख्यान हुए। व्याख्यान के बाद उक्त सभा के अधिकारियों ने अपनी सभा का नाम बदल कर आर्य समाज रख दिया।

इस समय नेटाल में वेदिक धर्म का अच्छा प्रचार हो रहा है। उधर पं० रामगोविन्द जी सनातन धर्म का प्रचार कर रहे हैं; किंतु यहां की परिस्थिति को देखते हुए पोराणिक रूढ़ियों का प्रचार करना मानो अपनी शक्ति और समय का अपव्यय करना है।

दरबन समाज का नवीन चुनाव

दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध नगर दरबन में आर्यसमाज को स्थापित हुये दो वर्ष बीत चुके किंतु अभी तक इसे जीवित-समाज कहलाने का सौभाग्य न प्राप्त हो सका। द्वितीय वर्ष के प्रारम्भ में दो तीन मास तक साप्ताहिक अधिवेशन हुए थे किंतु इधर कई माह से समाज निर्जीव सा हो रहा था। यह बात उत्साही आर्य सज्जनों को खटक रही थी कुछ लोगों ने समाज की अपनी व्यक्तिगत सम्पति समझ कर अन्य उत्साही आर्यों का प्रवेश वर्जित कर रखा था। इसका फल यह हुआ कि समाज पर अधिकांश गैर-आर्यसमाजी दखल जमा बैठे और सच्चे आर्यों के लिये समाज का दरवाजा बंद हो गया। खैर, इस बार के निर्वाचन में यह विरोध-भाव दूर करके सच्चे वेदिक धर्मावलम्बियों के लिये समाज का द्वार खोल दिया गया। डा० भगतराम जी ने समाज के पुनर्संगठन के लिए

मर्मस्पर्शी अपील की ; और मेरी ही अध्यक्षता में समाज का नवीन चुनाव हो गया। प्रधान श्री रणछोड़ भाई केसूर केपिटान चुने गए, संयुक्त मन्त्री श्री मक्का मुन्नू और श्री मेहरचन्द जी तथा कोषाध्यक्ष श्री दिवान चुने गये। इस चुनाव से कुछ छिद्रान्वेषियों को छोड़कर सभी को सन्तोष हुआ है। आशा है कि समाज के नवीन अधिकारी अपनी जिम्मेवारी का ख्याल करेंगे और ऐसी कोशिश करेंगे कि समाज एक लोकप्रिय और सजीव संस्था बन जावे।

दक्षिणीय अमेरिका में हिन्दुओं की दशा

डच गायना से पं० गिरजाशंकर शर्मा लिखते हैं :—

मैं लगभग डेढ़ साल से ट्रिनीडाड; डमरारा, सुरीनाम आदि स्थानों में भ्रमण कर रहा हूं। इन उपनिवेशों के हिन्दुओं को मैंने बड़ी शोचनीय दशा में पाया। प्रायः इन सभी स्थानों में भागवत की कथा का बड़ा प्रचार है। कथा तो धर्म की दृष्टि से कहलायी जाती है, परन्तु उसमें बड़ा अनर्थ होता है। लोग खूब शराब पीकर वहां पहुंचते हैं और मतवाले होकर आपस में बकझक करते तथा मारपीट भी कर लेते हैं। बात यह है कि इन उपनिवेशों में शराबका बहुत प्रचार है और चारों वर्णों के लोग उसे पाते हैं। माता पिता अपने सब बच्चों को भी शराब पीना सिखलाते हैं। ऐसे यज्ञों में उन्हीं का अधिक आदर होता है, जो शराब पीकर आते हैं, क्योंकि शराबी लोग नशे के झोंक में आकर आरती या व्यास गद्दी पर खूब पैसा चढ़ाते हैं! इन उपनिवेशों से दिनों दिन हिन्दू धर्म का ह्रास होता जा रहा है; और अगर यही हालत रही तो यहाँ से हिन्दुओं का नामोनिशान भी मिट जायगा। इन स्थानों में रहने वाले हिन्दुस्तानी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान "कुली साहब" कहलाते हैं। इस नाम में वे एक प्रकार का गौरव अनुभव करते हैं। भारत के हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को अपने प्रवासी भाइयों के सुधार की ओर भी कुछ ध्यान ध्यान देना चाहिये।

उपर्युक्त उपनिवेशों में बसने वाले हिन्दू भाइयों की अधोगति की ओर मैं बार २ आर्यसमाज का ध्यान आकर्षित करता रहा हूं; किन्तु खेद की बात है कि अभी तक मेरी प्रार्थनायें बहरे कान से सुनी गई। यह बात नहीं है कि आर्यसमाजी उपदेशक विदेश जाना ही पसन्द नहीं करते—अनेक प्रचारक विदेश जाने को तय्यार हैं किन्तु कहां? दक्षिण और पूर्व अफ्रिका, मोरिशस और फिजी, और बस। इससे आगे बढ़ने का कोई साहस नहीं करता। इन उपनिवेशों में आर्यसमाज का प्रचार हो चुका है और हो रहा है किंतु दक्षिण अमेरिका अन्तर्गत डमरेरा, सुरीनाम, ट्रिनीडाड, जमैका आदि की ओर जाने के लिए कोई कदम नहीं बढ़ाता। इसका कारण यह है कि वहां जंगली झाड़ियां काटकर क्षेत्र तैयार करना है, और यह काम हमारे प्रचारकों को कठिन सा जान पड़ता है। खैर, अभी मुझे यह सूचना मिली है कि महता जैमिनी जी फिजी से न्यूजीलैंड होते हुये गत पहली नवम्बर को वेस्ट इन्डीज़ की ओर प्रस्थान कर गये। यद्यपि महता जी वहां वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे, तो भी यह बात ध्यान से ओझल नहीं करना चाहिये कि वे एक स्वतंत्र उपदेशक हैं किसी सभाके अधीन नहीं हैं। अच्छा होता, यदि सार्वदेशिक सभा की ओर से कोई उपदेशक वहां जाता और सुसंगठित रूप से वैदिक धर्म का प्रचार करता।

———:o:———

उद्बोधिका सं० ३

———:o:———

(ले० बा० श्यामसुन्दरलाल जी बी० एल० एल० बी० मैनपुरी)

———:o:———

दूसरी मणिका में प्रशंसित प्रोफेसर जी ने जो बातें अपनी लड़की की रुग्णावस्था के विषय में लिखी हैं उनमें से निम्न ध्यान देने योग्य हैं जो नौ खंडों में दी गई हैं।

(१) ज्यों २ लड़की का इलाज किया गया त्यों २ उग्र लक्षणों का आविर्भाव भी होने लगा।

(२) इस इलाज में जो उपद्रव खड़े हुए वे उन्माद रोग के अतिरिक्त थे।

(३) 'पागलों' की साधारण दशा यही है कि वे अपने आप को भूल जाते हैं और का और समझने लगते हैं। उन्हें ऐसी घोर विस्मृति होती है कि वह अपनी शिक्षा सभ्यता शिष्टाचार स्वजनों से व्यवहार सभी कुछ भूल जाते हैं। इन्द्रियां ठीक काम नहीं करतीं। नाड़ी मन्डल का संयम बिगड़ जाता है। सामञ्जस्य नष्ट हो जाता है। इन वैज्ञानिक विचारों से आवेश की बात का किसी को ख्याल भी नहीं आता था।

(४) पागल की बात ऐसी ठिकाने की नहीं हो सकी। पागल अपने को कोई दूसरा मनुष्य भले ही कह ले उसका अभिनय भी भले ही करले परंतु अपनी बेजानी घटनाओं का ठीक २ वर्णन नहीं कर सकता। पागल तो पागल ही है कोई विद्वान् भी ऐसी घटनाओं का वर्णन नहीं कर सकता जिन का उसे पूर्व ज्ञान न हो चुका हो।......... इस युवती (चुरैल हो जाने वाली) को मैंने कभी २ (काशी में) देखा था वह मुझे पहचानती थी परन्तु मेरी लड़की शान्ता ने न उसे देखा था और न उसका कोई हाल जानती थी। तब तब भी यह हो सकता था कि लड़की ने उसका हाल किसी से सुन रक्खा हो और उसको दुहरा रही हो। इस बात की परीक्षा कठिन थी तुरन्त नहीं हो सकती थी। इस चुरैल हो जाने वाली औरत को हम पति पत्नी जानते थे (अन्तिम वाक्य के लिए देखो अगस्त का चांद का अंक पृ० ४२५ खंड २)।

(५) निदान लड़की के प्रलाप की बातें पहले उसकी मां को खटकीं क्योंकि पांच वर्ष पहिले वह अपनी छोटी लड़की के मुँह से ऐसा प्रलाप सुन चुकी थीं। मेरे चमार साईस ने कुछ ओझाई (उतारा वगैरह) की थी परन्तु इस प्रलाप और ओझाई का वृत्त प्रो० महोदय की धर्मपत्नी ने प्रो० महोदय को नहीं बताया था।

(६) रात्रि को लड़की की माता ने जगन्नाथ जी की पूजा में चढ़े हुये लोबान की धूनी दे रोगिणी से सब हाल पूछा और प्रातःकाल जब उसने प्रो० महोदय से यह सब समाचार सुनाया और कहा कि लड़की को प्रेत लगा है, तो उनको अति आश्चर्य हुआ।

(७) प्रो० महोदय २२-२३ वर्ष से प्रेत विषयक पाश्चात्य साहित्य पढ़ते रहे थे और प्रेत ग्रस्त की परीक्षा करने की बड़ी अभिलाषा रखते थे और प्रेतों के होने में अविश्वासी नहीं थे। परन्तु उनकी पत्नी को यह बात ज्ञात न थी। और

वह इस प्रकार की बात कहते डरती थीं। अन्त को हिम्मत करके उन्हों ने यह समाचार प्रो० महोदय को सुनाया।

(८) प्रश्नोत्तर होने और प्रलापकारक के अपने और अपने माता पिता का नाम बताने से निश्चय हो गया कि लड़की के ऊपर चुरैल है।

(९) दस बारह बरस से खाने का न खाना प्रकट करना, मक्खन के लिए चबाने को दांत न बतलाना, आमका अचार मांगना और कहना कि मैं चाट लूंगी, पहनी हुई नई साड़ी को फटा हुआ तार २ बतलाना, खद्दर, खरखा यहां तक कि महा० गान्धी तक के नाम को भूल जाना, रामायण आदि पढ़ी हुई पुस्तकों को यहां तक कि पढ़े होने का भी विस्मरण हो जाना, धूप आदि के जलाने पर "बस २ अब मैं चली जाऊंगी मुझे तंग न करो" चिल्लाना, और पिछवाड़े अपना घर बतलाना, परीक्षा में उस समय अन्धा और बहरा सिद्ध होना, प्रो० महोदय और डाक्टर का सब बल से लड़की का हाथ न उठा सकना, परंतु झूठ बोलना और ऐसा होने से इनकार करना, उस चुरैल का नाम लेकर पुकारने से बुरा मानना और पुनः सच बोलने की प्रतिज्ञा करना, सांस की तकलीफ ज्वर और सरसाम का मरते वक्त होना बतलाना, लड़की को औषधि न दी जावे तो अच्छी रहेगी ऐसा वाइदा करना, परन्तु अन्धी बहरी बना रहना और हाय कैसे खाऊं कैसे खाऊं" इत्यादि बातों को उत्तर में कहना, और इस तरह अपना मायाविनो रूप प्रकट करना, प्रेत झूठी प्रशंसा से खुश होते हैं इस गुर से "बेटी दौलतिया बड़ी सुन्दर थी" इत्यादि प्रशंसा सुन कर पीछे से सैकड़ों बातें बतला दीं जिनका जानने वालों ने एक २ बात का समर्थन किया (अंतकी बात के लिए देखो अगस्त का चांद) ये बातें थीं जिन्हों ने निश्चय करा दिया कि लड़की के ऊपर चुरैल है।

समाधान

मेरे विचार में जैसा कि मैं पहिले लिख चुका हूं कि इस भूत प्रेतादि की कल्पना को बड़ी कड़ी कसौटी से परखने की आवश्यकता है। इस कल्पना ने ही एक प्रकार से संसार के धार्मिक मस्तिष्क को दूषित कर रक्खा है। एक सच्चिदानन्द नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वेदों और उपनिषदों के वर्णित ब्रह्म के आदर्श को इसी भूत प्रेतादि की भावना ने संसार से लुप्तप्राय कर दिया था और अब भी सर्वथा संसार का पीछा नहीं छोड़ती है। ऐसे परीक्षणों में दृश्यों के तारतम्य को समझने के लिये कानून शहादत (साक्षित्व के परखने का कानून) के सिद्धांतों के अध्यन और व्यवहरित प्रकार से जानने की बड़ी आवश्यकता है। हम लोग नित्य प्रति अदालतों में देखते हैं कि बड़े २ विद्वान जिनको उक्त सिद्धांतों से परिचय नहीं है साधारण मनुष्यों की भाँति किसी लेख वा साक्षियों के बयान से फल निकालने में ऐसी गलती करते हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। कारण यह है कि उन्हों ने यह बात कभी विशेष भाँति पर नहीं विचारी कि अमुक बात की सिद्धि के लिए अमुक प्रमाण चाहिये वा अमुक प्रमाण जो पेश किया गया है अमुक फल पर हमको पहुंचाता है वा नहीं। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि उक्त सिद्धांतों के जानकार वकील बैरिस्टर, वा जज कभी गलती नहीं करते वा कर सकते। भूल से परे तो केवल परमात्मा ही है। भूल करना तो मनुष्य का मनुष्यपन समझा जाता है (To err is human) परन्तु जो लोग कानून शहादत के सिद्धांत नहीं जानते उनके भूल करने, और उन सिद्धांतों के जानकारों की भूल और भूल की मात्रा में भूमि अन्तरिक्ष का अंतर है।

मैं श्री० प्रो० महोदय के दिए हुए उनकी रोगिणी लड़की के परीक्षण में इसी उक्त प्रकार की

भूल पाता हूं। जो इस परीक्षण में निर्णायक बातें थीं उनको तो एक प्रकार से उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है अथवा उनके विषय में कुछ लिखा ही नहीं गया और जो बातें साधारण हैं, जिनका परीक्षा की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है उनमें लेख का बड़ा भाग समाप्त किया गया है और दृश्य की तारतम्यता (वास्तविकता) तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं किया गया है किंतु ऊपरी बातों से ही संतुष्ट होकर भुत प्रेत बाधा के परीक्षण अभीष्ट की सिद्ध हो गई इस भावना को अपने सरल हृदय में स्थान दे दिया है। मेरे पत्र के उत्तर में श्री प्रो० महोदय ने लिखा है कि उन्हों ने कानून का और मुख्य कर कानून सहादत का दो वर्ष भली भांति अध्ययन किया और विकालत का इरादा रखते थे। और उनके पिता भी वकील थे। परंतु प्रो० महोदय क्षमा करें उपरोक्त परीक्षण में तो उससे बहुत कम काम लिया गया प्रतीत होता है और इसका कारण शायद कानून शहादत को व्यवहरित करने के अवसर की अप्राप्ति हो।

प्रथम तो इस परीक्षण के विषय में जो कुछ प्रशं० महोदय ने लिखा है उस सब को इस दृष्टि से देखकर कि उसमें कोई बात उनकी लड़की वा उनकी ओर से बनावट की नहीं थी, मैं सम्पूर्ण घटना पर दृष्टि डालना चाहता हूं। मुझे आशा है कि उपरोक्त 'बनावट' के शब्द से प्रशं० प्रो० वा अन्य कोई रुष्ट नहीं होंगे क्योंकि अपने लेख के दूसरे स्थल पर स्वयं प्रो० महोदय ने लिखा है कि संसार में बड़ी २ धूर्तता होती हैं। तिल को पहाड़ के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और यदि मैं ऐसे आवश्यक प्रश्न पर विचार करने में किसी की रूरियायत न करूं तो कोई कटाक्ष की बात नहीं कही जा सकती।

प्रशं० लेखक ने स्वयं लिखा है [देखो उपरोक्त चतुर्थ खंड] कि पागल अपने को कोई दूसरा मनुष्य भले ही समझ लें उसका अभिनय भी भले ही करले परन्तु अपनी बेजानी घटनाओं का ठीक २ वर्णन नहीं कर सकता .... जिनका उसको पूर्व ज्ञान न हो चुका हो .... मेरी लड़की शान्ता ने उस युवती (जो प्रशंशित महोदय की राय में उसके ऊपर की चुरैल थी) को कभी नहीं देखा था। हो सकता था कि उसने वह सब हाल सुन रक्खा हो और उसी को दुहरा रही हो। इस बात की परीक्षा कठिन थी तुरंत नहीं हो सकती थी।

मेरी राय में तो प्रशं० प्रो० का उपरोक्त अंतिम भाव वैज्ञानिक और निर्णय करने का एक मात्र साधन था क्योंकि यदि लड़की को किसी न किसी प्रकार से उपरोक्त युवती का हाल विदित हो गया था तो श्री० प्रोफेसर महोदय के दिए हुये परीक्षण और प्रेत बाधा के निष्कर्ष में कोई सार वस्तु शेष नहीं रहती। परन्तु अब तक के प्रशं० महो० के लेखों में किंचित्मात्र इस विषय में नहीं लिखा गया है कि उन्होंने अमुक २ अन्वेषण कर के इसको निश्चित रूप से जान लिया कि उनकी लड़की ने उस (चुरैल हो जाने वाली) युवती वा उसके मरण समय के रोग और अवस्था का कोई वृत्तान्त दूसरों से नहीं सुना और न सुनने का कोई अवसर ही प्राप्त था। ऐसी आवश्यक बात जो स्वयं प्रशं० लेखक महोदय को खटकी और उसके विषय में कोई अन्वेषण न करना और बिना अन्वेषण के मान लेना कि उन की लड़की ने प्रलाप में प्रकट की गई बातें कभी किसी से नहीं सुनी, कितने आश्चर्य में डालता और प्रशं० लेखक के सरल हृदय की सूचना देता है। यह बात पाठकगण किञ्चित बिचार से जान लेंगे। यही नहीं किन्तु मैं स्वयं प्रशं० महो० के लेख तथा उस सूचना से जो मैंने पत्र द्वारा उन से प्राप्त की है नीचे दिखलाउंगा कि लड़की को उस युवती [जो चुरैल बतलाई जाती] के पूरे समाचार मिल

ने का अवसर प्राप्त था और निम्न हेतुओं से अनुमान चाहता है कि वह उस युवती के सम्पूर्ण समाचारों को जानती थी ; यथा

(अ) प्रशंसित प्रो० तथा उनकी धर्मपत्नी दोनों इस युवती को जानते थे (देखो उपरोक्त खंड ४ का अन्तिम भाग) ऐसी दशा में यह असम्भव सी बात है कि लड़की की माता ने उसका वृत्तान्त लड़की को न बतलाया हो।

(क) चुरैल बनने वाली युवती की चाची का आना जाना प्रसंशित महोदय के यहां अवश्य था अन्यथा यह सम्भव नहीं था कि वह आम का अचार लड़की को खाने के लिए दे जाती। ऐसी चीजों के लेने देने का व्यवहार उसी दशा में हो सकता जब वह चाची पहले से आती जाती हो। यह साधारण रिवाज़ है कि जब औरतें औरतों में जाती हैं तो वह सब प्रकार की बातें कहा करती है किन्तु विशेषतः तो उनके पास ऐसी ही बातों के अतिरिक्त बहुत न्यून कहने योग्य अन्य बातों का स्टौक (संग्रह) होता है अतएव बिचार करने से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता है कि इस चाची के द्वारा लड़की की मां भी उस युवती के चरित्र से परिचित हो चुकी थी और उनसे उनकी लड़की। अथवा इस चाची ने लड़की से साक्षात प्रकार से युवती का चरित्र अवश्य कहा होगा और अधिकतर सम्भव यह है कि चमार साईस ओझा ने जो उस चाची आदि सभी से भली भांति परिचित होगा इस चुरैल का हाल चाचा और और ओझाई द्वारा पहले हो जान लिया होगा और लड़की की मां को शिष्य बना कर सम्पूर्ण समाचार विदित करा दिया होगा (सूरज को देखने के लिए दीपक की आवश्यकता नहीं है) जब ओझा जी घर पर ही थे तो चुरैल का चरित्र कैसे छिप सकता था।

(ख) प्रशं० महो० की दो हुई घटना १९८१वि० अथवा १९२४ ई० की है और लड़की की छोटी बहिन को यही प्रेतबाधा एक वर्ष पहिले हो चुकी थी (क्योंकि उस घटना को जौलाई २८ ई० में पांच वर्ष हो चुके थे) अर्थात् १९२३ ई० में हुई थी और उस में लड़की की माता ने अपने चमार साईस से छिप कर ओझाई (उतारा पतारा) भी कराई थी और उसका प्रलाप भी लड़की माता सुन चुकी थी। इस सब से निष्कर्ष यह निकलता है कि लड़की की माता उन सब बातों को जो अब प्रलाप में लिखी गई हैं पहले से जानती थीं। चमार साईस ओझाई करने वाला इन बातों के प्रलाप कारकसे पूछने और उन के उत्तर लेने और लड़की की माता को सुनाने में साधारणतया अधिक दक्ष ख्याल किया जा सकता है। यदि प्रशं० महो० को लड़की की माता ने वह सब बातें न बतलाई हों तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि भय के कारण वह सम्पूर्ण घटना को दीर्घकाल तक उनसे छिपाये रही और अधिकतर सम्भव है कि यह बड़ी लड़की शांता भी उस समय अविवाहित दशा में माता पिता के ही घर पर थी, क्योंकि शांता के विवाह का जौ० सन २३ में होना प्रशं० लेखक के पत्र से ज्ञात हुआ है। और इस ओझाई और अपनी छोटी बहिन के प्रलाप की सारी बातों को (उदाहृत) ड्रामा के रूप में पहले से ही जान चुकी थी। अथवा यदि उक्त घटना जौ० २३ ई० से पहिले न हुई हो किन्तु पश्चात् की हो और विवाह के पश्चात शांता कुछ दिवस को ससुराल चली गई हो और उस की अनुपस्थिति में उक्त घटना हुई हो तो वहां से लौट कर इस ताजी घटना को भली भांति अपनी माता आदि से सुन लिया होगा। अतएव इस मणिका में दिया हुआ सम्पूर्ण परीक्षण स्वयं प्रशं० प्रो० को लिखी हुई बातों से सारहीन और आधार विहीन सिद्ध होता है। परन्तु टुक निम्न परिस्थिति पर भी विचार

करना चाहिये।

(१) हिस्टीरिया का रोग प्रायः १६ से २५ वर्ष की अवस्था में हुआ करता है (देखो डाक्टर कार्टर की उपरोक्त पुस्तक वा अन्य कोई वैद्यक ग्रन्थ) और इस रोगणी लड़की की अवस्था १६२४ ई० में जब की कि घटना है लगभग १६ वर्ष की थी क्योंकि उस का जन्म प्रशं० प्रो० के पत्र से २२।५।०८ ज्ञात हुआ है।

(२) स्त्रियां स्वभाव से ही भीरु होती हैं (देखो प्रथम मणिका का प्रथम वाक्य) यह लड़की कोई विशेष पढ़ी लिखी नहीं है, लग भग हिन्दी मिडिल की योग्यता रखती है। लड़की की मां और नानी उस से भी कम पढ़ी लिखी है (प्रो० महोदय के पत्र द्वारा) जब लड़की की मां भूत प्रेतादि का विश्वास रखती हैं और छिप २ कर ओझाई कराती हैं तो इस लड़की का भीरु होना स्वाभाविक सी बात है।

(३) जब प्रो० महोदय अपनी पत्नी सहित प्रयाग को गये तो केवल लड़की की नानी को लड़की की रक्षा और निरीक्षण के लिए छोड़ गए। प्रशंसित नानी एक तो वृद्धा (५८ वर्ष) और द्वितीय ऐसी जिन को आंखों से कम सूझना है (पत्र प्रो०) अब जब दो उक्त प्रकार की भीरु व्यक्तियां घर पर हों तो यह बात प्रत्यक्ष है कि उनकी भीरुता को तिरोहित रखने का कोई साधन नहीं था। नानी की योग्यता और अवस्था दोनों भीरुता को बढाने वाले ही थे। यदि उस समय घर पर वह ओझा साहिब साईस रह गये हों तब इन भीरु स्त्रियों के मध्य में भूत प्रेतादि वा चुरैलों के घरमें नृत्य करने का पूरा अवसर था (यह बात मैंने नहीं पूछ पाई कि उस समय वह साईस भी घर पर था वा नहीं)

(४) चुरैल की चाची इस समय में अवश्य ही आती जाती रही क्योंकि लड़की को आम का अचार तो खाने को देही गई थी और लड़की को उसकी रुचि भी अधिक थी।

(५) हिस्टीरिया रोग में जहां और कारण लिखे हैं वहां भय का उत्पन्न होना भी लिखा है। [देखो चरक सुश्रुत तथा उपरोक्त डा० कार्टर का पुस्तक] अतएव हिस्टीरिया रोग के उत्पन्न करने के लिए प्रशं० प्रो० पूरा अवसर छोड़ गये थे और लड़कीको उस चुरैल के व्यक्तित्वका अभिनय और उसके चरित्रों का अपने भीतर आरोपण करने और तद्रूप प्रतीत करने का पूरा अवसर था।

(६) लड़की उस समय लगभग छः मास की गर्भवती भी थी [प्रो० महोदय के पत्र द्वारा) अतएव ऐसे उपरोक्त भय में चुरैल की घटना ने विशेष भांति में लड़की के चित्त पर प्रभाव डाला होगा। और एक प्रकार से सुनसान घर में अगर कोई ख़याल उग्र रूप से आता होगा तो इसी पिछवाड़े का जहां की वह घटना है और उस घटना का। अगर पाठकगण अपने आप को उपरोक्त परिस्थित में लड़की के स्थान पर अपने आपको जहां तक हो सकें रखलें तो सरलतया अनुभव कर सकते हैं कि वह लड़की इन सम्पूर्ण दिवसों में इस चुरैल के ही मानों श्रवण मनन और निदध्यासन से किस तरह पूरित हो सकती है तत्पश्चात अभिनय द्वारा किस प्रकार अपने आपको तद्रूप समझे और प्रकट कर सकती है। मुझे शोक है कि प्रशं० महोदय ने कहीं पर यह प्रकट नहीं किया कि उनके प्रयाग जाने के दिनों में लड़की की दशा किस प्रकार बिगड़ी क्या २ औषधि उपचार किया गया इत्यादि। क्यों कि नानी से तो सब वृतान्त ज्ञात ही हुआ होगा। इस वृतांत से इस सारे दृश्य पर बहुत प्रकाश पड़ सकता था, यह वृत्त मैंने पत्र द्वारा भी नहीं पूछ पाया।

अतएव मैं अपने प्रशंसित प्रो०जी से निवेदन करूंगा कि वह पुनः विचार करें और ऐसी घटनाओं को शीघ्रता से प्रेत बाधा का रूप देकर कम से कम धूर्तों की धूर्तता के लिये (जिस के बिषय में स्वय उन्हों ने बहुत कुछ लिखा है) परिवर्द्धनका क्षेत्र उत्पन्न न करें। आप भले ही कहें कि लोग हर कोने अन्तर में,हर अंधेरी जगह में,हर गली कूचे में, प्रेतों का शुबह करें अथवा चिकित्सकों का काम ओझा से लें ऐसा आप का अभिप्राय नहीं है परन्तु आप कोई ऐसी विभाजक रेखा नहीं खींच सकते जिससे सर्व साधारण अभिज्ञ हो सकें और ऐसा करने से पृथक रहें । किन्तु जो धूर्त्तता इस प्रकार की स्वयम् आप के शब्दों में बढ़ी है वह केवल इस कारण से बढ़ी है कि यह मिथ्या विचार दूर नहीं हो पाता कि कोई न कोई विद्वान प्रशं० महो० जी क सदृश इस प्रकार के लेख देकर उन को पुनः उत्तेजित कर देते हैं। परंतु जब से मुझ को यह ज्ञात हुआ है कि प्रशं० प्रो० तथा उन की धर्मपत्नी नियमानुसार प्रेत उतारने में लगे हैं उस समय से मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही है। भय है कि इस क्रिया और ओझाई के काम के अधिक होने पर प्रशं० प्रो० जरनेलिज्म में योग देने से न रुक जावें।

अब मैं थोड़ी २ उपरोक्त खण्डों के विषय में जो मैंने एक से नौ तक की संख्या में दिये हैं समालोचना करना उचित समझता हूं।

(क्रमशः)

---:o:---

दयानन्द ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया

---:o:---

(ले० श्री० पं० बन्शीधर जी पाठक)

---:o:---

सा हसी नैपोलियन बोनापार्ट की तो यह हसरत भरी आशा स्यात् उसके भाव और शब्दों में ही बिलीन हो गई कि— 'मेरा बश चले तो असम्भव शब्द को कोष से ही निकाल दूं' – परन्तु तपस्वी दयानन्द ने अपने तपोबल के प्रभाव से संसार के वातावरण.........में वह परिवर्तन किया कि असम्भव को सम्भव बनाया ही नहीं किन्तु करके दिखा दिया।

अब से ठीक उन्तीस या तीस बरस की बात है इसी ऋतु में सायं काल के समय श्री० पं० विष्णु लाल एम, ए (जो इस समय पेंशनर सब जज हैं) मुंसिफ बस्ती-गोरखपुर तथा श्री० बा० लाल गोपाल जी बनर्जी एम,ए, एल, एल बी मुंसिफ (जो इस समय जस्टिस हाई कोर्ट इलाहाबाद के जज हैं) बस्ती के साथ मैं भी वायु सेवन कर आ रहा था।ज्यों ही हम तीनों एक कानों नदी के पास आये तो कुछ कोलाहल सा सुन कर, बनर्जी महोदय ने पूछा कि यह क्या हो रहा है? मैंने कहा कि पुलिस लाइन के सूबेदार तथा सिपाही यहाँ प्रति दिन सब मिलकर , संध्या किया करते हैं । परन्तु जस्टिस साहिब, को इस पर विश्वास न हुआ उन्होंने कहा कि नहीं फालगुन के दिन निकट हैं ये लोग अपनी सरविया भाषा में बिरहा (राग) अथवा कबीर गारहे होंगे। मैंने

फिर कहा कि नहीं भगवन्! ये लोग संध्या ही कर रहे हैं। इतने में हम और भी निकट आगये और उनके ऊपर खड़े होकर उनकी सारी संध्या विधि देखते रहे :—

संध्या के पश्चात् सर्रावये सिपाहियों ने मिल कर एक घर में आर्ती गाई। इस घटना वैचित्र्य का बनर्जी साहिब पर उस समय बड़ा प्रभाव पड़ा और वे आश्चर्य से चकित हो कहनेलगे कि मैं अपनी अवस्था में नई और अनहोनी बात देख रहा हूं; इस फ़िर्के के लोगों पर किसका ऐसा प्रभाव पड़ा जिसने कि दरसल असम्भवको सम्भव कर दिखाया (जस्टिस बनर्जी यद्यपि बंगाली हैं परन्तु आपकी भाषा लखनऊ वालों से कहीं वढ़ कर है)

पं० विष्णु लालजी ने उत्तर दिया—यह सब कुछ प्रभाव तपस्वी दयानन्द का ही है, जिन्होंने कि तपोबल से असम्भव को सम्भव कर दिखाया।

असम्भव में सम्भव की झलक

बाल क्रीड़ा में दयानन्द—एक आर्य परिवार के बच्चे मिलकर कुछ खेल खेल रहे हैं- कुछ लोग जाते हुये इन बालकों की क्रीड़ा देखने को टिक गये। बच्चों ने अपनी समझ और शक्त्यनुसार एक गड्ढा खोद खोद, उसमें इधर उधर से सींक और तृण बटोर कर, भर दिये। एक पानी भरी कटोरी में चम्मच डोब कर, और दूसरा शिशु पत्त पर धरी हुई मिट्टी उठा कर, अपनी तुतलाती हुई मधुभरी सुहावनी वाणी से 'ओम् – छन्नोदेबी लभिष्टये, छूर्यो धोसी छ्वाहा वा थ्वाहा (इन्हें इसकी क्या परवाह कि- कौन मंत्र कहां का और कैसा है! ये तो अपने समय के मानो 'बालखिल्य ऋषि ही थे) बोल कर अग्नि होत्र कर रहे हैं पास खड़े हुये सज्जन इस आश्चर्यमयी क्रीड़ा को देख कह उठे- भला यह अवस्था और यह सतयुग के खेल। यह अनहोनी किसने कर दिखाई! उत्तर मिलता है- ऋषि दयानन्द ने। जिसने बाल क्रीड़ा का नकशा बदल असम्भव में सम्भव की झांकी करा दी इस दर्शक समुदाय में उल्लेख्य योग्य दिवंगत भक्तराज बा० बलदेव सिंह जो देहरादून निवासी थे।

ऋषि दयानन्द की निर्भीकता

भले ही यह घटना किसी जीवन चरित्र के लेखकों के सुनने से रह गई हो परन्तु मुझे मेरे बाल समय की बात भले प्रकार आज को सों याद है-जिसको कि पूर्व ४५।४६ वर्ष से भी अब कुछ अधिक हो दिन बीते मुझको उससमय तकका पता था कि आर्य और आर्यसमाज किसे कहते हैं-मैं अपने श्री पूज्यपिता (दिवंगत)जी के साथ अतरौली (अलीगढ़) से बाहर (बुलन्दशहर) 'जो बड़ा प्राचीन तथा उस समय गंगातट पर प्रसिद्ध एवं मनोहर नगर था, जाया करता था, तो वहां के वृद्ध घटवालियों से इस दन्तकथा को कई बेर सुना कि —"दयानन्द नाम के एक साधु के आगे तहसीलदार की कौन कहे कलक्कटर भी पानी हो गये, इस दन्तकथा को वे इस प्रकार सुनाते थे कि—"अनूपशहर की तहसील में लाला बाबू की कोठी में प्रायः बड़े बड़े हाकिम आ कर ठहरा करते थे क्योंकि उस समय तक वहां कोई सरकारी डाक बंगला या निरीक्षण ·········गृह न बना था उस समय वहां एक मुसलमान तहसीलदार था—स्वामी जी उसी कोठी में जो गंगातट पर है ठहरे हुए थे कि वहां के साहिब कलक्टर तहसील का दौरा करने को आने वाले थे। तहसीलदार ने नाजिर को हुक्म दिया कि कोठी की सफाई करा दो। नाजिर ने जाकर देखा तो वहां स्वामी जी ठहरे हुए हैं--स्वामी जी से सब हाल कह दिया स्वामी जी ने कहा कि यह कोठी जिस को है यदि वह हम से कहे, तो हम तभी खाली कर देंगे - बात यहां तक बढ़ी कि तहसीलदार ने स्वयं

आकर, स्वामी जी से कोठी खाली करने को कहा परन्तु स्वामी जी ने वही उत्तर उनको भी दिया। सुनते हैं- लाला बाबू के कारिन्दे स्वामी जी के भक्त थे और कोई यह भी कहते हैं कि वे उन दिनों में वहां पर मोजूद भी न थे—जो कुछ भी हो स्वामी जी को और लोगों ने भी डराया कि आप ऐसी हठ न करें, हाकिमों का मामला है--न जाने क्या करदें। श्री स्वामी जी ने उनको भी वही निर्भीक भाव से उत्तर दिया कि कोठी तहसीलदार की नहीं प्रत्युत लाला बाबू की है—निदान कोठी खाली न हुई और साहिब कलक्टर के ठहराने का प्रबन्ध तहसीलदार ने तहसील के ऊपर वाले कमरे में किया, परन्तु साथ ही यह भी कह दिया कि—क्या मुजायक़ा है साहिब बहादुर के आने पर इस फकीर की ज़िद का सारा मजा न चखवा दिया तो मेरी तहसीलदारी ही क्या......। जहां तक मुझे याद रहा साहिब कलक्टर का नाम 'कुरुकशेंक' था जो अपने समय का बड़ा सख्त और तुर्श मिज़ाज हाकिम कहा जाता था। (परन्तु प्रजा के लिए बहुत भला था) अब वह समय आगया जबकि साहिब कलक्टर की अगवानी के लिए तहसीलदार, पुलिस दरोगा तथा शहर के रईस इत्यादि भी कई मील आगे से लेने को चले। पड़ाव पर सा० कलक्टर को तहसीलदार ने यह सारा हाल सुना दिया कि—हुजूर हिंदुओं का एक साधु बड़ा ही सरकश है, जिसके दिलमें हुजूर का भी कोई खौफ, नहीं......। किसी ने सच कहा है कि--सिखाने से दिवालें भी हिल जाती हैं, सा० कलक्टर भी तहसीलदार के भरे पर चढ़ ही तो गये, और अब वे बजाय तहसीलपर जाने के सीधे उसी कोठी पर पहुंचे। पिछलगुआ भी अपनी गाड़ी, घोड़े दौड़ाते हुए सा० कलक्टर के अनुगामी बने। परन्तु रास्ते का दृश्य विचित्र था, थानेदार बड़े सौम्य स्वभाव के थे, अकड़े हुए तहसीलदार को बार २ मूंछें मरोड़ते देख, मन ही मन कुढ़ रहे थे, किंतु कभी २ कह उठते थे कि-- साधु और वह भी पढ़े लिखे साधु को ऐसी हठ करना उचित नहीं, हाकिम स्वभाव का तेज है, कहीं हाथ उठा दिया तो बड़ा गजब हो जायगा। इधर तहसीलदार अपने साथियों की ओर देख २ कर, मानो तो इशारों ही में बातें कर रहा था कि आज उस साधु का सारा घमंड चूर करादूंगा, और बता दूंगा कि हुक्काम की हुक्मअदूली का यह मजा मिलता है। एक शान की आन में घोड़े वहां पहुंचे और सा० कलक्टर घोड़े से उतर कर, हंटर हाथ ही में लिए खट खट करते हुए पिछलगुओं के साथ कोठी में वहां पहुंचे, जहां कि—तपस्वी ऋषि निर्भीक भावेन वीरासन जमाये चारों ओर पंडित मंडली के मध्य केवल एक कौपीन बांधे देदीप्यमान हो रहे थे। साहिब बहादुर ज्यों ही वहां पहुंचे कि—न जाने किस विद्युत् शक्ति ने वहां काम किया कि—दहने हाथ का हंटर बायें हाथ में कब आगया और दहने हाथ ने ताजीम (अभिवादन) करने के लिए युरोपियन सभ्यता के अनुसार शिरके टोप को उतार साहिब बहादुर से अभिवादन करा दिया। इतना होना था कि--दम्भी तहसीलदार के हाव भाव कह उठे कि खुदाया ये कैसी अनहोनी हो गई? यह तो दरअसल नामुमकिन मुमकिन ही हो गया—खड़ी हुई जनता के भावों ने भी उसी समय उत्तर दिया। निर्भीक तथा तपस्वी दयानन्द ने लोग यहां तक कह उठे—

सुधा वृष्टि भई दोउ दल माहीं।
जिए भालु कपि निशिचर नाहीं॥

भाई! हुई होगी कभी राम रावण के समय में यह बात, परन्तु हमतो यहां पर स्वयं अपनी आंखों से देख रहे हैं। बिचारे तहसीलदार को पसीना आगया, और दूसरी ओर आनंद छा गया! ऋषि दयानन्द ने उसी समय अपने सेव-

कों से कहा कि साहिब बहादुर के लिए कुर्सी लाओ। सभ्य साहिब ने कहा कि नहीं बाबा हम इसी (दूसरी) चौकीपर ही बैठ जायगा। सभ्यता की मूर्ति दयानन्द ने कैसे अच्छे हेतु से साहिब का सत्कार किया। नहीं आप कुर्सी पर विराजिए, प्रथम तो आप हमारे पाहुने (विदेश के कारण) दूसरे आप हमारे राजा के प्रतिनिधि... स्वरूप और तीसरे आपके वस्त्र भी (पतलून) ऐसे हैं कि जिनसे आपको नीचे तख्त आदि पर बैठने में अड़चन होगी। सा० कलक्टर ने पूछा कि आपको कोई तकलीफ तो नहीं? स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि जहां आप जैसे उदार चरित न्यायशील तथा कर्तव्य परायण हाकिम हों वहां हमको क्या किसी को भी कष्ट नहीं होना चाहिए। निदान कुछ ही क्षण में सा० कलक्टर बहादुर वहां से विदा हुए।

इधर इस विचारे तहसीलदार की दशा को भी कुछ निहार लीजिए। न हुआ कोई फोटोग्राफर और जो अब और तब में कुछ अन्तर बता सकता। तहसीलदार मनही मन कहने लगा कि--बेशक यह कोई पहुंचा हुआ साधु है, तभी तो इसमें इतनी बेखौफगी है। चलते हुए माफी भरे शब्दों में तहसीलदार ने कहा कि बाबा साहिब! मेरी खता को माफ करना, मैंने आपके समझने में बड़ी गलती खाई थी, आप तो दरअसल औलिया हैं......।

स्वामी जी ने प्रसन्न वदन उत्तर दिया कि भाई मेरी दृष्टि में तो तुम तब भी मेरे भाई थे और अब भी वैसे ही हो, तुमने अपना कर्तव्य किया और मैंने अपना कर्तव्य किया। मेरा धर्म तो मुझको 'अद्रोहः सर्व भूतानाम्' का पाठ पढ़ाता है। मेरा वेद तो प्राणीमात्र के प्रति, मित्र की दृष्टि रखना सिखाता है। 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' इत्यादि। इस घटना की सारे शहर की कौन कहे आस पास के गांवों तक में बिजली की तरह खबर फैल गई। लोग कहने लगे कि वास्तविक स्वा० दयानन्द जी बड़े निडर हैं। पढ़ी लिखी जनता ने इसके भीतर दीर्घ दृष्ट्या भविष्य को छिपा देख, कह दिया कि भाई! तेजस्वी दयानन्द असम्भव को सम्भव कर दिखाने आया है।

॥ इति ॥

———:o:———

द्यूत निन्दा और कृषि प्रशंसा

———:o:———

(लेखक—श्री चिदानन्द जी पाणिनीयाचार्य्य)

———:o:———

प्रातःकाल का समय है, सम्पूर्ण नगर वासी अपने इष्ट मित्रों तथा निज परिवार के साथ "वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्" इस सदुक्ति का उपयोग करते हुए वायु सेवन कर रहे हैं। क्या ही सुहावना समय है, पृथ्वी देवी बसंती चादर ओढ़ रही हैं उसके ऊपर बालरवि की सप्तरंगी किरणें पड़ कर प्राकृत शोभा को और बढ़ा रही हैं। मानो किसी बसंती रंग के चादरपर प्रत्येक क्षण में अनेकों प्रकार के बेल बूटे काढ़े जा

रहे हों। कहीं आम्र मंजरी का रसास्वादन करते हुए कोकिल विपंची (वीणा) के पंचमराग अलाप रहे हैं।

एक ओर से मधुर ध्वनि आरही है 'एक लगावे सौ पावे" "एक लगावे सौ पावे" जनता भी उसी ओर आकृष्ट हो कर जा रही है। कुछ लोग खड़े हुए पीताम्बरधारी गुरु जी का उपदेश सुन रहे हैं वही महात्मा निज मुखारबिंद से "एक लगावे सौ पावें"की ध्वनिसे नगर वासियोंके कर्ण कुहर को पावन कर रहे हैं। महात्मा का शरीर जैसे पूर्ण ब्रह्मचर्य से युक्त होकर बाल मरीचिमाली की भांति देदीप्यमान हो रहा है वैसे ही उनकी वाणी से ब्रह्मतेज अविर्भूत हो रहा है वे उपदेश करते हुए बोले--

अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व-
वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया-
तन्मे विचष्टे सवितायमर्य्यः॥ ऋग्वेदः

ऐ! कितव! (ज्वारियो!) सुनो! वेद भगवान् स्पष्ट आज्ञा दे रहे हैं कि "अक्षैर्मादीव्यः" जुआमत खेलो। यदि तुम्हारी इच्छा जुआ खेलने की होवे तो सब के स्वामी परमात्मा से खेलो जिसके दरबार में कपट द्यूत नहीं होता अपितु "एक लगाने पर सौ मिलता है उसके लिए वेद आज्ञा देता है कि "कृषिमित्कृषस्व" खेती करो। यदि किसी को आशंका हो कि यहां द्यूत क्रीड़ा में ज्वारी के पास बहुत सा धन आता है तो उधर परमात्मा के साथ भूमि रूपी पासें के ऊपर अन्न की बाजी लगाकर खेलने से एकके बदले सौ और सौ के बदले सहस्त्र लक्ष अन्न मिलेंगे। और "एक लगावे सौ पावै" की लोकोक्ति भी चरितार्थ होगी।

आगे वेद आदेश करता है कि "वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः" प्राप्त हुए में बहुत मानता हुआ अर्थात् सन्तोष करके रमस्व (क्रीड़ा करो) अर्थात् बारम्बार ऐसी द्यूत क्रीड़ा करो।

इस क्रीड़ा का फलभी सुनो। "तत्र गावः, उस परमात्मा से प्राप्त अन्न में गो आदि पशु और "तत्र जाया" उस अन्न की बदौलत तुम्हारे कलत्र आदि कुटुम्ब की स्थितिः होगी। इसी "तत्र गावस्तत्रजाया" वाक्य से यह भी अर्थ प्रतीत होता है कि जुआमें गो आदि सम्पत्ति तथा स्त्री आदि परिवार तक नष्ट हो जाता है कि जिस से अनेक प्रकार की लोक निन्दा और कष्ट सहन करना पड़ता है। जैसे राजा नल के कारण उनकी धर्मपत्नी की दुर्गति हुई थी। और प्रत्यक्षदर्शी महात्मा विदुर जी के।

द्यूतमेतत् पुराकाले, दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥
उद्योगपर्व;

अर्थः—(पुराकाल) प्राचीन युग में (एतत्) यह (द्यूतम्) जुआ (नृणाम) मनुष्यों के मध्य (वैरकरम्) कलहोत्पादक (दृष्टम्) देखा गया है (तस्मात्) इस लिए (बुद्धिमान्) बुद्धिमान् मनुष्य (हास्यार्थम्) हंसी के लिए अर्थात् दिल बहलाने के लिए (आपि) भी (धूतम्) जुए का (नसेवेत) आश्रय न लेवे। इस वाक्य का अनादर करके युधिष्ठर और दुर्योधन ने जुआ खेला। जिसके परिणाम में महाभारत का भयंकर संग्राम हुआ और अनेकों प्रकार के कलह उत्पन्न हुए। कहां तक वर्णन किया जावे?

न पुत्रः पितरंजज्ञे, न पिता पुत्रमौरसम्, न भ्राता भ्रातरंतत्र स्वस्त्रीयोनचमातुलम्। भीष्मपर्व

उस भयंकर संग्राम में पुत्रने पिता को नहीं पहचाना, न पिताने और सपुत्र को, न भाई भाई को, न भानजे ने मामा को, क्याही निर्दयता का

समय था, जिस भीष्मपितामह ने अर्जुन को कभी गोद में लेकर धूल झाड़ कर प्यार किया था आज वही अपने पौत्र विजय के हाथ बाणों से बींधा जा रहा है । हाहन्त ? जिस द्रोण ने धृष्टद्युम्न को शस्त्र पकड़ना सिखलाया आज उसी प्रियशिष्य के हाथों तीक्ष्ण तलवार से उसी आचार्य का शीश काटा जा रहा है । हा मातुल ! शल्य ! क्या इसी लिए अपने भानजे युधिष्ठिर को देखने आए थे कि उसी के कर मुक्ति शक्ति (बर्छी) से तुम्हारी मृत्यु हो । शोक ! शोक ! महा शोक ! "अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः" आगे चारों वेद और पीछे बाण सहित धनुष रखता हूं आचार्य द्रोण के इस वाक्य की छटा विलुप्त हो गई । हत्यारे द्यूत ! तेरा सत्यानाश हो जावे क्या तुझे हमारे भारत के ही ऊपर वज्र पात करना था ? प्रियबन्धुओ ! इस द्यूत की निन्दा कहां तक की जावें इस हत्यारे ने भारतही नहीं सारे संसार का ऐश्वर्य मिट्टी में मिला दिया । इसी कारण (अयम्) सर्वान्तर्यामी (सविता) सर्वोत्पादक [अर्य) स्वामी (मे) हमारे लिए (तत्) उपरोक्त (विचष्टे) आज्ञा देते हैं । अर्थात् जुआ मत खेलो बस खेती करो उसी खेती से प्राप्त अन्न में संतोष करके अपने गो आदि पशुओं तथा अपने परिवार का पालन करो । तभी तुम्हारा कल्याण होगा ।

सन्यासी के उपदेश को सुनकर लोग "अक्षैर्मादीव्यः ,, इत्यादि का पाठ करते हुए अपने २ गृह की ओर चले गए ।

——:o:——

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का योगबल

——:o:——

(ले०—पं० शिवशर्मा महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत)

——o:——

यद्यपि स्वामी जी महाराज के योगबल के विषय में संसार में बहुत कुछ चर्चा फैली हुई है, परन्तु फिर भी नई नई खोजें इस विषय में हो रही हैं । श्री चौ० अनूपसिंह जी रईस नहटौर (बिजनौर) ने जो अद्भुत वर्णन किया वह श्री स्वामी जी महाराज के योगबल की विशेष पुष्टि करता है । प्रशंसित चौधरी जी ने बताया कि 'मेरा आना जाना मुज़फ़्फ़र नगर में अधिक रहता था । मैं जब वहां पर जाता तो सदैव आर्यसमाज में ही ठहरा करता था । एक माली जो कि स्टेशन पर नौकर था, प्रायः आकर मुझको अपने स्थान पर, जो स्टेशन पर ही था, ले जाया करता था । केवल मुझे ही नहीं किन्तु प्रत्येक आर्य के साथ वह ऐसा ही करता । वहाँ पर ले जाकर स्नानादि कराता भोजन का प्रबन्ध कर देता, कभी २ निज व्यय से भोजन करा देता था । एक बार मैंने उससे पूछा कि तुम ऐसी सेवा आर्यों की क्यों करते हो ? उसने उत्तर दिया कि जब मेरी आयु १८-२० वर्ष की थी, मैं महाराज जयपुर की ख़ास फुलवाड़ी में काम करता था । उस ही समय में श्री स्वामी जी महाराज जयपुर पधारे थे । एक दिन जयपुराधीश जी ने

श्री स्वामी जी महाराज से प्रश्न किया कि 'क्या योग की अष्ट सिद्धियां सत्य हैं?" श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "हां ठीक है।" राजा जी ने पूछा कि "क्या आकाश में उड़ने की सिद्धि भी ठीक है?" श्री स्वामी जी ने इसको भी सत्य बताया। इसपर राजा जी ने कहा कि आप भी तो योगी हैं; क्या आप भी आकाश में उड़ सकते हैं? श्री स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया कि 'हां उड़ तो सकते हैं, परन्तु अकारण ऐसा करने से संसार के लिए यह खेल हो जायगा। प्रत्येक स्थान पर लोग कहेंगे कि नेक उड़कर दिखा दीजिए। फिर सिद्धि न रहकर यह तमाशा हो जायगा।' इस पर महाराजा जी ने बहुत आग्रह पूर्वक कहा कि "महाराज! यदि आप मुझे यह सिद्धि दिखावें तो मेरी श्रद्धा योग पर अत्यधिक हो जायगी।' अत्यन्त ही आग्रह करने पर श्री स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी कि कोठी में से सारे मनुष्य बाहर कर दिए जायें। आज्ञा पाते ही सब मनुष्य कोठी में से ही नहीं किन्तु फुलवाड़ी से भी बाहर कर दिए गए। मुझे आज्ञा दी गई कि सब को बाहर करके फुलवाड़ी के द्वार का ताला लगा दिया जाय। तत्काल आज्ञा का पालन किया गया। तदुपरान्त राजा जी ने अपने हाथों से कोठी के द्वार भी बन्द कर दिए मैं ये सारी बातें समीप ही अपना काम करता हुआ सुन रहा था। मुझे भी यह सिद्धि देखने की अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। कोठी के पीछेकी ओर एक जीना था, उस के ऊपर एक रोशनदान था जहां से इस कमरे में का सारा दृश्य दिखाई पड़ता था। मैं चुपके से वहां पर जाकर बैठ गया। स्वामी जी महाराज एक चौकी पर आसन बिछा कर कमलासन से बैठ गये और थोड़ी देर तक कुछ प्राणायाम सा किया। पुनः ऊपर को उठना आरम्भ किया यहां तक कि छत के समीप जा लगे। थोड़ी देर तक ऊपर रहे, फिर धीरे २ चौकी पर आ विराजे। राजा जी ने यह दृश्य देखकर श्री महाराज के चरण पकड़ लिये और अत्यन्त श्रद्धा प्रगट की। मैं भी यह दृश्य देखकर अत्यन्त चकित सा रह गया। मैं अपना कार्य पुनः पूर्ववत करने लगा। सब द्वार खोल दिये गये। श्री स्वामीजी महाराज जब कोठी से निकल कर बाहर आये तब मैंने चरण पकड़कर कहा कि "महाराज! मेरी सद्गति का भी कोई उपाय बताइये' महाराज ने पूछा कि 'तू कौन है?' मैंने उत्तर दिया--महाराज! माली हूँ। श्री स्वामी जी ने कहा--आर्यों की सेवा किया कर'। तब से मैं आर्यों को यथाशक्ति सेवा किया करता हूं। लेखक ने भी मुजफ्फर नगर जाकर अनुसन्धान किया तो पता चला कि वह माली आर्यों की अत्यन्त सेवा किया करता था। इस समय माली का तो देहान्त हो चुका है, परन्तु चौ० अनूपसिंह जी नहटौर में ईश्वर की कृपा से विद्यमान हैं। उनसे इस घटना की विशेष पुष्टि हो सकती है। इस लिये कहना पड़ता है पूर्व वर्णन की हुई इस प्रकार की घटनायें सब सत्य हैं। अन्त में हमको भी कहना पड़ता है कि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज परम योगी थे। यह उन्हीं के योग्य और तपोबल का प्रताप है कि आज संसार के मतमतान्तरों के आसन डोल रहे हैं, ताज और तख्त कांप रहे हैं, अर्श हिल रहा है और नबी और पैगम्बरों की हड्डियां क़बरों में पड़ी हुई फड़क रही हैं।

। इति शम् ॥

❀ आर्यवीरों का युद्ध-गीत ❀

———:o:———

(रचयिता—वैदिक धर्म विशारद, काव्य मनीषी श्री सूर्यदेवशर्मा साहित्यालंकार, एम० ए०)

———:o:———

॥ रुचिरा छन्दः ॥

(१)

चलो वीरवर! धर्म युद्ध का ओज हमें आह्वान मिला।
मातृ सभ्यता पर मरने का सर्व श्रेष्ठ सन्मान मिला॥
धन्य हमारा जीवन जग में, धन्य हमारा भाग हुआ।
वेद धर्म की वेदी पर जो मानव तन का त्याग हुआ॥

(२)

युद्ध क्षेत्र में अरिगण हमको करते हैं आह्वान खड़े।
चलो वीरवर! बनो साहसी, समराङ्गण साम्मुख्य पड़े॥
बड़े भाग्य से नर जीवन में ऐसा अवसर आता है।
जब स्वमान पर मरकर मानव पुण्य परम पद पाता है॥

(३)

उत्सुक नेत्रों से पूर्वज-गण हमें स्वर्ग से देख रहे।
आर्य-जाति के वीरवरों का क्या कैसा उल्लेख रहे॥
अहो सपूतो! सावधान हो, यह संग्राम समुत्कट है।
आज आप के सम्मुख सारा, सकल सृष्टि का संकट है॥

(४)

किन्तु हमें आशा है, जग में, वीर काम जो करते हैं।
बढ़ें निरन्तर निर्भय आगे, कभी न उससे डरते हैं॥

विजयी हों असफल होवें, वा वहीं प्राण दे मरते हैं।
सारे संकट सहें किन्तु फिर, पीछे पैर न धरते हैं॥

(५)

"सूर्य" उदय पश्चिम में हो वा, हिमकर ज्वलदङ्गार बने।
अनल बने जगतीतल शीतल, गरल सुधा रस धार बने॥
अचल हिमाचल चले भले ही, सीमा सिन्धु अगाध तजे।
आर्य वीर बलिदान प्रतिज्ञा की न किन्तु मर्याद तजे।

(६)

तन मन जीवन धन साधन सब वेद धर्म पर वारेंगे।
प्राणों की अन्तिम आहुति से भी हम उसे उबारेंगे॥
अंग अंग कट जाय हमारा, रोम रोम का छेदन हो।
वेद सहित 'सत्यार्थ' साथ हो भद्र भाव में भेद न हो॥

(७)

धर्म हेतु सर्वस्व समर्पण कर हम स्वर्ग सिधायेंगे।
पुण्य प्रतापी आर्य जाति का मुख उज्ज्वल कर जायेंगे॥
भावी जन हम अमर शहीदों की गुण गाथा गायेंगे।
विश्व विजयिनि वेद धर्म की धवल ध्वजा फहरायेंगे॥

(८)

हो वैदिक 'सत्यार्थ' प्रकाशित, मतवादी तमतोम मिटे।
'सूर्य' सोम ही नभ में सोहै, नतरुविश्व से व्योम मिटे।
'दया' और 'आनन्द' सहित 'श्रद्धा' से सब सुख मान मरें।
हंसते हंसते बलिवेदी पर हम अपना बलिदान करें॥

वेद प्रचार

(लेखक—श्री विश्वमित्र जी रीडर, लायलपुर)

जहाँ वेदप्रचार के और कई साधन हैं वहां एक यह भी है कि वेद-भाष्य पुस्तक सस्ते मूल्य में बेची जाए । अब तक जो वेद-भाष्य छप चुके हैं उनका प्रचार बहुत कम आदमियों तक हुआ है, क्योंकि चारों वेदों की भाष्य पुस्तक की कीमत सौ रुपये से ऊपर है, जिसको साधारण पुरुष भी खरीदने में असमर्थ हैं फिर निर्धन पुरुषों की तो कथा ही क्या।

इस साधन की पूर्ति को लिये दो बातें आवश्यक हैं । एक तो संस्कृत भाष्य और हिन्दी भाष्य की पुस्तकें अलग २ छपा करें, क्योंकि संस्कृत पठित बहुत कम पुरुष हैं और केवल हिंदी पढ़ों के लिये संस्कृत भाष्य व्यर्थ है। और दूसरा सस्ते दामों पर बेचना। यदि कोई संस्था चाहे तो इन दोनों बातों को पूरा कर सकती है, परन्तु वर्तमान संस्थाओं में से मुख्य कर्तव्य परोपकारिणी सभा का ही है। आर्यसाहित्य मंडल अजमेर ने वेद भाष्य निकालना प्रारम्भ किया है जो दस जिल्दों में समाप्त हो जायेगा, प्रत्येक प्रति की कीमत तीन रुपये है । और यह केवल हिंदी में ही भाष्य है । इस मंडल ने उपरोक्त दोनों बातों को पूरा करने का यत्न किया है, परन्तु मैं यह समझता हूं कि इस से भी अधिक सस्ता वेद भाष्य तैयार हो सकता है। आर्य साहित्य मंडल के वेद भाष्य की एक प्रति का परिमाण सत्यार्थ प्रकाश के लगभग तुल्य है। और सत्यार्थप्रकाश का मूल्य दस आने है, तो इस प्रकार से दस जिल्दों का मूल्य ६।) होता है। यदि कोई सभा चाहे तो ६।) में और अधिक से अधिक १०)में तो अवश्य बेच सकती है, और इस प्रकार एक साधारण गृहस्थी भी एक वेद भाष्य को सुगमता से खरीद सकता है । तत्पश्चात् अन्य भाषाओं में भी इसी प्रकार सस्ते दामों में बेचा जा सकता है।

कई सज्जन पुरुषों को यह भ्रम होगा कि इतने सस्ते मूल्य में वेद भाष्य कैसे तैयार हो सकता है और इसकी इतनी बिक्री कैसे हो सकती है। यह भ्रम बिल्कुल निर्मूल है। क्योंकि पहले सत्यार्थप्रकाश २॥) में था फिर जब कलकत्ता से ॥=) वाला निकला तो सब आश्चर्य चकित हो गए और फिर परोपकारिणी सभा ने भी ॥=) में बेचना प्रारम्भ कर दिया है। अब भी जो अथर्ववेद अथवा ऋग्वेद ४८) में मिलता है आर्य साहित्य मण्डल से वही अथर्ववेद ६) में और ऋग्वेद १२) में मिलेगा। पाठक वृन्द ! यत्न और उत्साह की आवश्यकता है कार्य बहुत सुगमता से हो सकता है ।

सामाजिक-जगत्

मदुरा में ऋषि बोधोत्सव

आर्य-समाज मदुरा (मद्रास प्रांत) में तारीख ९-३-२९ को ऋषि बोधोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया गया। आर्य-समाज मन्दिर मे प्रातःकाल एक बृहद् हवन हुआ। तदुपरांत ईश्वर प्रार्थना आदि के भजन हुए। पश्चात् रात के ७ बजे से ११ बजे तक आर्य-समाज मंडली की ओर से एक जलूस निकाला गया। जिसमें आर्य-समाज हिन्दी स्कूल के विद्यार्थी भी साथ थे और जलूस के साथ वेद गान करते जाते थे। नगर के कुछ मुख्य स्थानों पर प्रचार भी किया गया। स्थान विलकतूण मे श्री० पं० एम. जे० शर्मा जी आर्योपदेशक का एक व्याख्यान 'ऋषि की महिमा" विषय पर हुआ। जनता पर प्रभाव अच्छा पड़ा। रास्ते में 'ऋषि दयानन्द की जय" आर्य-समाज की जय' और "प्रादेशिक सभा तथा महात्मा हंसराज की जय" के नारे लगाये गए। वहां से कवि नरसिंह माचारी जी के स्थान पर भजन मंडली जा पहुंची। कवि जी ने सबका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। कुछ भजन हुए, बाद पं० जी ने ऋषि जीवन चरित्र विषय पर एक छोटा सा भाषण दिया। फिर वहां से चल कर श्री० पूज्य स्वामी तुलसीराम जी B. A. B. L. M. L. C. ऐडवोकेट के यहां हो कर निर्विघ्नतापूर्वक आर्य समाज मंदिर मे आ पहुंचा। पहुंचते ही ऋषि दयानन्द की तथा आर्यसमाज की जय ध्वनी से आकाश गूंज उठा था यहां पर आर्य समाज का साप्ताहिक अधिवेशन नियम प्रकार हो रहा है।

संवाददाता।

बंगलौर में एक आदर्श वैदिक विवाह

गत २१ फरवरी को बंगलौर छावनी में एक आदर्श वैदिक विवाह बड़ी धूमधाम से सैकड़ों की उपस्थिति में हुआ। वर बंगलौर आर्यसमाज के प्रधान श्रीयुत रामचन्द्रराव शिन्धे M. L. C. के सुपुत्र श्री मुत्तोजी राव B.A. (आयु लग० २७ वर्ष और वधू श्रीमती शारदाबाई B.A. (Hons.) थीं। विवाह संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से हुआ मंगलौर से विशेषतया इस संस्कारार्थ निमन्त्रित पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति सम्पादक वेद-सन्देश ने कराया। वधू सम्बन्धी कार्य बहुत कुछ उनकी धर्म पत्नी देवी विद्यावती जी ने कराया। वर वधू ने प्रतिज्ञा मन्त्रों का अंग्रेजी अनुवाद सहित (जो पं० धर्मदेव जी ने अंग्रेजी शिक्षित जनता के लाभार्थ जिसमें कई अंग्रेज भी शामिल थे) उच्चारण किया साथ ही पं० जी ने सब आवश्यक विधियों की अंग्रेजी में व्याख्या की जिससे जनता को वैदिक विवाह विधि के महत्व का भली भांति पता लग गया। यह विवाह जाति बंधन तोड़ कर हुआ। इस संस्कार के बाद एक अन्तर्जातीय भोजन भी हुआ। श्रीयुत रामचन्द्र राव शिंधे ने अपने पुत्र का पूर्ण वैदिक रीति से विवाह कराकर दक्षिण भारत की जनता के सामने एक अत्युत्तम उदाहरण रख दिया है जिस पर चल कर बहुतसे

विचारशील सज्जन लाभ उठाएंगे और जाति बन्धनादि को तोड़ने का साहस करेंगे, ऐसी आशा है। हम इस साहस तथा सफलता के लिए श्रीयुत शिन्धे जी को बधाई देते हैं॥

एक दर्शक।

दयानन्द सप्ताह

आर्य-समाज लखीमपुर ने ३ मार्च से ९ मार्च तक "दयानन्द सप्ताह" मनाया। ३ मार्च को ओ३म् पता का मन्दिर पर समारोह पूर्वक फहराई गई, ४ मार्च से ८ मार्च तक आर्य सभासदों के गृहों पर यज्ञ हुए व सायंकाल को संकीर्तन होता रहा ९ मार्च २९ को प्रातःकाल १० बजे छाउछ ग्राम में नया समाज स्थापित किया गया। ३ बजे से समाज मन्दिर में यज्ञ व ऋषि जीवन पर व्याख्यान हुए, ५ बजे नगर में आर्य स्त्री पुरुषों का गिरोह संकीर्तन करता हुआ नगर में निकला, ९ बजे रात्रि को बा० सीतारामजी प्रधान के साहस पूर्ण उत्साह से एक सहभोज जिसमें ४० के लगभग सज्जन सम्मलित थे समाज मंदिर में हुआ। इस समाज में यह पहिला सहभोज है सहभोज में दो तीन सज्जन अछूत कहे जाने वाली जाती में से थे प्रधान जी के प्रभावशाली व्याख्यान के बाद कई सज्जन आर्य सभासद बने और कुछ सभासदों ने खड़े होकर नित्य प्रति सन्ध्या करने की प्रतिज्ञा कीं। भोजन दाल भात रोटी इत्यादि था।

निवेदक--

आर्य समाज मुन्नालाल
लखीमपुर खेरी मन्त्री
१३-३-२९

आर्यसमाज कोल्हापुर का शानदार जलसा

[महाराष्ट्र कर्नाटक आर्य प्रतिनिधि सभा का संगठन]

गत १९ जनवरी से २२ ज० तक आर्यसमाज कोल्हापुर रियासत द्वारा दान में दी हुई जमीन में एक विशाल समाज मन्दिर और प्रेस के लिये मकान लगभग १५ हजार रु० लगा कर बनाये गये हैं। समाज मन्दिर के सामने के आंगन में चारों दिन सायंकाल ७॥ बजे से ८॥ बजे तक बड़े शिक्षा प्रद और मनोहर व्याख्यान होते रहे।

१९ ता० को पूना के प्रो० चाफेकर M. A. LL. B. का 'आध्यात्मिक जीवन' पर और स्वामी ओंकार सच्चिदानन्दजी का 'सामाजिक जीवन पर व्याख्यान हुआ, और शंका समाधान के बाद डा० बालकृष्णजी M.A.PH.D. प्रिन्सिपल राजाराम कालेज ने सभापति के रूप से अपने विचार प्रकट किये। दूसरे दिन २० ता० को संकेश्वर के श्रीशंकर अलटेकर शास्त्री का 'हिन्दू संगठन' और मंगलौर से आमन्त्रित पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति का 'वेदों के पवित्र दिव्य सन्देश' पर भाषण हुआ। इन दोनों भाषणों को बहुत ही पसन्द किया गया। २१ ता० को प्रातः 'रामौशी' कहाने वाले १५ दलित (अछूत) भाइयों को शुद्धि संस्कार द्वारा धर्म दीक्षा दी गई, आचार्य का कार्य पं० धर्मदेवजी ने किया। शाम को स्वा० परमानन्दजी, (संस्थापक आर्यसमाज कोल्हापुर) कराची आर्यसमाज के पुरोहित केशवदेवजी और स्वा० ओंकार सच्चिदानन्दजी के व्याख्यान हुए। २२ ता० की शाम को पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति ने 'सार्वभौम धर्म और उसका प्रचार' इस विषय पर व्याख्यान दिया। प्रो० फड़के ने भी इसी पर मराठी में विचार प्रकट किये। स्वा० परमानन्दजी और प्रिंसिपल बालकृष्णजी ने धन के लिए अपील की जिससे कईसौ रु० वहीं और इकट्ठा हो गया। इसी दिन सवेरे महाराष्ट्र कर्णाटक आर्य प्रतिनिधि सभा का संगठन किया गया, जिसके प्रधान डा० बालकृष्ण जी, उप प्रधान पं० धर्मदेवजी और सेठ ताराचन्दजी और मन्त्री प्रो०

बोस चुने गये। प्रधानजी और पं० धर्मदेवजी को यह अधिकार दिया गया कि वे कर्णाटक और अंग्रेज़ी सत्यार्थप्रकाश को छपवाने का उचित प्रबन्ध करें। इसके लिए श्रीमती सार्वदेशिक सभा से ५००) सहायतार्थ दान और ५००) अगाऊके तौर पर देने के लिए प्रार्थना करने का निश्चय हुआ। इस सभा को शीघ्र रजिस्टर्ड कराने का निश्चय और श्री बलवन्तराव माणे को जिन्होंने अपनी वसीयत नामे में सारी जायदाद जो २०००) वार्षिक आमदनी की है इस प्रतिनिधि सभा के नाम करा दी है सभा की तरफ़ से अवैतनिक उपदेशिक नियत किया गया आशा है महाराष्ट्र और कर्णाटक प्रांत में अब प्रचार का कार्य ज्यादह अच्छी तरह और संगठित रूप में हो सकेगा।

जलसे की इस कार्रवाही के अलावा प्रिंसिपल बालकृष्ण जी ने अपने राजाराम कालेज में पं० धर्मदेव जी के दो व्याख्यान कराये, एक तो संस्कृत यूनियन की तरफ से 'वैदिक देवता" इस विषय पर एक घंटे तक धाराप्रवाह संस्कृत में हुआ जिसके बाद लगभग आधा घन्टा शंकासमाधान में लगा, और दूसरा 'प्राचीन शिक्षा पद्धति' पर कर्णाटक भाषा में। इस के बाद भी शंका समाधान हुआ। इन दोनों व्याख्यानों का विद्यार्थियों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। संस्कृत में इतने धाराप्रवाह रूप से अपने भावों को प्रकट किया जा सकता है यह देख कर सब को आश्चर्य हुआ।

प्रिंसिपल बालकृष्ण जी जिस उत्साह और अनथक परिश्रम से महाराष्ट्र प्रान्त में प्रचार कार्य को संगठित करने में लगे हुए हैं वह बहुत ही प्रशंसनीय है। संकेश्वर (जिला बेलगाँव) में उन्होंने प्रतिनिधि सभा की तरफ से लाजपतराय हाई स्कूल की स्थापना की है। २३ जनवरी को पं० धर्मदेव जी ने इस स्कूल का निरीक्षण किया और विद्यार्थियों को 'ब्रह्मचर्य' पर उपदेश दिया।

"एक दर्शक"

सिंगापुर में वैदिक धर्म प्रचार

संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के अवैतनिक उपदेशक श्री स्वामी मंगलानन्द पुरी जी ने ११ जनवरी १९२८ को कलकत्ते से सिंगापुर के लिए प्रस्थान किया। आप के साथ गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी धारेश्वर (धर्मराज) तथा बिरालसी गुरुकुल के ब्रह्मचारी विजयपालसिंह बाण विद्या निपुण भी धर्म प्रचार सहायतार्थ गये हैं। सिंगापुर समाज ने ३६०) मार्ग व्यय भेजकर इन तीनों को बुलाया और २४ जनवरी को आदर पूर्वक जहाज से उतार कर स्वागत किया। सिंगापुर की समस्त हिन्दू जनता की ओर से एक स्वागतकारिणी समिति बनाई जाकर उक्त स्वामी जी को २६ जनवरी को मान पत्र दिया गया। सिंगापुर में आर्य समाज की स्थापना केवल १५ मास से श्रीयुत पं० भक्तराम सहगल द्वारा हुई थी, अतः उसका प्रथम वार्षिकोत्सव १७ फरवरी सन् १९२८ को मनाया गया जिसमें अन्यों के सिवाय स्वामी मंगलानन्द जी के दो व्याख्यान (एक हिन्दी दूसरा अंगरेजी में) हुये। और भी अनेकों सभायें उक्त स्वामी जी के अंग्रेजी व्याख्यान के निमित्त लगाई गईं जिन का प्रभाव यह हुआ कि कई मद्रासी सज्जनगण सिंगापुर समाज के सभासद बनगये। अभी तक संयुक्त प्रान्तीय महाशयों मात्र की यह समाज थी, अब मद्रासी लोगों के शामिल होने से उन्नति होगी।

ब्रह्मचारी विजयपालसिंह बाण-विद्या निपुण ने अपना अद्भुत बाण विद्या प्रदर्शनी से जनता को मुग्ध कर दिया। अब यह धर्म प्रचारक मण्डली सिंगापुर का कार्य समाप्त करके बैंकोक (स्याम) को गई है, जहां होली पर उत्सव होगा।

(सम्वाददाता)

"आन्ध्र-आर्यन मिशन, गुन्टूर"

[मार्च मास १९२९ की शुद्धियें]

ग्राम	तालुक	संख्या	
नराइपालिम	अवनिगड्डा	६४	व्यक्ति
वैकिलि	कैकलूर	४८	,,
नीरुकोन्डा	गुण्टूर	३०	,,
बलन्दे पालम	बन्दर	११	,,
वेमवरम्	गुडीवाड़ा	११	,,
कैकलूर	मण्ड वल्लि	२०	,,
	योग	१८४	व्यक्ति

सूचना--यह १८४ व्यक्ति, सारे के सारे, अछूतों की एक माला नामक जाति में से हैं। अनेक वर्ष पूर्व भिन्न २ कारणों से ईसाई मत में प्रविष्ट हुए थे। उन्हें आन्ध्र आर्यन मिशन ने प्रायश्चित करा पुनः हिन्दू धर्म में स्वीकार किया है,

प्रेषक,
केशवदेव ज्ञानी मन्त्री।

शोक सहानुभूति

आर्यसमाज चावड़ी बाजार देहली की १४-४-२९ की शोक सभा में म० राजपाल जी की अकस्मात मृत्यु पर निम्न विषयक प्रस्ताव पास हुए, तथा अन्य समाजों से भी इस सम्बन्ध में इसी प्रकार के प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं जिनका नाम क्रमानुसार नीचे दिया जाता है:—

		स० सा०
(१)	आर्यसमाज	होशियारपुर
(२)	,,	सक्खर (सिन्ध)
(३)	,,	आनन्द (खेड़ा)
(४)	,,	सहारनपुर
(५)	,,	दुर्ग [सी० पी०]
(६)	,,	कोसली (रोहतक)

(क) आर्यसमाज का यह साधारण अधिवेशन श्री० म० राजपाल जी के एक धर्मान्ध मुसलमान द्वारा बध किये जाने पर हार्दिक शोक तथा स्वर्गीय शहीद के सम्बन्धियों से सहानुभूति प्रकट करता हुआ कातिल के इस बुजदिलाना कार्य पर घृणा प्रकट करता है।

(ख) इस अधिवेशन का पूर्ण विश्वास है कि उक्त महाशय तथा दूसरे आर्यवीरों के बध और आर्यों पर किए गए बराबर हमले (आक्रमण) व्यक्तिगत कार्य नहीं हैं, बल्कि उसके पीछे एक गहरी शाजिश काम करती है, इस लिए यह अधिवेशन गवर्नमेंट से अनुरोध करता है कि शीघ्र से शीघ्र इस साजिश का पता लगा कर साजिशियों को सख्त से सख्त सजायें दें ताकि आइंदा इस प्रकार के वारदातों का सिलसिला बंद हो।

विदेशों में वैदिक संस्कार

आज ता० २१ अक्तूबर सन् १९२८ ई० को तैर्यों वीलज इस्टकोस्ट डमरारा ब्रिटिश गायना सौथ अमरीका में म० चन्द्रबली सिंह की पुत्री का नामकरण संस्कार आचार्य पं० लछिमनप्रशाद बानप्रस्थ ने कराया। यज्ञ में ब्रिटिश गायना आर्यसमाज के सभासद रामनाथ वर्मा, नन्हूप्रसाद, बालगंगाधर, पिनगला साधू, दुर्गपाल, सतनारायणसिंह वर्मा, देवकीनन्दन, रामरूपसिंह, हाकिमप्रसाद, जोधीप्रसाद, शिवगोबिन्दसिंह, गुरुशंकर इत्यादि महाशय व पं० रामजीलाल आर्य उपदेशक ने आकर यज्ञ को सुशोभित किया। बाद खान पान भजन इत्यादि के मैंने आर्य संगठन व शुद्धि व एक पुस्तकालय व गुरुकुल स्थापित करने के लिए कहा जिस को आये हुए मनुष्यों ने स्वीकार किया।

पं० गिरजादयाल शर्मा
नकेरी डवगयाना।

साहित्य-परिचय

(१) जगमगाते हीरे

लेखक पं० विद्याभास्कर शुक्ल, प्रकाशक छात्र-हितकारी पुस्तक माला, दारागंज, प्रयाग, मूल्य १)। पुस्तक में १७ महापुरुषों के जीवन चरित्र दिये गए हैं, घटनायें सावधानी से छांटी गई हैं, पुस्तक उपयोगी है।

(२) वैदिक-विवाह-पद्धति

सम्पादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय M. A. तथा पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी०, प्रकाशक आर्यसमाज चौक प्रयाग, मूल्य ।-)। ऋषि दयानन्द कृत संस्कारविधि में से विवाह संस्कार पृथक करके छपवाया गया है, और बड़ी सावधानी से संपादन किया गया। संस्कार में जहां २ संस्कारविधि के अन्य स्थलों के हवाले दिए गए हैं इस पुस्तक में हवाले न देकर असली इबारत ही वहां लिख दी गई है जिससे कोई पुरुष बड़ी सुगमता से इधर उधर के पृष्ठ लौटे बिना विवाह संस्कार करा सकता है।

(३) भारतीय वीर

ले० पं० शिव शर्मा जी आर्य्योपदेशक, प्रकाशक शिवशर्मा ऐंड सन्स आर्य बुक डिपो सम्भल (मुरादाबाद) मूल्य १)

पुस्तक में राजपूत आदि अनेक वीरों के चरित्र संग्रह किए गये हैं, घटनाओं का संग्रह बहुत अच्छा हुआ है। पुस्तक की विशेषता यह है कि प्रत्येक के चरित्रों का उल्लेख करने के बाद कुछेक प्रश्नोत्तर दिए हैं और इन प्रश्नोत्तरों में बड़ी सावधानी से उन कमियों और त्रुटियों का जिक्र कर दिया गया है जो उन वीरों से हुई थीं। पुस्तक पढ़ने के योग्य है, वीरों के चरित्रों का अध्ययन करने ही से वीरता आया करती है।

(४) अद्वैत वाद

लेखक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, मूल्य १॥), कला कार्यालय प्रयाग से प्राप्त।

ग्रन्थ को पढ़ने से प्रसन्नता हुई। विद्वान् लेखक ने श्रीमच्छंकराचार्य के मायावाद को नग्न रूप में दुनियाँ के सामने रख दिया है। पुस्तक ११ अध्यायों में विभक्त है। सभी अध्यायों से अनेक ज्ञातव्य बातों का बोध होता है, खास कर 'प्रमाणों का प्रमाणत्व' (अ० २), 'माया' (अ० ४), 'कारणैक्यवाद' (अ० ७) 'माया की माया' (अ० १०) बड़े महत्व के हैं। जगत मिथ्या है, जो दिखाई देता है सब कुछ भ्रम है, हम ब्रह्म हैं, इत्यादि विचारों ने हिन्दू जाति को अकर्मण्य और दुनियां से उदासीन बना रखा है। कुछ नहीं कुछ नहीं, के विचारों ने जब हिन्दू मस्तिष्क पर अधिकार जमा लिया तो फल यह हुआ कि न वे कुछ रहे और न उनके पास कुछ रहा। पुस्तक में इन भ्रमपूर्ण विचारों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तक वास्तव में देखने और मनन करने के योग्य है। अद्वैतवाद पर इतना बड़ा और मौलिक ग्रन्थ अबतक नहीं लिखा गया था। इतनी सफलता के साथ ग्रन्थ को समाप्त करने के लिए मैं लेखक को बधाई देता हूं, और आशा करता हूं कि ग्रन्थ से अधिक से अधिक नर नारी लाभ उठाने का यत्न करेंगे।

दान-सूची सार्वदेशिक सभा

बाबत मास फरवरी व मार्च २९

रक्षानिधि

बिहार बंगाल

धन दाता

२०) आर्यसमाज गया

८०) ,, मोतीहारी

———

१००) योग

मद्रास प्रचार

५००) श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला

किराया भवन

१५०)

३१५)

———

४६५) योग

श्रद्धानन्द भवन

६) आर्यसमाज गूना

सार्वदेशिक प्रचार फण्ड

६।=)॥ आर्यसमाज सीवान श्रद्धानन्द चतुर्थी के उपलक्ष में

५) आर्यसमाज बरौरा (चांदा)

———

११।=)॥

६=)८ ,, मोगा

———

२०॥-)२ योग

दलितोद्धार व शुद्धि

६'=)॥ आर्यसमाज सीवान

५) आर्यसमाज बरौरा

———

११।=)॥

१८।-)४ ,, मोगा

———

२९॥≡)१० योग

दशांश

१०) आर्यसमाज गाजियाबाद

५३॥।=) ,, मथुरा

———

६३॥।=) योग

३८७०॥।-)६ श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा

७७॥≡)॥ सार्वदेशिक

१०६॥) पुस्तक बिक्री

सूद

४५।)

ढोढ़ाराम चूड़ामणि वेद प्रचार स्थिर निधि

दान

६॥=) म० गिरजादयालु जी निकेरी ब्रिटिश डच गाइना

सहायता संस्कृत साहित्य समाज काशी

२०) श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला से द्वारा प्रो० इन्द्र जी।

———

५३१५।=३ सर्वयोग

दान दाताओं को अनेक धन्यवाद।

नारायणदत्त, कोषाध्यक्ष।

ह० रघुनाथप्रसाद पाठक, अकाउन्टेन्ट।

—:o:—

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के प्रचारार्थ बहु संख्या में ये ग्रंथ एकत्र किये गये हैं और निश्चय किया गया है कि पुस्तक विक्रेताओं को, वैदिक प्रेस की अपेक्षा कमीशन भी कुछ अधिक दिया जावे। छोटे बड़े सभी ग्रन्थ अच्छे कागज़ पर बड़े आकार में हैं उनका मूल्य सहित विवरण इस प्रकार है--इसके मंगाने के लिए शीघ्र आर्डर भेजने चाहियेः—

(१) आर्याभिविनय ।–)
(२) सत्यार्थ प्रकाश बढ़िया कागज उमदा छपाई बड़ा आकार १)
(३) काशी शास्त्रार्थ –)
(४) सत्यधर्म विचार –)॥
(५) पञ्च महायज्ञ विधि –)॥
(६) आर्योद्देश्य रत्नमाला)॥
(७) संस्कार विधि बढ़िया कागज़ उमदा छपाई बड़ा आकार ॥)
(८) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका बढ़िया कागज उमदा छपाई बड़ा आकार १॥)
(९) व्यवहार भानु =)॥
(१०) वेद विरुद्ध मत खण्डनम् =)॥
(११) शिक्षापत्र स्वा० नारायण मत खण्डन =)
(१२) भ्रमोच्छेदन –)
(१३) भ्रान्ति निवारणम =)
(१४) गो करुणानिधि =)
(१५) स्वीकार पत्रम्)॥
(१६) महर्षि का संक्षिप्त जीवन चरित्र मय रंगीन चित्रों के ।)
(१७) दयानन्द ग्रन्थमाला दो जिल्दों में ५)

पुस्तकालय की अन्य पुस्तकें

१ संस्कृत सत्यार्थप्रकाशः—

यह महर्षि दयानन्द कृत हिन्दी सत्यार्थप्रकाश का संस्कृतानुवाद है। अनुवादक गुरुकुल वृन्दाबन (मथुरा) के संस्कृत विभाग के मुख्याध्यापक श्री० पं० शङ्करदेव पाठक हैं। अनुवाद की भाषा मधुर एवं सरल है। महर्षि का आशय ज्यों का त्यों प्रकट किया गया है। मूल्य २।) सजिल्द २॥)

२ प्राणायाम विधिः—

यह पुस्तक जिस में प्राणायाम सम्बन्धी कठिन से कठिन विधियों को सुगम बनाया गया है श्री पूज्यपाद १०८ श्री नारायण स्वामी जी द्वारा लिखी गई है। प्राणायाम के प्रेमियों की एक बड़ी खोज तथा आवश्यकता इस के द्वारा पूरी हो सकती है। मूल्य केवल –) प्रति

३ दयानन्द लहरीः—

इस में भगवान दयानन्द का स्तवन शिखरिणी आदि सुन्दर छन्दों में किया गया है। प्रत्येक छन्द के साथ भाषानुवाद भी दिया गया है। पुस्तक के लेखक श्री पं० मेधाव्रत जी कविरत्न हैं। मू० –)॥ प्रति।

४ आर्यपर्व पद्धतिः—

आर्य्य जगत में एक से ही त्यौहार मनाने तथा त्यौहारों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करा देने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई है। इस पुस्तक का प्रत्येक आर्य परिवार में रखना आवश्यक है। मूल्य ।।।) बारह आने।

५ आर्य समाज क्या है:—

यह पुस्तक पं० गङ्गाप्रशाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रयाग द्वारा लिखी गई है। इस पुस्तक में आर्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास मौजूद हैं। संस्थाओं और आर्य विद्वानों आदि के १६ चित्र हैं। मूल्य ।।।) बारह आने।

६ दश नियम व्याख्याः—

श्री पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी वैदिक यति द्वारा यह "दश नियम-व्याख्या" नाम की पुस्तक लिखी गई है। इसमें आर्यसमाज के दश नियमों की विस्तृत तथा गवेषणापूर्ण व्याख्या की गई है। मूल्य ।) चार आना।

७ ओम्प्रत्यक्षः—

यह पुस्तक श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी वैदिक यती की लेखनी से लिखी गई है। ओ३म् परमात्मा की विस्तृत व्याख्या विद्यमान हैं। मूल्य ।।)

८ वैदिक सिद्धान्तः—

इस पुस्तक में आर्य विद्वानों द्वारा लिखित भिन्न २ विषयों पर अत्युत्तम निबंधों का संग्रह है। मूल्य १।) सजिल्द १।।)

16. Crucifixion by an eye witness : –

This valuable book contains a detailed account of the crucifixion of Jesus Christ, given by one who witnessed it with his own eyes.—*Price As. 6. only.*

17, Truth and Vedas ;—

It is an excellent exposition and translation of, "Vibhrat." Price As. 8 only.

18 Truth Bed Rocks of Aryan culture :—

The subject dealt with in this book is the ideal of truth stating candidly by means of Vedic Mantras and fine stories to what extent the Aryan race has lived to this ideal.—*Price As. 10 Only.*

19. Vedic Teachings : –

This book contains the most authentic replies to the objection raised about the Vedas by Dr. Bhandarkar. The learned author has, besides, brought forth the superiority the Vedic Teachings contained. Price Re. 1 As. 12 only

20. Voice of Aryavarta :—

This little book comes from the pen of Mr. T. L. Vaswani and contations reflections on Rishi Dayanand and his life and teaching.

पुस्तकें मिलने का पता :—

आर्य सार्वदेशिक सभा, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

सार्वदेशिक सभा की
आवश्यकतायें।

—:o:—

(१) यौरुप आदि विदेशों में स्थिर रीति से प्रचार के लिए प्रति देश २५ सहस्र धन की जरूरत है मतलब यह है कि २५०००) देने से किसी एक देश इंगलैंड, फ्रांस, जरमनी, टरकी, चीन, जापान, फारस आदि में एक उपदेशक स्थिर रीति से रक्खा जा सकता है। यह धन स्थिर निधि में रहेगा। असल खर्च न होगा केवल ब्याज खर्च हुआ करेगा। निधि के नाम के साथ दान दाता का नाम जोड़कर सदैव हिसाब तथा रिपोर्ट आदि में लिखा जाया करेगा। "रामदत्त टरकी प्रचार निधि" इत्यादि।

(२) जावा, सुमात्रा, स्याम, लंका आदि प्रदेश में १००००) देने से एक उपदेशक स्थिर रीति से किसी देश में दानी की इच्छानुसार रक्खा जा सकता है। यह निधि भी उपर्युक्त भांति दानी के नाम से स्थिर रीति से रक्खी जावेगी। केवल ब्याज खर्च होगा।

(३) तीन हजार रुपये देने से स्थिर रीति से एक छात्र वृत्ति मदरास, आसाम सीलौन आदि के लिये प्रचारक तैयार करने के लिए कायम होती है। चार साल तक १५ रुपये मासिक देने से भी छात्र प्रचार के काम के लिए तैयार हो सकता है।

(४) ५००) १०००), ५०००) आदि देने से कोई अच्छा ग्रन्थ दानी के नाम से छप सकता है।

(५) विदेश, मदरास प्रचार, वेद प्रचार निधि, शुद्धि, दलितोद्धार निधि में छोटी से छोटी बड़ी से बड़ी कोई रकम भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार होगी।

सार्वदेशिक कार्यालय
देहली।

नारायण स्वामी,
प्रधान।

शामियाना बिकाऊ है

सार्वदेशिक सभा ने गत कुम्भ प्रचार के समय एक शामियाना ७१ फीट लम्बा ४९ फीट चौड़ा कानपुर की एक मिल से अच्छे मज़बूत दुहरे कपड़े का बनवाया था जिस की लागत १५०६॥=) है सभा ने इस शामियाना को अब पृथक कर देना निश्चय कर लिया है यदि कोई समाज या व्यक्ति पूरा शामियाना लेना चाहे तो सभा लागत मात्र पर उन्हें दे देग, यदि समाजें इतना बड़ा शामियाना न लेकर उसके टुकड़े २ लेना चाहें तो भी सभा उन्हें दे देगी, टुकड़े इस प्रकार हैं :

(१) २२ टुकड़े	२५ × १५ फीट	मूल्य	फी टुकड़ा	४४॥=)
(२) ५	,, २५ × २०	,,	,,	५१।=।
(३) ८	,, २५ × १०	,,	,,	२९॥-)॥

परन्तु ये टुकड़े उसी समय यहां से भेजे जावेंगे जब एक प्रकार के समस्त टुकड़ों के ग्राहक हो जावेंगे, जिन्हें लेना हो वे शीघ्र अपने २ पत्र भेज देवें, पेशगी मूल्य आने पर ही टुकड़े या समस्त शामियाना भेजा जा सकेगा।

सार्वदेशिक सभा]
देहली]

नारायण स्वामी

ताज़ा सब्ज़ी का बीज मंगाओ।

पता—मेहता डी० सी० वर्मा आर्य टोला पटना सिटी।

५००) इनाम लीजिये

महात्मा प्रदत्त श्वेत कुष्ट (सफेदी) की अद्भुत बनौषधि एक दिन में आधा और तीन दिन में पूर्ण आरोग्य। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन दाताओं की दवा कर थक गये हैं तो इसे लगावें। बेफायदा साबित करने पर ५००) इनाम। जिन्हें विश्वास न हो -) का टिकट लगाकर प्रतिज्ञा पत्र लिखालें। मूल्य २)

अखिलकिशोर राम,

नं० ७ पो० कतरीसराय (गया)

पण्डित रघुनाथ प्रसाद पाठक पब्लिशर के लिए अर्जुन प्रेस, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली से छप कर प्रकाशित हुआ।

Registered No. L 2121

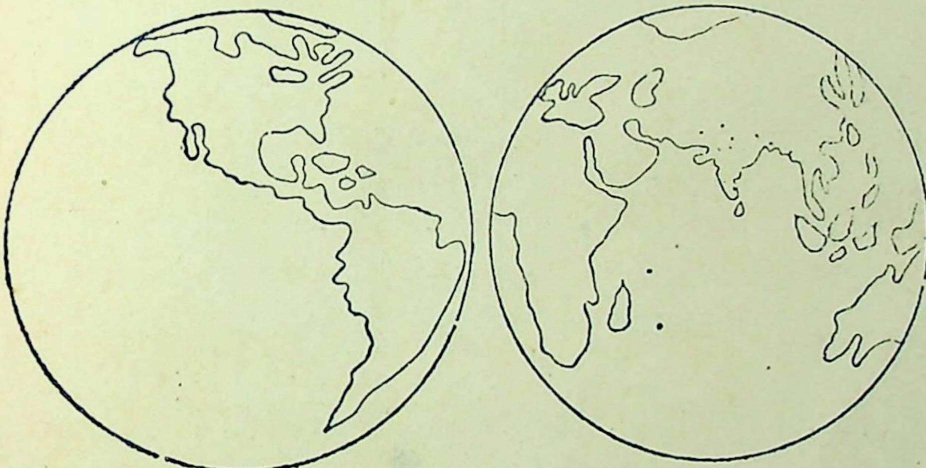
ओ३म्

भाद्रपद १९८६
अगस्त
१९२९

सार्वदेशिक

दयानन्द
अब्द
१०५

भूमण्डल



कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् ॥ वेद ॥

वार्षिक
मूल्य
२)

सम्पादक--स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती

एक प्रति का
मूल्य
=)

विदेश से ५ शिलिङ्ग

विषयसूची

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाने की दर

स्थान	१ मास के लिये	३ मास के लिये	६ मास के लिये	१ वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा	३॥)	८)	१५)	२५)
चौथाई कालम	२)	५)	८)	१५)

नोट—चौथाई कालम से कम विज्ञापन आने पर कालम की एक पंक्ति के =) प्रति मास लिये जायेंगे। विज्ञापन तथा रुपया प्रत्येक दशा में पेशगी ही आना चाहिये।

* ओ३म् *

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष ३ | भाद्रपद १ सम्बत् १९८६ वि० | अङ्क ६

अगस्त १९२९ ई०] [दयानन्दाब्द १०५

सम्पादकीय

असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने में सर्वथा उद्यत रहना चाहिये।

महर्षि दयानन्द।

प्रचार !

(२)

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि उत्सवों, शास्त्रार्थों और प्रचार के अन्य अवसरों पर आर्यसमाजों को कितना व्यर्थ व्यय करना पड़ता है ? किस कदर किन्हीं-किन्हीं उपदेशक महोदयों और भजनीक-महाशयों की नाज बरदारी करनी होती है ? और ……और कार्य फिर भी …… सन्तोषजनक न…हीं ……होता ! हां, इतना व्यय, इतनी खुशामद, इतनी आव भगत करने पर भी नहीं होता ! लड़की के विवाह में वर-पक्ष की ओर से आए हुए अभ्यागतों की तरह मान-सम्मान कर देने पर भी नहीं होता !!

हम ने देखा है ! हाय ! जो कुछ देखा है ! क्या वह बतलाना होगा ? नहीं, हम नहीं बतलाएंगे। हम उसे अभी कुछ दिनों और एक मधुर रहस्य की भांति अप्रकट ही रक्खेंगे। पर हाँ, इतना तो भी बतलाया जा सकता है कि, ये बातें

उन लोगों की नहीं हैं, जो साधारण उपदेशक और भजनीक हैं। ये बातें उन लोगों की भी नहीं हैं जो किसी जिम्मेदार संस्था के अन्तर्गत काम करते हैं। इन गरीबों को तो सच पूछिए उन के परिश्रम और त्याग के उपहार में मिलता ही क्या है? इन्हें न तो सभा से ही काफी पुरुस्कार मिलता है, और न कहीं किसी समाज में ही इन की कुछ पूछ-ताछ होती है। ये तो ठहरे नौकर? नौकरों की क्या इज्जत? उनसे तो कान पकड़ कर काम लेना और बन पड़े तो·········तक को भी न पूछना!! गुलाम और नौकरों की भी कोई सत्ता होती है? ऐसे सत्ता-हीन प्राणियों के सम्बन्ध में हमें भी सम्प्रति कुछ कहना नहीं। हमारे सामने तो उन महानुभावों का दिव्य (?) उदाहरण है, जो बड़े आदमी कहलाते हैं, स्वतंत्र और आनरेरी उपदेशक—होने का दम भरते हैं, बड़ी—बड़ी बातें बघारते हैं, किसी बड़ी संस्था के पदाधिकारी या प्रतिष्ठित सभासद होते हैं, देश-भक्त, नेता, और सुधारक बनते हैं, सभा-सोसाइटी में बैठ कर दूसरों के बात-व्यवहार, योग्यता और कार गुज़ारी पर मज़ाक उड़ाते हैं और हर किसी की इज्जत व आबरू को दम—भर में खाक में मिला देने के लिए हातिम बने रहते हैं और हां, अपने मातहत कार्यकर्त्ताओं के काम और मार्ग व्यय आदि बिलों को तो सदा सन्देह की दृष्टि से ही देखने के आदी हो रहे हैं। हमें इन्हीं भद्रपुरुषों के सम्बन्ध में कुछ कहना है। पर कब? अभी नहीं। अभी तो सिर्फ संकेत मात्र में इतना ही कह देना है, ये भद्रपुरुष बड़े भयानक होते हैं। इनकी कृपा कटाक्ष से समाज का आए दिन काफिया तंग रहता है और कितनी ही समाजें तो इनके आतिथ्य के भार-सत्कार से तंग आकर अपने वार्षिकोत्सव आदि करने से भी उकता गए, ऊब गए!!

इतना ही नहीं! ये महानुभाव उत्सवपर आकर तंग ही नहीं करते बल्कि इन में कितने तो ऐसे बढ़े—चढ़े होते हैं, जो मार्ग व्यय आदि—एक से नहीं अनेक सभाओं से एक ही तिथि और एक ही समय के उत्सवों के लिए-पेशगी लेकर पीछे डकार तक नहीं लेते। समाजें इन के नाम अपने प्रोग्राम और पोस्टरों में छपवा देती हैं। परन्तु जब ये नहीं पधारते या कई तार और लगातार चिट्ठियों पर, बड़ी कृपा करके पधारते हैं तो फिर कुछ न पूछिए! इन के नाजो नखरे तो देखते ही बनता है। समाज के किसी अत्यन्त श्रद्धालू 'भगत' पर भले ही उन की इस लीला का जैसा कुछ प्रभाव पड़ता हो, परन्तु समझदार आदमी तो उसी दम तोबाह बोल उठते हैं! और ·················और जब ये महात्मा जी अपने सफर खर्च आदि का बिल उपस्थित करते हैं तो बेचारा मन्त्री एकदम सन्नाटे में आ जाता है और फिर उस से कुछ कहते-सुनते नहीं बन पड़ता! हा! वेद-प्रचार का सम्मिलित पुण्य—कार्य! सार्वजनिक सेवा का पवित्र अवसर! उस में यह भेद-भाव! यह वैषम्य! यह स्वार्थपरता! यह दम्भ! यह आडम्बर! शिव! शिव!! हमारा क्या होगा? क्या बनेगा? हम किधर जायंगे? समाज किधर?

× × ×

इन्हीं आपदाओं, ऐसी ही असुविधाओं को दूर करने की पवित्र भावनाओं से प्रेरित हो कर श्री० पं० जयदेव जी विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ ने—"विद्वानों को किस प्रकार सुसंगठित करें" इस शीर्षक में—सार्वदेशिक के आषाढ़-अङ्क में-अपने अमूल्य विचार प्रकट किये हैं। और हम ने तदनुसार समस्त समाजों तथा आर्य-प्रतिनिधि सभाओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। प्रसन्नता है हमारे सहयोगी आर्य-मार्तण्ड में उस की प्रति-ध्वनि हुई और उस ने भी प्रतिनिधि सभा राजस्थान को इस उपयोगी और महत्वपूर्ण

योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये प्रेरित किया! हमें आशा है, हमारे अन्य सहयोगी पत्र भी इस अवसर पर अपने इस पवित्र कर्तव्य से उदासीन नहीं रहेंगे और आर्य विद्वत्-मण्डली को सुसंगठित करने में सहायक होंगे। संगठन ही समाज के यथेष्ट हित का साधन है और संगठन से ही विद्वान् की यथेष्ट प्रतिष्ठा होती और रह सकती है।

अब इन सब के बाद हम लोगों को आगाह कर देना चाहते हैं। बड़प्पन के दिखावे में लुभा जाने को आदत एक कमज़ोरी है और दुनियां की अन्य कमजोरियों की तरह यह भी व्यक्ति को बड़ी महंगी पड़ती है। धर्म और वैराग का यही तत्व है कि इन कमजोरियों को खोलें, दिखावें। सब से घातक बात यह है कि ऐसी कमजोरियों की मंहगाई ही उनको आकर्षण बन जाती है, जैसे कीमती दवा गुणकारी न भी हो, तो भी मानो रोगी को बहुत तसल्ली पहुंचाती है। परन्तु इस फीस की अधिकता से जैसे डाक्टरों को, उसी प्रकार फीस और आडम्बर के मोटे पन से उपदेशक या विद्वान की योग्यता नापना गलत है। धर्म के काम में तो इस प्रकार की नाप और भी भ्रामक है। कारण, आडम्बर धर्म नहीं, त्याग धर्म है। आवश्यकता, सम्पदा और परिग्रह की बहुलता नहीं, उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म न्यूनता ही धर्म है। आज हम प्रचार पर बहुत ज्यादा खर्च करते हैं, पर इस दृष्टि से देखें तो वह प्रचार प्रचार नहीं, केवल धूम-धाम है। वह धर्म का प्रचार नहीं, केवल व्यक्तियों का प्रचार है। धर्म की वास्तविकता का तो उल्टे इस प्रकार से हनन ही होता है। उत्सवों और जलसों में पहाड़ों रुपया जो इस तरह बड़प्पन और आडम्बर की भेंट चढ़ जाता है, वह कितना अधार्मिक अपव्यय है, यह समाजों को खूब समझ लेना चाहिये।

स्वामी जी पर वार!

श्री स्वामी चिदानन्द जी अखिल भारतीय शुद्धि-सभा का 'प्रधान मन्त्री' तथा "शुद्धि समाचार" के सम्पादक थे। आप पर देहली के सिटी मजिस्ट्रेट मि० ईशर की अदालत में, "शुद्धि-समाचार" में इस्लामी सिद्धान्तों की समालोचना शीर्षक लेख माला प्रकाशित करने के कारण, दफा १५३ ए० व २९५ के अनुसार गत दिसम्बर मास से मुकदमा चल रहा था। गत २२ जुलाई को इन दोनों अपराधों में आप को ६। ६ मास का कठिन कारावास और ३००) रुपये जुर्माना का दंड दिया गया है। दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

स्वामी जी ने जेल जाने से पहले अपने एक लम्बे सन्देश में शुद्धि सभा के कार्यकर्ताओं से अपील की है कि "वे शुद्धि सभा के कार्य में उसी तत्परता और लगन के साथ सहयोग करते जाएं, और उन के मुकदमे में अब हाईकोर्ट आदि में कोई अपील न करें।"

हम भी स्वामी जी के इन मनोभावनाओं से पूर्णतया सहमत हैं। हम नहीं समझते, इस प्रकार के मुकदमों के अपीलों से कभी कुछ विशेष लाभ हुआ है। परन्तु कुछ भी हो। अपील हो या न हो। अपील से कुछ लाभ हो या न हो! परन्तु 'शुद्धि का कार्य'—'शुद्धि-समाचार' का काम-उसी प्रकार से, बल्कि उस से भी दुगने-चौगने जोश और हौसले से होना चाहिये। उस से तनिक भी ठंडी-गर्मी से काम न चलेगा। शुद्धि का काम, समाज का—देश और जाति का—काम है इस में किसी एक मनुष्य की उपस्थिति—या अनुपस्थिति से कुछ अन्तर न पड़ना चाहिये। हां, जिस प्रकार स्वामी चिदानन्द जी ने एक सच्चे सेवक और वीर सैनिक की भांति अपना कर्तव्य पालन किया है

वैसे ही, बल्कि उस से भी अधिक, योग्यता, निपुणता तथा तत्परता से सभा के उत्साही कार्यकर्ता और अन्य प्रेमी सहयोगी अपने कर्तव्यपरायणता का यथेष्ट परिचय दें।

अवश्य ही स्वामी जी का यह वियोग—चाहे वह कितने ही दिनों के लिये क्यों न हो—हमें इस समय खल रहा है—बहुत बुरी तरह से खल रहा है। परन्तु हम समझते हैं इस वियोग में भी कोई दैवी रहस्य है। इस से शुद्धि के काम में कुछ नवीन-जीवन, नवीन-स्फूर्ति और नवीन-विशेषता तो आयेगी ही। तप और त्याग का अनुष्ठान योंही नहीं चला जाता। व्यक्ति और समाज, राष्ट्र और धर्म के उत्थान के लिये इस प्रकार के अप्रिय अवसर आना स्वाभाविक और अनिवार्य है। हमें इन संकटों को बड़ी वीरता और प्रसन्नता स स्वागत करना चाहिये। इसी स्वागत में ही समाज और व्यक्ति का विकास स्फुटित होता है। हमें आशा है यह संकट, संकट नहीं, एक बरकत साबित होगी और देखने वाले यह देख लेंगे कि एक चिदानन्द के तप ने अनेक चिदानन्द पैदा कर दिये !! दैव का अनुष्ठान विचित्र होता है !!!

एक सदाशय पूर्ण प्रस्ताव

श्री राजरत्न मास्टर आत्माराम जी आर्यसमाज के रत्न हैं। समाज के सम्बन्ध में उनका अनुभव परिपक्व है और हृदय सदा समाज के भले की बात सोचा करता है। अन्यत्र प्रकाशित उनका प्रस्ताव उसी हृदय का उद्गार है आर्यसमाज के दो दल परिश्रम के दो विभाग (Division of labour) नहीं रह गये हैं, प्रत्युत एक दूसरे के मुकाबलेमें दोनों की बहुत कुछ कार्य शक्ति क्षीण हो जाती है। दोनों दल मिल सके तो समाज की शक्ति अतुल और अविजय हो जाय।

विशाल भारत में 'सार्वदेशिक'

हमने सार्वदेशिक के आषाढ़ अङ्क में प्रचार के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट किए थे। इन विचारों में विदेश प्रचार की कुछ कठिनाइयों का भी उल्लेख था। यह बात विशाल-भारत को कुछ खटकी और उसने अपने श्रावण अङ्क में 'अनुचित निराशा बाद' का शीर्षक देकर कुछ शब्द कह डाले। उत्तर में हमने उनको यह पत्र भेज दिया है। सार्वदेशिक के पाठकों के भी नजर है:—

प्रियवर सम्पादक जी,

गत मास में विशाल-भारत में आपने सार्वदेशिक के मेरे एक नोट का उद्धरण देकर कुछ शब्द विदेशों में वैदिक-धर्म प्रचार के सम्बन्ध में लिखे हैं। आप इस प्रचार में काफी दिलचस्पी लेते हैं, यह सौभाग्य की बात है। किन्तु आप जानते ही हैं कि प्रचार की आवश्यकता हम आप से कम महसूस नहीं करते। हम तो इसका उत्तरदायित्व ही लेकर बैठे हैं। किन्तु उत्तरदायित्व है, इसीलिए हमें संभल कर—सोच-विचारकर काम करना होता है। विदेश में प्रचार का कार्य बहुत आवश्यक और बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु उससे भी ज्यादा जोखम और जवाबदेही का है। इस जवाबदेही की जिम्मेदारी को आपकी अपेक्षा हमें ज्यादा ध्यान में रखना पड़ता है। इसीलिये हमें अपने आशा बाद को तनिक निराशा से मद्धिम बना लेना पड़ता है।

जहां तक होता है हम अयोग्य व्यक्ति प्रचार के लिए नहीं भेजते। जो अपने ही ओर से प्रचार या व्यवसाय के लिये जाते हैं, या जो हमारे सार्वदेशिक या किसी प्रतिनिधि सभा के बिना माध्यम के सीधे ही उन दर्शोंके सभाओं या व्यक्तियों द्वारा बुला लिए जाते हैं, उनके सम्बन्ध में भी हम यथा-

सम्भव अपने प्राप्त अनुभव वहांके लोगों को भेज देते हैं। किसी के सम्बन्ध में अयोग्यता या अनौचित्य की खबर लगने पर, उसके निर्णय करने के बाद, उसकी भी सूचना हम उन्हें दे देते हैं। अब यह बिलकुल मुमकिन है कि योग्य, अनुभवी और अजमाए हुए प्रचारकों के अभाव में कोई नवीन उत्साही व्यक्ति भी किसी प्रकार भेजा जाए और वह वहां इतना वांछनीय न सिद्ध हो! पर ऐसी अवस्था में भी हम अपने कर्तव्य से उऋण होने में देर नहीं करते। हां, यह अवश्य है जब ऐसा कड़ुआ अनुभव सामने आता है, अनहोनी हो जाती है, तो थोड़ा खेद और निराशा होती ही है। परन्तु कर्तव्य-बुद्धि से पैदा हुई इस निराशा को, मुझे विश्वास है आप 'अनुचित निराशावाद' नहीं ठहरायेंगे !!

हम विदेश-प्रचार-कार्य तेजी से उठा लेना चाहते हैं। इसके लिए एक लाख रुपए की जो अपील निकाली गई है, वह साथ भेजता हूं! पत्र में प्रकाशित कर अपने पाठकों के पास तक पहुंचाने की कृपा करें। धन हो जाने पर हम इस बारे में ज्यादा सतर्क, ज्यादा सक्षम हो सकेंगे, कि केवल योग्य प्रचारक ही विदेशों में जाएं। मुझे विश्वास है आप इस शुभ कामना में हमारे साथ होकरर हमारा हाथ बटायंगे।

गुरुकुल वृन्दावन के रजत-जयन्ती के अवसर पर इस प्रश्न पर विधिवत विचार करनेके प्रस्ताव के लिये हम आपके अनुगृहीत हैं। इसका प्रयत्न किया जायगा और उक्त विचार के समय हम आपके सहयोग का विशेष ध्यान और विश्वास रक्खेंगे।

हमारी ओरसे यह विश्वास दिलाना कि "हमने कंधा नहीं डाल दिया, हम कभी कन्धा नहीं डालेंगे" यह निरर्थक सा है। क्योंकि, इसका प्रमाण आपको हमारी सभाकी कृतियों से भरपूर मिलता रहेगा। हम पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि प्रवासी भारतीयों में आर्य संस्कृति के प्रचार का कार्य अधूरा नहीं छोड़ा जायगा!

इस पत्र को विशाल-भारत में प्रकाशित कर उन लोगों के पास पहुंचा दें, जिन के पास आपका अनुचित निराशावाद पहुंचा है।

विशेष कृपादृष्टि बनाये रक्खें।

भवदीय—

आनन्द भिक्षु सरस्वती

एक आवश्यक योजना!

अन्यत्र विदेश-प्रचार कार्य के लिए एक लाख की अपील प्रकाशित है। अपील एक लाख की है, काम न जाने कितने लाखों का है, क्योंकि, यह काम धर्म का है। काम लाखों रुपयों का नहीं, लाखों जानों का है, लाखों जानोंके बनने-बिगडने का है। हम ज्यादा नहीं चाहते, सिर्फ आर्य सज्जनों का ध्यान इस ओर दिला देना चाहते हैं। इस धर्म की माँग पर उनके धर्म-प्रेम की परख हो जायगी। हमें पूरा विश्वास है, समाज इस परख में कच्चा नहीं उतरेगा। अपील पूरी हो जायगी और देश-देशान्तरों में वैदिक-संस्कृति का सिक्का जमानेका काम जोरों पर चल निकलेगा।

जहरीली पुस्तक

किन्हीं मि० दुर्रानी की लिखी और तबलीग़ द्वारा प्रकाशित एक गन्दी पुस्तक को अनुचित प्रसिद्धि मिल गई है। अच्छी अवस्था तो यह होती, जब ऐसी गन्दगी लोगों की उपेक्षा के कारण अपनी स्वाभाविक मौत मर जाती! परन्तु लोगों में अभी गन्दी बातें सुनने में एक प्रकार का रस

और मज़ा लेने की आदत है, और इस से प्रायः चतुर और स्वार्थी लोगों को अपने स्वार्थ-सिद्धि का अच्छा खासा अवसर मिल जाता है !

इस पुस्तक में आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द को खुल्लम—खुल्ला कोसा गया है । इसलिये, हमें विश्वास है, यह अधिकांश मुसलमानों को रुचिकर मालूम हुई होगी। किन्तु यहां तक तो डर न था ; अंदेशा इस बात का भी है कि, यह गन्द-भरी पुस्तक किन्हीं भोले अंग्रेजों और विदेशियों में भी ज़हर न फैला दें । इसी कारण इस पर ध्यान देना ज़रूरी हो गया !

महात्मा गांधी जैसे ठंडे, निष्पक्ष और सच्चे जी से निर्णय देने वाले व्यक्ति ने इस पुस्तक को अवमाननीय और घृणय ठहराया है, और सलाह दी है, "लेखक उस पर क्षमा मांगें, और उसे वापस ले ले" । यदि हमें आशा होती कि लेखक में इतनी सद्बुद्धि या सत्प्रेरणा जग सकती है तो हम महात्मा जी की इस सलाह पर जोर देकर ही चुप रह जाते। किंतु मालूम होता है लेखक महाशय तो इस से बिलकुल शून्य है, और वास्तव में उसकी मन्शा ही खोटी है ।

पुस्तक के इतिहास में यह एक शङ्का की दृष्टि से देखे जाने योग्य बात है कि शुरू में पुस्तक पर छापेखाने का नाम नदारत था। काफी दिन बाद इस भारी भूल (या शरारत ?) को एक चिट द्वारा प्रेस का नाम देकर दूर किया गया है।

इस प्रकार गन्द से भरी हुई और धोखे—धड़ी से फैलाई जाने वाली किताब को हम, समझ नहीं पड़ता, कमीनेपन के हद से आगे क्या कहें ? ऐसे कमीनेपन का रोकना हम समझते हैं सरकार के ऊपर आयद है । हमें विश्वास है यदि उसका, सब का, एकसा हित चाहने का और परस्पर उचित भाव कायम रखने का दावा ठीक है तो सरकार अपने कर्तव्य को निभा दिखाएगी ।

किताब अच्छी अंग्रेजी और कमीने लहजे, में लिखी गई है । जगह-जगह उसमें, जिसे युग ने ऋषि और महापुरुष माना, उसपर ऐसी कुत्सित, कदर्य, आक्षेप किये गये हैं कि पढ़ कर क्षोभ आए बिना नहीं रहता। अचरज नहीं उस क्षोभ में कोई आर्य, 'सेर' का 'सवा सेर' में जवाब दे ही बैठे। अचरज तो न होगा, पर हम ऐसी बातकी सराहना नहीं कर सकेंगे। लेकिन तो भी आर्य नर जगत को यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वैसी, हालत में उस सवा-सेर जवाब का दोष समाज के सिर नहीं रहेगा।

उस पुस्तक का शिष्ट जबाव उतना ही कारगर हो सकता है जितना कि गाली के जवाब में मीठी बात ! पर वैसे जवाबों की अब भी कमी नहीं है। आर्य सिद्धांतों का अकाट्य प्रतिपादन कितने ही ग्रन्थों में है, किंतु निस्सन्देह वह उनके काम का नहीं है, जिनके या तो आंखे ही नहीं हैं या हैं तो सदा गन्द पर ही जाती हैं। इस तरह हमारे लिये जो शिष्टता की मर्यादा है—उसे इच्छा होने पर भी हम नहीं तोड़ सकते। अब इस बेहूदगी और बदतमीजी के निराकरण का क्या और उपाय हो सकता है ? यह विचारणीय है। यदि कोई विशेष उपाय देख पड़ा, तो वह आर्य जगत के सामने आयेगा ही !

इस बीच में हम यही करें कि, पुस्तक के प्रति अपनी घृणा निकाल बाहर कर शिष्ट संसार के सामने रखदें और अपने काम में लगे रहें।

वीर प्रतिज्ञा

परदा स्त्री-समाज के हितों का कितना घातक है ? देश और जाति के उत्थान में इस से कितनी

भयंकर बाधा पड़ रही है? यह बतलाने की जरूरत अब नहीं रही। समय बदल गया। बातें बनाने का जमाना लद गया। अब तो कर-गुजरने और कर दिखाने की बात है। परदे के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है परदे को एक दम दूर करने, हटा देने और फाड़ डालने की। परदा सतीत्व की रक्षा मे सहायक नहीं, उल्टा बाधक है, घातक है। पातिव्रत्य की रक्षा देवियों को परदा कराने से नहीं, उन्हें बलात् काल-कोठरी में बन्द रखने से नहीं होगी। वह तो एकान्त शुद्ध और पारस्परिक प्रेम पर निर्भर है। वह किसी पर जबरदस्ती या खामोखाह लादने की वस्तु नहीं है। उसका संबंध हृदय से, हृदय की पवित्रता से है, जो सतीत्व 'छुई मुई' है, जो सतीत्व चार ग्रह कपड़े के हट जाने से काफूर की तरह उड़ सकता है, जो सतीत्व चार दीवारी के बाहर की हवा से बिगड़ सकता है, हां, जो सतीत्व जरा दृष्टि-कुदृष्टि पड़ने से कुम्हला सकता है, वह सतीत्व नहीं — सतीत्व का उपहास है, ढोंग है। एक दम विश्वास की वस्तु नहीं, पूजा के योग्य नहीं। हमें वह एकदम अवांच्छनीय है। हम तो उस सतीत्व और पातिव्रत-धर्म का आदर करते हैं, जिसको रावण की तलवार और कीचक का अत्याचार डिगा न सका। हिन्दू-समाज में सदा इसी सतीत्व, इसी पातिव्रत-धर्म का मान रहा। और हमें यह प्रकट करते हुए क्या अभिमान नहीं है कि आज भी, इस पतितावस्था में भी, हिन्दू-समाज में सती--सीता और देवी--द्रौपदी के समान कितनी ही देवियां मौजूद हैं जो समय पर न केवल अपने धर्म की रक्षा कर सकती हैं बल्कि गुण्डो-अत्याचारियों को स्वयं दंड भी देने से नहीं चूकतीं !!

•

प्रसन्नता है कि चौथी अगस्त को आर्य समाज केसरगंज अजमेर के साधारण अधिवेशन में वहां की सब आर्य देवियों ने परदे के विरुद्ध आवाज उठाने और भविष्य में परदा न करने की प्रतिज्ञा की। हम इस साहसपूर्ण कार्य का हृदय से अभिवादन करते हैं। आशा है अन्य स्थानोंमें भी इसका अनुकरण किया जायगा।

वैदिक साहित्य

गत ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दि के पुण्य अवसर पर आर्य जनता तक शुद्ध सिद्धान्तानुकूल वैदिक साहित्य पहुँचाने के लिए दयानन्द ग्रंथमालाको तो छपवाया ही गया था पर उसके अतिरिक्त आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध तथा प्रकाण्ड विद्वानों से भी आवश्यक विषयों पर कुछ पुस्तकें लिखाई गईं, और उन्हें शताब्दि सभा की ओर से प्रकाशित कराया था। ये पुस्तकें कैसी हैं? कितनी उपयोगी है? इस सम्बन्ध में हमारा कुछ कहना और आप का कुछ सन्देह करना दोनों व्यर्थ हैं। इनमें कितनी ही पुस्तकें आर्य शिक्षा संस्थाओं की पाठ्य--विधि में सम्मिलित हो चुकी हैं, और कितनी ही अभी विचाराधीन हैं। हम चाहते हैं कोई भी आर्य, आर्य परिवार, आर्य समाज और आर्य संस्थायें इन पुस्तकों के बिना न रहें। और इस अमूल्य वैदिक साहित्य का देश-विदेश में,—घर-घर; नगर-नगर में—प्रचार हो —खूब प्रचार हो। आर्य शिक्षा संस्थाओं को तो इन पुस्तकों को किसी--न--किसी रूप में पाठ्य क्रम के लिए, पारितोषिक के लिए, पुस्तकालय के लिए—अपने यहां अवश्य ही स्थान देना चाहिये।

•

हमें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि ये पुस्तकें किसी व्यापारिक दृष्टि से नहीं तैयार कराई हैं। सभा के सामने शुद्ध—एक दम शुद्ध धर्म-प्रचार का भाव था और इन्हीं भावों

से प्रेरित होकर हम भी ये पंक्तियां आपके सामने रख रहे हैं। आशा है आप अवश्य ध्यान देंगे।

एक बात और! प्रत्येक आर्यसमाज के मंत्री महोदय से प्रार्थना है कि वह कृपया हमारे इस निवेदन को समाज के साप्ताहिक सत्संगमें सुना दें और इस अपूर्व वैदिक-साहित्य के प्रचार के पुण्य-कार्य में हमें अपना हार्दिक सहयोग प्रदान करें।

वेद प्रचार सप्ताह

२० अगस्त से २८ अगस्त तक

सदा की भांति इस वर्ष भी आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत ने 'वेद-प्रचार-सप्ताह' नियत किया है। प्रत्येक आर्य स्त्री-पुरुष तथा आर्य-समाज को इसे सफल बनाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये। सप्ताह का कार्य-क्रम इस प्रकार है:—

श्रावणी पर्व ता० २० अगस्त से मनाया जाना है। प्रत्येक आर्य परिवार में सूर्योदय से पारवारिक यज्ञ की योजना की जाय! इस यज्ञ से निवृत हो ७॥ बजे तक समस्त आर्य सज्जनों को आर्य-मन्दिर में पहुंच जाना चाहिये। मन्दिर में यज्ञ मंडप पूर्व से ही विशेष प्रकार से सुसज्जित किया जाय। नियत समय पर वेद-पाठ प्रारम्भ हो और उसके पश्चात् आर्य सार्वदेशिक सभा द्वारा निश्चित 'पर्व पद्धति'के अनुसार पृष्ठ सं० १०६ से १०६ तक का सम्पूर्ण विधान किया जाय। पूर्णाहुति के पूर्व प्रत्येक आर्य नर-नारी को स्वाध्याय का पावन व्रत धारण करना चाहिये। यह दिन विशेष प्रकार से वेद के परायण में व्यतीत हो, और रात्रि को आर्य मन्दिरों में वेद कथा की जाय।

कृष्ण जन्मोत्सव-पर्व की समाप्ति ता० २८ अगस्त को होती है। जन्मोत्सव की उपलक्ष्य में आर्य मन्दिरों में प्रातःकाल विशेष यज्ञ किया जाय। प्रत्येक आर्य नर-नारी को कुछ समय तक इस दिन, आदर्श कर्मयोगी श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन चरित्र का मनन करना चाहिये। ट्रैक्ट तथा परचों द्वारा कृष्ण का पावन संदेश जनता में बांटा जाय तो अच्छा है। रात्रि को मंदिरों में अथवा अन्य समाजिक स्थानों पर कृष्ण के संदेश के सम्बन्ध में भाव पूर्ण गम्भीर भाषणोंकी योजना की जाय। सप्ताहके शेष दिनों में प्रति दिन प्रातःकाल मन्दिरों में विशेष यज्ञ हो, मध्यान्ह में वैदिक-सूत्र, वैदिक-संध्या, स्वस्तिवाचनादि छपवाकर वितरण किये जाए, और रात्रि में मन्दिरों में वेद-कथा हो।

सभा के निश्चयानुसार प्रत्येक आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को न्यून से न्यून एक रुपया प्रांतीय वेद-प्रचार फंड के लिए संग्रह करना चाहिए।

——:०:——

यदि जीवन—ज्योति—प्रकाश विश्व में,
दिनकर सम चमकाना है।
अटल लक्ष्य है देश—धर्म का,
मरते नहिं बिसराना है॥

"वैदिक"

——:०:——

जीवन—संग्राम

———:o:———

(ले०—श्री० जी० ड० जोशी)

——:o:——

एकायक आंख खुली। वह दिव्य मूर्ति आखों से ओझल थी। कहां वह दिव्य मनोहरता!! भावुक ने भावुकता की सारी मानवीय आशायें, सारे मानवीय प्रयत्न, उसी मूर्ति की खोज में केन्द्रित कर डाले, किन्तु यह सब निष्फल, निरर्थक और व्यर्थ!!!

❀ ❀ ❀

हृदय में किंचित् एक क्षणिक आशा का बीज प्रस्फुटित हुआ। उसी बीज के अंकुर में निर्मल आशाका एक मधुमय आभास धीरे धीरे अवनितल की अनुपम अरुणिमा का गुण गान करने लगा। उसी गुण गान में प्रकृति की रमणीयता का अलौकिक वर्णन अनुपम सौन्दर्य, अभूतपूर्व परिस्थिति का एक प्रभावोत्पादक और कारुणिक दृश्य दिखाई दिया।

❀ ❀ ❀

ओह! दृश्य क्या था? इस कोलाहलमय जगत का एक नग्न और बीभत्स चित्र!! एक निरीह और अनिर्वचनीय गोरखधन्धा!!! एक ओर, तरह तरहके विहंगम भांति भांति का सुर अलापते थे। हय, गज, स्यन्दनादि में सुसज्जित राजा, महाराजा अपने शान, गुमान, अभिमान में मस्त हो झूमते थे। प्रकृति भी बसन्त के सुन्दर पुष्पोद्यानमें सुरभि सुमनोंसे हिलमिलके मन्द मंद पवन के झोकों से वृक्षों व पल्लवादि से नाच रही थी।

❀ ❀ ❀

दूसरी ओर, अस्थिचर्मावशिष्ट दीन मरणोन्मुख, अस्थिचर्मों का एक नारकीय दृश्य था! निर्जीव, जनशून्य, बीहड़ रेगिस्तान के संतप्त व रसहीन मैदान थे! क्षुधा, तृष्णा व निरवलम्ब का एक दुःखमय रंग स्थल था!!!

❀ ❀ ❀

इस प्रबल द्वन्दयुद्ध का बृहद् आवरण सूर्यास्त की कालिमा के पश्चात् अधिकाधिक भयानक होने लगा, हृदय कांपने लगा, धमनियां धक धक करने लगीं। कलेजा सख्त हो गया। आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी, और भावुक चिल्लाकर रोने लगा।

❀ ❀ ❀

अनन्त अन्तरिक्ष के मध्यस्थल से आश्वासन की एक सौम्य वाणी सुनाई दी—"रोता है क्यों ऐ भोले पथिक! यह संसार है संसार!! इसी का नाम जीवन संग्राम है, इस अरण्य रोदन से, इस करुणा-क्रन्दन से काम नहीं बनेगा। यदि सफलता चाहता है तो कमर बांधकर इस महासंग्राम के लिए तय्यार होजा।

———:*:———

साधु-सङ्गठन की जरूरत

—:o:—

(ले०— राजरत्न श्रीयुत मास्टर आत्माराम जी वानप्रस्थ, बड़ोदा)

(२)

आज कल लाहौर से एक उच्च-कोटि का अंग्रेजी पत्र 'People' (पीपल) निकलता है। उस में स्वर्गीय पंजाब-केसरी श्रीयुत लाला लाजपतराय जी की स्वयं लिखित जीवनी प्रकाशित हो रही है। इस उत्तम जीवनीके १५ अध्याय उसमें समाप्त हो चुके हैं। जिस समय यह जीवनी पुस्तकाकार में छप कर जनता के हाथ में आवेगी उस समय आर्यसमाज के इतिहास का एक परम आवश्यक अंग लिखने के लिये आर्यसमाज के संन्यासी, वानप्रस्थी, तथा गृहस्थी तीन प्रकार के सेवकों वा नेताओं को उत्तम सामग्री मिल सकेगी इस समय संन्यास-मंडल के संगठन न होने के कारण आर्यसमाज में शास्त्रीय दृष्टि से विरुद्ध नवयुवक आर्य सज्जनों के लेख जो निकल रहे हैं, वे लेखक यदि आजकल लाहौरका नामी पत्र 'पीपल' पढ़ लेते तो उनको मालूम हो जाता कि श्रीयुत उपाध्याय पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० तथा स्वयं पंजाब केसरी ला० लाजपतराय जी ऋषि दयानन्द को समाधी अवस्था में निर्भ्रान्त मानने को तैयार नहीं, पंजाब-केसरी यह भी लिखते हैं कि पंजाब में हमारे अन्दर दो दल होने का कारण यही था।

महामुनि पं० गुरुदत्त जी ने आर्य-शास्त्रों के आधार से अपने भाषणों में स्वामी दयानन्द को उनके वेदवक्ता, नैष्टिक ब्रह्मचारी तथा पूर्ण योगी होने के कारण ऋषि वा महर्षि कहा, यदि कोई उत्साही युवक भक्ति के आवेश में आकर कर्मवीर तथा धर्मवीर वा अमरशहीद श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी को धर्मवीर के स्थान में ऋषि शब्दका प्रयोग उनके लिए करता हैं, तो वे सज्जन निरुक्तादि शास्त्र तथा आर्यसमाज के वर्तमान इतिहास से अनभिज्ञ हैं, ऐसा माना जायगा।

विदित हो कि 'टंकारा' में ऋषि शताब्दी के अवसर पर जब समस्त भारतवर्ष के आर्य-समाजिक संन्यासी उपस्थित थे तो उस समय बम्बई प्रान्त के आर्यसमाजियों के नामी गृहस्थी नेता तथा आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई प्रान्त के प्रधान श्रीयुत डाक्टर कल्याणदास जी ने कहा था कि इस समय आर्यसमाज जगत् में प्रथम कोटि के आदर्श संन्यासी, परम त्यागी होने के कारण स्वामी सर्वदानन्द जी ही हैं। उस समय स्वर्गीय श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भी उपस्थित थे. उन्हें शहीद होने के कारण समग्र संसार धर्मवीर वा अमरशहीद कह रहा है किन्तु यदि कोई नवयुवक भक्त उनको ऋषि कहने वा लिखने की चेष्टा करता है, तो मालूम होता है कि वह अनधिकार चेष्टा कर रहा है। इसलिये आर्य संन्यास-मंडल के संगठन की बड़ी भारी जरूरत मुझे प्रतीत होती है। अभी पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी को आर्य-समाज ऋषि पदवी नहीं दे रहा तो समझना चाहिए कि ऋषि शब्द बड़ा ही महत्वपूर्ण है। मंत्र द्रष्टा योगी ही ऋषि कहला सकता है। पं० श्रीलेखराम जी शहीद होने के कारण पं० तथा धर्मवीर कहलाए, किन्तु ऋषि नहीं। इतिशम्

—:o:—

सार्वदेशिक सभा अन्तर्गत प्रवासी-विभाग

——:o:——

(ले०—श्री० स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी)

——❀——

उद्देश्य

विदेशों में वैदिक धर्म प्रचार का आवश्यकतानुसार प्रबन्ध और निरीक्षण करना। किन किन उपनिवेशों में प्रचार कार्य हो रहा है और कौन कौन उपदेशक वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप से प्रचार कार्य कर रहे हैं, इन सब बातों की पूरी जानकारी प्राप्त करना, और अवस्था के अनुसार प्रचार की पद्धति निश्चित करना तथा तदनुसार कार्य करने के लिये उपदेशकों को आदेश देना। औपनिवेशिक आर्य समाजों का इतिहास संकलित और सुरक्षित करना तथा वर्तमान स्थिति की पूरी सूचनायें (Information) प्राप्त करना।

प्रवास—मन्त्री

इस विभाग को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये एक विशेष प्रवास-मन्त्री (Colonial Secretary) की नियुक्ति होनी चाहिये। प्रवास मन्त्री ऐसा होना चाहिये जो प्रवासी भारतीयों की परिस्थिति से यत्किञ्चित परिचित हों अथवा इस कार्य में जिन की अभिरुचि हो और जो इस विषय का विशेषज्ञ बनने की इच्छा रखते हों। प्रवास मन्त्री के जिम्मे ही प्रवासविभाग का सम्पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये, और प्रवास मन्त्री अपने कार्यों के लिये अन्तरंग सभा के समक्ष उत्तरदायी हो।

कार्यालय का संगठन

प्रवासी–विभाग का कार्यालय सुसंगठित और सुव्यवस्थित होना चाहिये। निम्न लिखित विधियों को कार्यरूप में परिणत करने से इस उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है:—

(१) समस्त उपनिवेशों की अलग अलग फाइल बना ली जाय।

(२) जिस उपनिवेश का पत्र या विवरण मिले उस उपनिवेश की फाइल में दाखिल कर लिया जाय।

(३) भारतवर्ष के विविध समाचार पत्रों पर दृष्टि रखी जाय और उन में जब कभी औपनिवेशिक आर्य समाजों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल कोई खबर छपे तो उस को काट कर फाइल में दाखिल कर लिया जाय।

(४) जिन जिन उपनिवेशों में आर्य समाजों की स्थापना हो चुकी है अथवा जहां जहाँ स्थापित किया जाना आवश्यक है—उन उन उपनिवेशों के नकशे, भूगोल और इतिहास का संग्रह किया जाय।

(५) प्रत्येक उपनिवेश के आर्य मन्दिरों, आर्य संस्थाओं, आर्य नेताओं और आर्य कार्यकर्ताओं के चित्रों का संग्रह किया जाय।

(६) इन सामग्रियों का भी विषय के विचार से विभाजन किया जाय अर्थात् प्रत्येक बिषय की अलग अलग फाइल बनाई जाय और जब जिस विषय के सम्बन्ध में कुछ जानने की आवश्यकता पड़े, तत्क्षण उस विषय की फाइल में उसको देख लिया जाय।

(७) तमाम कागजातों और सामग्रियों की एक अलग सूची रहे जिस को देखने से यह मालूम

पड़ जावे कि कौन सा कागज किस फाइल में है। इस से कार्य करने में बड़ी सुविधा होगी।

प्रवासी-प्रचारक

विदेशों में वैदिकधर्म प्रचारार्थ किसी उपदेशक को भेजते समय निम्न लिखित सूचनाओं पर ध्यान रखना आवश्यक है:—

(१) किसी भी प्रचारक को भेजने से पहले उस की शिक्षा, योग्यता और सदाचार की पूरी जांच कर ली जाय। जो प्रचारक अंग्रेजी में व्याख्यान देने की योग्यता न रखता हो उन को समुद्र-पार भेजना व्यर्थ है। अंग्रेजी के ज्ञाता होने से ही वे मद्रासियों और जन्म--प्रवासियों (Colonial-born) भारतीयों में अच्छी तरह से वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं।

(२) जिन उपदेशकों को सार्वदेशिक सभा की ओर से उपनिवशों में प्रचारार्थ भेजा जाय, उन को एक विशेष प्रकार का चोगा दिया जाय। व्याख्यान, उपदेश या प्रबचन के समय उस चोगा (गाउन) को धारण कर लेना प्रचारक के लिये आवश्यक हो।

(३) औपनिवेशिक प्रतिनिधि सभाओं को सूचना दे दी जावे कि वे सार्वदेशिक सभा की अनुमति के बिना किसी भी उपदेशक को न बुलावें और अगर कोई स्वतन्त्र रूप से जा धमके तो उस की उपेक्षा की जाय।

(४) जिन उपदेशकों को सार्वदेशिक सभा भेजे, उन का मार्ग-व्यय सभा की ओर से दिया जाय और उन का शेष व्यय औपनिवेशिक प्रतिनिधि सभाओं के ही जिम्मे रहे।

(५) सार्वदेशिक सभा प्रत्येक उपदेशक की योग्यता के अनुसार उन का व्यय और वेतन अवश्य निश्चित कर दे और उस की सूचना औपनिवेशिक प्रतिनिधि सभा को दे दे।

(६) उपदेशकों से यह भी शर्त करा ली जाय कि वे उपनिवेशों में पहुंच कर वहां की प्रतिनिधि सभाओं के आधीन ही कार्य करेंगे, स्वतन्त्र रूप से मनमानी नहीं।

(७) प्रत्येक प्रचारक को यह भी कार्य सौंपा जाय कि यथावकाश सार्वदेशिक सभा के वैदेशिक प्रचार निधि के लिये धन भी संग्रह करें, और इस मद में जो धन मिले वह सार्वदेशिक सभा के पास भेज दिया जाय। प्राप्त धन इसी मद में व्यय हो।

(८) प्रत्येक प्रचारक अपने कार्य्य का त्रैमासिक विवरण सार्वदेशिक सभा के पास भेजने के लिये बाध्य हो।

प्रकाशन—विभाग

प्रवासी--विभाग के अन्तर्गत एक प्रकाशन-विभाग का होना भी आवश्यक है। इस विभाग के द्वारा निम्न लिखित कार्य होना चाहिये—

(क) उपनिवेशों से मिलने वाली सूचनाओं के आधार पर आर्य पत्रों में वैदेशिक प्रचार का विवरण छुपाया करना। कमसे कम इस विभाग की ओर से त्रैमासिक प्रचार विवरण तो अवश्य पत्रों में जाना चाहिये। इस से आर्य जनता को विदित होता रहेगा कि किन किन उपनिवेशों में और किस ढंग से वैदिक धर्म का प्रचार हो रहा है, इससे जनता का उत्साह बढ़ेगा और इस विभाग की उपयोगिता सब की समझ में आ जावेगी।

(ख) इस विभाग में अंग्रेजी, तामिल, गुजराती और हिन्दी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, सन्ध्योपासना, आदि आर्य ग्रन्थ विक्रयार्थ प्रस्तुत रहना चाहिये और औपनिवेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाओं और आर्य समाजों को उचित मूल्य पर दिया जाना चाहिये।

(नोट—इस विभाग की उपयोगिता अनुभव सिद्ध है। मैं ऐसे अनेक प्रवासी भारतीयों को जानता हूं जो अमुक अमुक पुस्तक विक्रेताओं के पास आर्य ग्रन्थ के लिये अग्रिम मूल्य भेज कर पश्चात्ताप कर रहे हैं। उन को न पुस्तक ही मिली और न पत्र का उत्तर ही। दूसरी बात यह है कि उपनिवेशों में प्रचार के लिये अंग्रेजी और तामिल के सत्यार्थ प्रकाश की नितान्त आवश्यकता है, किन्तु पैसे देने पर भी उन का मिलना कठिन हो रहा है। बेचारे प्रवासी आर्य भाइयों को यह भी नहीं मालूम कि अंग्रेजी और तामिल के सत्यार्थ-प्रकाश की प्राप्ति कहां से हो सकेगी? अतएव सार्वदेशिक सभा के प्रवासी--विभाग को इस काम को अपने हाथ में लेना बहुत ज़रूरी है इस से सार्वदेशिक सभा को लाभ ही होगा, हानि नहीं।)

उपनिवेशों से ज्ञातव्य बातें प्राप्त करने की विधि

प्रत्येक औपनिवेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा जावे कि निम्नलिखित प्रश्नावली का उत्तर देने का कष्ट उठावें।

(क) आपके उपनिवेश में पहले पहल कब आर्य समाज की स्थापना हुई?

(ख) इस समय आपके उपनिवेश में कितने आर्य समाज हैं?

(ग) किन किन समाजों के कितने कितने सदस्य और उन सदस्यों के नाम क्या हैं?

(घ) किन किन समाजों के आधीन शिक्षा सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की संस्थाएं हैं और उन संस्थाओं की अवस्था क्या है?

(ङ) आर्य्य प्रतिनिधि सभा के आधीन कितने समाज हैं और कितने समाज आपकी सभा से पृथक हैं? उनके पृथक रहने का कारण क्या है?

[च) आपके उपनिवेश मे अनुमानतः आर्यसमाजियों की संख्या क्या होगी, और उनमें कितने हिन्दी, कितने गुजराती, कितने तामिल और कितने अन्य भाषा भाषी होंगे?

(छ) आपके उपनिवेश में किन किन समाजों के पास अपना मंदिर है? उनमें से प्रत्येक मंदिर की लागत क्या होगी?

(ज) अबतक आपके उपनिवेश में कौन कौन आर्योपदेशक प्रचारार्थ जा चुके हैं और उन के प्रचार का ढंग कैसा रहा है? वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करते रहे हैं अथवा किसी सभा के आधीन रह कर?

[झ] आपके उपनिवेश में क्रिश्चियन, मुसलमान और सनातनी हिन्दू भाइयों का आर्यसमाज के प्रति कैसा व्यवहार रहा है और इस समय कैसा है?

[ञ] किस किस भाषा में वैदिक ग्रन्थ होने में आपके उपनिवेश में भलीभांति प्रचार कार्य हो सकता है?

[ट] आपके उपनिवेश में कितने उपदेशकों की आवश्यकता है और आपकी सभा कहां तक उन का व्यय भार स्वीकार कर सकती है?

(नोट-उपर्युक्त प्रश्नावली का उत्तर प्राप्त करने के बाद प्रत्येक औपनिवेशिक प्रतिनिधि सभा को आदेश किया जाय कि वे सार्वदेशिक सभा को हर साल अपना वार्षिक-विवरण भेजा करें। उसमें केवल प्रतिनिधि सभा की ही नहीं प्रत्युत उपनिवेश भरके आर्य समाजों की अवस्था और उनके कार्यों की रिपोर्ट हो।)

विचार—तरङ्ग

——:o:——

(ले०—श्री० पं० नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ)

——:o:——

एक बड़े शहर में……नाम छुपाने से क्या लाभ,-कलकत्ता में, हम कई सामाजिक भाई बड़े बाजार में जा रहे थे, इतने में हमने क्या देखा कि एक मुसलमान और एक पठान की लड़ाई हो गई। पठान बूढ़ा था और मुसलमान था युवा पट्ठा—मुसलमान ने पठान की डाढी पकड़ कर उसको नीचे डाल रक्खा था। हमको तरस आया और हम में से दो भाइयों ने उसको जा छुडाया। जब आगे चले गये तो हम में से एक भाई बोल उठे कि मरने देते सुअरों को, तुमने क्यों छुड़ाया ? हमने कहा क्या हर्जा है, अच्छी ही बात की—उत्तर मिला कि नहीं, मुसलमानों में कोई भला आदमी हो ही नहीं सकता—हम तो इन विचारों को सुनकर दंग रह गये।

× × ×

एक आर्यकुमार सभा के नवयुवक सदस्यों से प्रश्न करने पर उनमें से एक युवक ने उत्तर दिया कि आर्यकुमारों का उद्देश्य "सेवाभाव" है। हम ने पूछा यदि कोई मुसलमान अत्यन्त रुग्ण हो तो भेद भाव छोडकर क्या उसकी वैसी ही सेवा करोगे जैसी कि एक हिन्दू अथवा आर्य भाई की ? आर्य कुमार तड़क कर बोला, शास्त्री जी, यह बात कैसे हो सकती है ? मैं तो मुसलमानों से बात भी नहीं करना चाहता, उनकी सेवा क्यों कर कर सकता हूं। हमने उत्तर दिया, तुम्हारा सेवा भाव संकुचित सेवा भाव है—"मित्रस्य चक्षुषा' का सेवा-भाव नहीं है। उत्तर मिला 'आप जो कुछ समझिए'

× × ×

आर्यसमाज में अक्सर शिकायत हो रही है कि आर्यों के लड़के आर्य नहीं बनते, इसका कारण कोई कुछ बताता है और कोई कुछ। उस दिन मसूरी में हम कई संस्थाओं के लोग एकत्रित हुए थे, प्रसंग वश यही जिक्र चल पड़ा—जितने मुंह उतनी बातें...बहुत वाद विवाद के पश्चात् सब की यह एक सम्मति हुई कि जिस प्रकार हम संख्या में बढ़ रहे हैं, गुणों में हमारा भयंकर ह्रास हो रहा है।

× × ×

संस्थावाद के विषय में यह निश्चय हुआ कि वर्तमान संस्थाओं से आर्यसमाज का गौरव तो है, किन्तु उनसे इतना लाभ नहीं पहुंच रहा जितना कि उन पर परिश्रम, व्यय, दीर्घोद्योग, किया जा रहा है। एक बड़े संस्थाधिप से कहा गया कि आपकी संस्था की तो बड़ी शिकायतें सुनने में आ रही हैं। झट उत्तर मिला "और जगह कौनसे मोती बिखर रहे हैं"—है तो यह संस्थाधिपों का स्वमन को समझाने का अच्छा प्रकार—

× × ×

"सब जगह ऐसा ही होता है, अमुक विषय मे हमारे यहां तो औरों से अच्छा हो है"-यह है आत्मवञ्चना का सुन्दर दृष्टान्त ! ! !

× × ×

जब माता-पिता बालक को गुरुकुलों में प्रविष्ट कर लेते हैं तब उनके मन में और ही स्कीम

रहती है। गुरुकुलों की अपनी २ स्कीम अगल रहती है। लड़का जब समझदार हो जाता हैं तब वह अलग अपनी एक और ही स्कीम घड़ लेता है। दानी महाशय दान देते समय मनमें अपनी विशेष स्कीम का ध्यान रखकर देते हैं। पब्लिक की स्कीम सब से भिन्न ही रहती है। इस प्रकार पांच अथवा छः स्कीमों में कोई लड़का पार होता है ऐसा कचित ही होता है कि गुरुजन और शिष्यमंडल की स्कीम मिलती हो।

× × ×

आर्यसमाज के संन्यासी व्यापारी बुद्धि के संन्यासी है। दो चार व्यक्तियों को छोड़कर संभवतः सभी अपनीं थोड़ी बहुत पूंजीं रखते हीं हैं। ये लोग अपनी पूंजीं तथा देश का मोह छोड कर जावा, बाली, सुमात्रा, लंका, काम्बोडिया आदि स्थानों में जा बसें तो हिन्दू धर्म तथा आर्य-संस्कृति का पुनरुद्धार हो सकता है। फीजी, पूर्व अफरीका न्यूजीलैंड, मारीशस, न्यू गायना आदि स्थानों में ये लोग जाकर वसें तो आर्यसंस्कृति के प्रचार का मार्ग कितना सुलभ होगा इसका अनुमान आप ही लगाइये—बात यह है लगन के 'संन्यासी' थोड़े हैं, जो थोड़े हैं वे इतने योग्य नहीं कि जाकर परदेश में प्रभाव डाल सकें। आर्य समाज में भी चेले-चाटों का रोग लग गया।

× × ×

लोग शिकायत कर रहे हैं कि आर्यों के अच्छे अच्छे कार्यकर्ता पुरुष समाज का काम छोड़ कर "राष्ट्रीय आंदोलन" में समस्त समय देने लगे हैं इससे समाज के कार्य में बाधा पड़ती है। समाज का काम रुकता जाता है। हम नहीं समझते कि क्या हानि है। हमारा तो विचार है कि प्रत्येक देश व्यापी आंदोलन में आर्य पुरुषों को मनोयोग से योग देना चाहिए। इससे आर्यसमाज का गौरवही बढ़ता है,हानि नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि जा कार्यकर्ता आर्यसमाज के गृह कलहों से तंग आकर दूसरी ओर लग जाते हैं वें भी एक प्रकार से हित साधन ही करते रहते हैं। जिनकी कार्यशक्ति अधिक है और आर्यसमाज को संकुचित क्षेत्र पाते हैं वे करें भी क्या? उनकों विस्तृत क्षेत्र ढूंढना ही पड़ता है।

× × ×

आर्यसमाज में एक बड़ा रोग है कि इसमें भी नौकरशाही का साम्राज्य है। प्रार्थना, उपासना, खण्डन-मण्डन सब ठीक चलता रहेगा किन्तु जहां सरकारी अत्याचार की बात आयी कि ये लोग घबराये। आर्यसमाज के सत्याग्रह इन्हीं लोगों के कारण फेल हो जाते हैं। कहां स्वामी जी का लेख कि "अन्यायी चक्रवर्ती का अन्याय भी सहन न करे" कहां हमारे ये नौकरशाही के पिट्ठू। जब तक आर्यसमाज के अधिकार सूत्र सरकारी नौकर, सरकारी ठेकेदार, पेनशनर क्लार्क, वकील, मुखत्यार, रायसाहब, रायबहादुर लोगों के हाथों में रहेगी तब तक आर्यसमाज का दायरा प्रार्थना, उपासना, खंडन-मंडन तथा गृह-कलहों में ही सीमित रहेगा, ये लोग युवकों के उत्साह को भी भंग कर दते हैं, यही दुःख है--टालमटोल की नीति ही इनका जीवन है-इसीलिए आर्यसमाज के सिद्धांतों को सर्वश्रेष्ठ समझते हुए भी लोग भीतर आने से हिचकिचाते हैं।

× × ×

उस पार !

खोज !!

——:o:——

हिमाच्छादित गिरि—मालाओं पर चिरकाल तक उसकी खोज की, पर वह न मिला। भयानक कन्दराओं में—जहां जीवन की आशा नहीं रहती, उसके दर्शनों के लिए आह्वान किया, पर वे न आये। कालिन्दी और सुरधुनी के सुरम्य तटों पर भटकता रहा; पर उसका वहां भी पता न लगा। मैंने उसके पाने के लिए व्रत, उपवास, तीर्थ, दान, पुण्य सभी कुछ किया; पर वह नहीं मिला। सुमधुर सुरभि का प्रेमी जान कर—मैंने उसे मलयज गिर-मालाओं पर—भयंकर सांपों की परवाह न कर—ढूंढ़ा; परन्तु सर्वत्र निराशा ही से पाला पड़ा—इतना होने पर भी मैं निराश न हुआ।

मैंने उसकी खोज के लिए भयंकर से भयंकर यातनाओं का सामना किया। मन्दिरों में घन्टों पूजा करता रहा—सेरों धूप-सामग्री जला डाली—माथा रगड़ता रहा—सोये ठाकुरों को घड़ियाल बजा बजा कर जगाने का प्रयत्न किया, परन्तु असफलता ही हुई, उसके दर्शन न हुए। इतना होने पर भी दर्शनों की तीव्र लालसा थी।

बन के चिर-वासियों से, तपस्वियों से और बन के वीभत्स जन्तुओं से, उसका पता पूंछा, पर किसी ने नहीं बताया। मेरे हृदय में आग थी—उसे शान्त करना चाहता था, प्यास थी, उसे तृप्त करना चाहता था, दिल में लौ थी—यही लग्न थी।

कभी कभी आशा नौका पर सवार हो कर विचारों के अनन्त प्रवाह में बहने लगता। सोचता, दर्शन होजाने पर सदा के लिए इस अशान्ति से मुक्त हो जाऊंगा। उनका विराट् रूप देख कर—फिर दर्शनों की इच्छा न रहेगी। वो आएंगे और आते ही पूंछेंगे—क्या चाहिए ? मैं उनकी विचित्र मूर्ति को देख कर मूक हो जाऊंगा। वे हंसेंगे—मेरी चकित बुद्धि पर। बहुत समय तक खड़ा रहने पर, मैं कहूंगा, 'मुझे तेरी खोज में अनन्त दुःख सहने पड़े हैं-अबतो कृपा कर हाथ बढ़ादो—मुझे अपने उस शान्त प्रदेश में प्रविष्ट करलो—जहां सांसारिक तृष्णाओं की पहुंच नहीं, जहां आनन्द से, सुख से तुम्हें जान सकें। वे मेरी सरलता पर मुस्कराते हुए चले जांयगे—उनकी मधुर मुस्कान मेरी खोज की अन्तिम वस्तु है—वही उनका विराट स्वरूप है। जाते हुए वे कहेंगे—घरमें—बाहिर नहीं !!

—श्री सन्तराम 'विचित्र'

सावधान !!

ये सँस्थायें नहीं दुकानें हैं !

(ले०—श्री० वैद्यशास्त्री डा० हरिश्चन्द्र साहित्यालंकार भरतपुर)

जिधर देखो, जिससे बातें करो, जिस समाचार पत्र को उठाकर पढ़ो, सब ही जगह स्त्री जाति के दुःखोंका दुःखड़ा रोया जाता है। कहीं गुंडे मुसलमान सता रहे हैं, कहीं वह अपने परिवार द्वारा कष्ट पा रही हैं, कहीं वह स्वयं अपने शारीरिक और मानसिक व्यथाओं से ही पीडित हैं। यह तो रही सधवाओं और सद्गृहणियोंकी बात। विधवाओं की दुर्दशा का तो वार पार ही नहीं है, उन पर तो एक वृद्ध समाज की घातक रूढ़ियों, तथा अमानुषिक अत्याचारों द्वारा दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा है। परन्तु क्या वस्तुतः यही दशा है और क्या सचमुच पुरुष समाज उनके हितों, केवल शुद्ध हितों के लिए ही इतना तड़प रहा, बेचैन हो रहा है। समझमें नह आता स्वार्थी पुरुष समाज आज क्यों इतना दयावान् होकर स्त्रीसमाज के लिए—स्त्रीसमाज के दुःखोंके लिये इतना व्याकुल है, अधीर है।

अवश्य ही स्त्रीसमाज की दशा इस समय अत्यन्त दीन, हीन है और उनके साथ पुरुषों का इस प्रकार सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना स्वाभाविक है। परन्तु इस समय जो हवा चल रही है, और जिस प्रकार सहानुभूति प्रदर्शित की जातीहै बहुत कुछ अस्वाभाविक है,उसमें दम्भ और स्वार्थ का पुट चढा हुआ है, और यह प्रगति स्त्रीसमाज को ही नहीं स्वतः पुरुष समाज को भी स्वर्ग की ओर से नर्क की ओर ले जा रही है, और इससे आज नहीं तो कल, निकट भविष्य में नहीं तो कुछ समय पाकर, हिन्दू समाज को इसका कडुआ फल चखना पड़ेगा, जरूर चखना पड़ेगा। स्वार्थी समाज दूसरे को हानि पहुंचाये या न पहुंचाये परन्तु उसकी अपनी हानि तो अवश्य ही होगी, उसका भविष्य अवश्य अन्धकारमय होगा। स्वार्थ का परिणाम अन्यथा हो ही नहीं सकता।

समाज की ओर से आये दिन जगह जगह वनिता-आश्रम, विधवा-आश्रम आदि संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। यह संस्थायें क्यों स्थापित होती हैं ? क्या यह एक दम शुद्ध और स्वात्विक भावों को लेकर खड़ी होती है ? क्या इनके अन्दर स्त्रियों की सचमुच रक्षा होती है ? क्या देवियों को समाज का उपयोगी सदस्या बनाने का यत्न किया जाता है ? क्या इन आश्रमों के प्रति इनके संचालकों के हृदय में कुछ सम्मान सेवा, और पवित्रता के भाव रहते हैं ? क्या वह इन आश्रमों में आई हुई देवियों के प्रति आदर सद्भाव तथा सात्विक प्रेम का भाव रख कर ही उनके साथ व्यवहार करते हैं ? मन चाहता है कि बड़े उत्साह से हां कहदूं परन्तु दुःख है कि प्रमाण इसके एकदम विपरीत मिलते हैं। और हमें दुःख से—दुःखसे ही नहीं लज्जा से कहना पड़ता है कि यह संस्थायें नहीं व्यक्ति गत दुकाने हैं, पापाचार

के अड्डे हैं, इनमें देवियों की रक्षा नहीं होती बल्कि यहां उनको और पतित बनाया जाता है, और धर्म के आड़ में पुण्य के नाम पर, पाप कमाया जाता है। बरदाफरोशी की जाती है, दुःखी, असहाय, अशिक्षित देवियों को मन माना ठगा, लुटा और सताया जाता है, उनके कपड़े लत्ते उतार लिए जाते हैं, जेवर ले लिया जाता है, और उन्हें अपने स्वार्थ-घृणित स्वार्थ सम्पादन का साधन बनाकर दीन,दुनिया कहीं का नहीं रखा जाता। आह! किस निर्दयता! किस कर्त्तव्य शून्यता, किस हृदय हीनता! किस स्वार्थ परायणता! के साथ उनसे व्यवहार किया जाता है, उसके स्मरणमात्र से ही हृदय कांपता है।

हम यह नहीं कहते की सभी संस्थायें ऐसी होती हैं परन्तु प्रायः अधिकतर संस्थाओं में ऐसे ही हृदय विदारक दृश्य पाये जाते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसी संस्थाओं में, बहुतसी संस्थायें व्यक्तिगत नहीं, बल्कि किसी विशेष प्रसिद्ध और सुसंगठित संस्थाओं से सम्बद्ध होती है,परन्तु उनमें भी कमोंवेश यह दोष देखा ही जाता है। और उस पर तुर्रा यह है कि यदि कोई हित और सुधार की दृष्टि से कुछ कहता सुनता तो यह मठाधीश उल्टे उसके गले पड़ जाते हैं। समझ में नहीं आता कि यह कैसे जिम्मेदार है और अपनी जिम्मेवारी की क्योंकर इतनी उपेक्षा करते हैं? हो सकता है कि वह किसी डिसि- प्लिन, पार्टीबन्दी या अन्य किसी विशेष कारण से उसके दोष प्रगट करने या दूर करने का साहस न कर सकते हों, परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि पाप का घड़ा किसी न किसी दिन फूट कर ही रहेगा, और ले डूबेगा।

प्रसन्नता है कि 'अर्जुन' द्वारा ऐसी दोषक संस्थाओं का नग्न चित्र उद्घाटन किया गया है। परन्तु ऐसी संस्थायें केवल देहली में ही हों, सो नहीं, प्रायः सभी जगह मौजूद हैं, और उनसे जनता को सावधान रखने की बड़ी जरूरत है। नीर-क्षीर विवेक से काम लेकर इनके साथ सह- योग और सहानुभूति प्रदर्शित करना जनता का प्रधान कर्तव्य है।

इस लेख में केवल वनिता-आश्रमों का ही उल्लेख किया गया है। परन्तु इससे यह न सम- झना चाहिए कि अनाथालय या अन्य शिक्षणालय आदि संस्थाये सर्वथा निर्दोष हैं। स्वार्थ पराय- णता ने, इस संस्थायुग में शायद ही किसी संस्था को अपवाद रूप में सन्मान के योग्य रखा हो।

—— :o: ——

अभिलाषा।

(ले०—श्री० अवन्तविहारी माथुर 'अवन्त')

आया इतनी दूर ईश मैं, रख कर तेरा ही विश्वास।
छोड़ रहा हूं यहां दुःख में, पड़ा निराशा की निश्वास॥
बस केवल तूही मेरा है, मुझ को बस है पूरी आस।
स्वामि! शान्ति से हृद को भर दो, करो न मुझ को नाथ! निराश॥
आशा है यह, पूरी हो जावेगी मेरी यह आशा।
स्वामि! पूर्ण अब तो कर देना मेरी प्यारी अभिलाषा॥

——:o:——

जीवन-सिद्धान्त

——:o:——

(ले॰—श्री॰ पं॰ बलदेव चौबे बी॰ ए॰)

——:o:——

मानव-जीवन और पशु-जीवन में सदा से एक ही प्रकार का संघर्ष चलता आया है। मनुष्य और पशु दोनों जीवन धारण करने के लिये सततरूपेण प्रकृति के साथ संग्राम कर रहे हैं। प्रकृति के नियम बड़े कठोर और दुस्साध्य हैं। उन के विरुद्ध जाना प्राणोत्सर्ग करना है। परन्तु उन की मांग के अनुसार जीवन ढालना भी वांछनीय नहीं है। अतएव पशु को तो प्रकृति अपने जाल में फंसा कर उस को ऊपर उठने से रोकने में समर्थ होती आई है, मगर मानव समाज ने प्रकृति से लड़ कर ऊंचे उठने का प्रयत्न किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पशु का जीवन संघर्ष तो विद्यमान से भोग्यवस्तु की ओर जाने के लिए हो रहा है परन्तु मानव जीवन का संग्राम भोग्य वस्तु से त्याग की ओर जाने के लिए जारी है। पशु को केवल भोग चाहिए, उस की उदरपूर्ति हो जाने पर वह शांतिपूर्वक जुगाली करता है और चैन से अपना समय काटता है। शारीरिक आवश्यकता से आगे उसे और कुछ नहीं चाहिये। परन्तु मनुष्य भोग से ऊब जाता है। भोग भोगने से उसके मन को शांति नहीं मिलती है। मनुष्य बराबर भोग जीवन से आगे बढ़ना चाहता है। उसे इन्द्रिय सुख के अतिरिक्त कुछ और चाहिये। अतएव सृष्टि के आदिम काल से मनुष्य ने प्रकृति के साथ युद्ध करते हुए किसी अन्य वस्तु की खोज में नाना प्रकार के कष्टों को सहन किया है। इस दिव्य संग्राम के नायक संसार के प्रत्येक भाग में समय समय पर जन्म लेते आये हैं। उन्होंने अपनी अपनी जन्मभूमि के जन-समुदाय को अधोगति से बचाया है और स्वयं अपने शुद्ध आचार द्वारा भोग जीवन के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया है। ऐसे महापुरुषों में सुकरात, मूसा, ईसा, बुद्ध, कन्फ्यूशियस और शंकर आदि महात्माओं की गणना हो सकती है। इन नररत्नोंने मनुष्य समाज को भोग जीवन के पंक में फंसने से बचाया है। इन्हों ने देश काल के अनुसार मनुष्य को पाशविक कुप्रवृत्तियों से बचने के लिये सचेत किया था। इन्हीं महात्माओं की अनुकम्पा से आज मानव सभ्यता ठहरी हुई है। समाज को इनकी ही शिक्षा ने छिन्न भिन्न होने से बचाया है।

भोग जीवन को तिलांजलि देकर, भौतिक सुखलाभ को अत्यंत तुच्छ वस्तु समझ कर संसार के महापुरुषों ने मानव समाज को बतलाया है कि जीवन का सिद्धांत त्याग है। त्याग पर अवलंबित धर्म अविनाशी है। विषय त्याग और विलास परित्याग पर ही हमारा जीवन आधाभूत होना चाहिये। त्याग जीवन है, भोग मृत्यु। त्यागी का जीवन बहते हुए जलाशय के सदृश है और भोगलोलुप का जीवन बन्द मोरी के तुल्य है। एक की जीवन धारासे अमृतमयी सुवास निकलती है, दूसरे की मोरी से सड़ान और दुर्गंध निकलता रहता है। इसी जीवन सिद्धांत को ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र में इस प्रकार व्यक्त किया है:—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

जगत् की समस्त वस्तुएं भगवान की विभूति

से ढकी हुई हैं। त्याग पूर्वक जीवन व्यतीत कर रे नर! किसी के धन के लिए लालच मत कर। क्या ही अमृतमय उपदेश है? इसी एक मंत्र में मानव जीवन का रहस्य निहित है। हमारे जीवन की सफलता इसी में है कि हम त्यागी बनें। किसी के आहार को न छीनें। गिद्ध की तरह किसी प्राणी का मांस न खाएं। किसी दुखिया के रोजगार को न नष्ट करें। अपने पास केवल जीवन यात्रा भर को सामान रखें। स्वल्प सामग्री से अपना जीवन व्यतीत करें ताकि शेष मनुष्य समाज के लिए भी जीवन सामग्री पर्याप्त होवे। पूर्ण त्याग, अस्तेयव्रत, गरीबी का जीवन, स्वेच्छा पूर्वक दारिद्र्यव्रत का पालना—यही मानव जीवन का सिद्धांत है। इसके विरुद्ध आचरण से हमें मानसिक शान्ति और अध्यात्मिक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

त्याग जब जीवन का सिद्धांत है तो हमारी जीवन शैली भी बदलनी चाहिए। बिना जीवन शैली के बदले त्याग का भाव हमारे हृदय में उदय नहीं हो सकता है। जीवन प्रणाली के परिवर्तन से ही आनन्द, शश्वत कल्याण होगा। अत्यन्त सादा जीवन, कठोर शारीरिक परिश्रम, आजीविका कमाने का शुद्ध साधन और विषय-वासना का त्याग—इन साधारण प्राथमिक नियमों पर चलने से उत्तरोत्तर हमारा जीवन पवित्र, सुखमय और निष्पाप बनेगा।

असतो मा सद् गमय तमसोमा
ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय।

—:o:—

हृदयोद्गार

तरसाता है ऐ ज़ालिम! मुझे तरसाता है!! कञ्चन के थालों में भरा हुआ यह मोहनभोग मेरे जीवन निर्माल्य की आंधी व तूफान के झोकों में क्या काम आवेगा?

× × ×

ओह जीवन ज्योति के आकाशमें विचरने वाले पक्षियो! तुम्हें जीवन के इन उमंग भूधरशृंग की चोटियों व विविध कुसुममयी चमत्कारिणी पुष्प शय्याओं में हो कर गुजरना पड़ेगा। कराल काल की वक्र गति को इस अस्थित्व से मिटाना होगा।

× × ×

जीवनयात्रा के पथिको! जाओ, जाओ, तुम्हें अपनी इस क्षुद्रगति से, इठलाते हुए योवन के इस वेग को पार करना है पार! संसार का यह सूना और बीहड़ मैदान, आशा और निराशा का यह गोरखधन्धा तुम्हारे पञ्चतत्वमय अस्थिचर्मों को तुम्हारे बालजीवन के अभिभावकों की मूर्त्ति समेत छिपा देगा अन्धकार के विषैले वातावरण में।

× × ×

भयंकर जड़वाद की इस द्रुतगामिनी पयस्विनी नदी में बहने वाले ये भोले पथिको! रो लो, रो लो आंख फाड़ फाड़ कर रो लो, । तुम्हारे इस अरण्य रोदन में संसार की क्रान्तियां छिपी हैं। उत्थान और पतन की हस्तियां जीवन-ज्योति के चमकते हुए दीपक को जला रहो हैं।

× × ×

हे भगवान्! दयानिधे!! जीवन संघर्षण के इस ताण्डवनृत्य से भाग कर कहां जाऊं! किस की शरण गहूं!! एक बार प्रभो, केवल एक ही बार!! पाप और पुण्य के इस अस्तित्व को अपनी सुविशाल छाया में स्थान दीजिये, अपने दामन में छिपाइये, अपनी सुललित वाणी से चर्म चक्षुओं की यह मृगतृष्णा हटाइये।

—:o:—

त्याग

(ले०—श्री० स्वामी आनन्दभिक्षु जी सरस्वती)

क्या चाहते हो ? मांगो"। भगवन्! मुझे इस 'चाहने' ने तबाह कर डाला। जन्म-जन्मान्तर से यह बला मेरे पीछे पड़ी हुई है। यह चाह मेरी जन्म की वैरिन हो गई है। जन्म लेते ही मैं चाह के लिये उन्मत्त हो गया। बाल्यावस्थाकी 'चाहना' जैसी कुछ थी, वह थी ही, पर यौवन की उन्मत्त चाह-मतवाली उत्कंठाओं ने तो मुझे एक दम ही विस्मृत कर दिया। परन्तु अब डरने लगा हूं—इस भयानक चाह से बहुत डरने लगा हूं। यह तो जीवन से भी भयंकर और करुणासे भी अधिक दारुण है। इसके स्पर्श में मैं कैसे रह सकूंगा देव! यह तो एक ही संघर्ष में मुझे अपने छोटे अस्तित्व से दूर—बहुत दूर कर देगी! फिर यह तो एक ही दुर्दम्य प्रवाह में मेरे सारे अपनेपन को मेरी सभी सीमा को अपने में सदा के लिये खो देगी। फिर मैं अपने अपने पन को कहाँ रख सकूंगा—वह अपना पन जिसने मुझे तुम्हारा बनाया है।

क्या तुम मेरी परीक्षा लेते हो ? मुझे भर माते हो ? पर यह भी मैं कैसे कहूं ? मुझे इसके कहने का अधिकार ही क्या है ? और यदि अधिकार हो भी तो मैं नहीं जानता क्या कहूं, कैसे कहूं ? बूंद भला समुद्र को कैसे कहेगा कि तुम मेरी परीक्षा लेते हो ? उसी प्रकार देव ! मैं—अस्तित्व-विहीन मैं जो कि तुम्हारे अतिरिक्त एवं तुम से परे होकर कुछ भी नहीं हूं, कैसे कहूं कि तुम मेरी परीक्षा लेते हो.........मुझे भरमाते हो। अच्छा यह भी सही। परन्तु हाय ? मेरी छोटी सीमा तुम्हारी इस विराट् व्यापकता को किस भांति संभाल सकेगी। आह ! तुम सीमा-हीन होकर, अपरिमित होकर अनन्त यहाँ आते हो। देव! मैं तुम्हारी इस अनन्त व्यापकता को अपनी परिमितता में कैसे रख सकूंगा ? निर्धन की इस सूनी कुटिया में यह वैभव, यह अनन्त एवं उन्मादकारी सौन्दर्य किस भांति रह सकेगा ? हटना होगा, हटना होगा देव !.........अथवा मुझे ही अपने में अन्तर्हित कर लेना होगा—सदा के लिए अनन्तकाल के लिए, जिस से फिर मैं तुम्हारे अतिरिक्त कभी भी अपना न हो सकूं—कभी भी—जन्म जन्मान्तर भी !!

तुम मुझे परखते हो, तो परख लो। मैं उसके लिये तैयार हूं। पर हाँ, अपने बल-बूते पर नहीं। तुम्हारी कृपा और आशीर्वाद के भरोसे। तुम मेरी परीक्षा लो, और तुम ही मुझे परीक्षा देने और उसमें उत्तीर्ण होने योग्य बनाओ।

मैं तुम्हारा हूं और तुम्हारा रहना चाहता हूं और हां, तुम्हारा रहूंगा भी। मेरे उत्तीर्ण होने से मेरी-तुम्हारी दोनों की लाज रहेगी, प्रतिष्ठा होगी, तुम्हारा नाम होगा, यश बढ़ेगा और मेरा काम बनेगा परन्तु हाय ! मैं कितना मूर्ख हूं। तुम्हारा नाम और यश कैसा ? तुम यश और कीर्ति—इन सब के परे हो, इन सब से आगे हो। लेकिन देव ! इतना होने पर भी तुम क्यों मेरी परीक्षा लेते हो ? मैं तुम्हारा भक्त हूं, तुम्हारा प्रेमी हूं। मेरे हृदय में तुम्हारे लिये शुद्ध प्रेम है, अनन्य भक्ति है। क्या तुम उसे नहीं जानते, नहीं समझते ? मेरा यह भाव क्या तुम से छिपा हुआ है ? फिर क्यों मुझे परखते हो, देखते हो, मेरा परिहास करते हो। क्या इस प्रकार के दुःखान्त नाटक और कहानी के बिना तुम्हारे संसार का इतिहास अधूरा या नीरस रहेगा ? मुझे परीक्षा में मत डालो। मैंने तुम से

प्रेम किया, तुम्हारी भक्ति की, तुम्हारी सेवा की। इसका हो आनन्द मुझे क्या कम है ? इसी में मैं अपने को बड़भागी और धन्य समझता हूं। अब मुझे अधिक किसी बात की लालसा नहीं है। यही मेरे लिये क्या कम है ? क्या मैंने किसी उपहार या लोक-लालच के लिये सेवा-वृत्ति धारण की है ? नहीं। सेवा करना, प्रेम करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। मैं कोई प्रेम का व्यापारी नहीं हूं। मैंने तुम्हारी भक्ति किसी स्वार्थ या व्यापार वृद्धि से नहीं की।

परन्तु नहीं, यह विचार भो कितना भ्रामक है, तुम्हारे प्रेम में तो मेरा बहुत अधिक स्वार्थ है— वह स्वार्थ, मेरे देव, तुम्हारी ही सीमा को तरह व्यापक और तुम्हारी व्यापकता की भांति विराट है। उस प्रेम में, मैं अपने सारे दुःखों को, अपने सारे सन्तापों को, अपनी अतुलित आत्म-ग्लानि को भूलना चाहता हूं और इस प्रकार अपनी परिस्थितियों से विस्मृत होकर उसमें--आह ! तुम्हारी व्यापक आनंद-- सीमा में अपने को सदा के लिये विलीन कर देना चाहता हूं।

आह ! तुम आने लगे चतुर-इतना धीरे-धीरे इतनी नीरव गति से इतना अव्यक्त होकर, पैरों की चाप छुपा कर!! आओ, आओ, अनन्त आओ तो क्या योग और ज्ञान की सीख देने आए हो ? पर नाथ ! मैं ज्ञान और योग लेकर क्या करूंगा? ज्ञान तो अपरिमित है देव! और तुम उससे कहीं अधिक अपरिमित हो। और योग ! योग के द्वारा मैं महान होकर तुम्हें पाऊंगा। पर मैं महान हो कर तुम्हें पाना नहीं चाहता.......... इसलिये मुझे योग नहीं चाहिए। इस योग को लेकर मैं क्या करूंगा ? मुझे तो वेदना चाहिए... दर्द चाहिए, तुम्हारी विरह चाहिए। इन के लिए देव, मैं तुम्हें भी त्याग सकूंगा, हंसते हुए, सहर्ष प्रफुल्ल होकर!! तुम मुझे वेदना दो—वह वेदना, जो तुम्हें भी अपनी छाया में विलीन कर ले। मुझे तुम अपनी विरह दो--वह विरह, जिसकी सीमा के प्रत्येक छोटे से छोटे अंश में तुम्हारा मिलन-- विराट और विस्मृतिमय मिलन हो !!!

———:0:———

सच्चा ब्रह्मचारी कौन है ?

सच्चा ब्रह्मचारी वही है, जो सब समयों में और सब स्थानों में यह अनुभव करता है कि परमात्मा मुझको देख रहा है। जब मैं किसी दूसरे के साथ वार्तालाप करता हूं तो परमात्मा तीसरा होकर हमारी सब बातों को सुन रहा होता है। और वह हमारे प्रत्येक आचार-विचार का प्रतिक्षण निरीक्षण करता रहता है। हम लोग माता-पिता गुरु-राजा आदि से तो अपने दोषों को छिपा सकते हैं, किन्तु सर्व द्रष्टा, सर्वान्तर्यामी परमात्मा से हमारा कोई दोष छिप नहीं सकता। अधूरा देखने वाले मनुष्यों से डर कर और प्रत्येक बात को पूर्णरूप से देखने वाले परमात्मा से न डरकर क्या कभो हम सुखी रह सकते हैं ? कदापि नहीं।

इसीलिए किसी कवि ने कहा है कि " नर की परवाह करे नरको " जो लोग मनुष्य के दिये हुये अन्यायपूर्ण कर्मफल की परवाह करते हैं वे नरक को जाते हैं, और जो ईश्वर कृत न्यायपूर्ण कर्मफल की परवाह करते हैं वे ही स्वर्ग तथा मोक्ष के सुख का आस्वादन करते हैं। बस, जो मनुष्य सच्चा ब्रह्मचारी बनना, अपने चरित्र को पवित्र करना और सच्चे सुख को पाना चाहता है उसे चाहिए कि वह सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्मा को अपने समीप समझ कर ही प्रत्येक कार्य का अनुष्ठान करे।

निवेदक—व्रतानन्द संन्यासी,
आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता,
'गुरुकुल चित्तौड़'।

———:0:———

यमुना तट पर

दिव्य वाणी

नम्रता के तीन लक्षण हैं (१) कड़वी बात का मीठा उत्तर देना (२) क्रोध के भड़कने पर चुप रहना और (३) दण्ड के भागी को दण्ड देते समय चित्त कोमल रखना।

सच्चे धर्मात्मा की बोली धीमी होती है, क्योंकि अच्छा पुरुष कठिनता को जानता है। वह अवश्य ही सम्हल कर बोलेगा।

जिस ने अहंकार, क्रोध, कपट और लालच को जीत लिया वही सच्चा शूरवीर है।

जैसा दूसरे को उपदेश दे, वैसा पहले अपने को बना लेना चाहिये, क्योंकि जिस ने अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह दूसरों को भी वश में कर सकता है। कठिन काम अपने आप को जीतना है।

घमण्ड या अहंकार मूर्खता की निशानी है। जिस जगह शरीर में खून की कमी होती है, वहां वायु भर कर शरीर फूल जाता है, ऐसे ही जहां बुद्धि का घाटा है, वहां अहंकार भर कर मन फूल जाता है।

मर्यादा से चलो। कभी सीमा के बाहर मत जाओ। अपनी हानि करने वाले को जहां तक बन पड़े, क्षमा करो।

चार प्रकार के मनुष्य ईश्वर को विशेष प्रिय हैं। (१) आसक्ति रहित विद्वान् (२) तत्व ज्ञानी महात्मा (३) नम्र धनी (४, प्रभु की महिमा जानने वाला त्यागी।

बलिहार होना क्या है? अपना बल हारकर सच्चा दीन, आधीन, और हृदय से प्रभु के आश्रित हो जाना। इसी का नाम पूर्ण शरणागति है।

मन पांच प्रकार के होते हैं (१) मुर्दा मन जैसे नास्तिकों का (२) रोगी मन जैसे पापियों का (३) अचेत मन जैसे पेटभरों का (४) उल्टा मन जैसे व्याज की कमाई खाने वालों का (५) स्वस्थ मन जैसे सन्तों का।

जो दूसरों के अवगुण प्रकट करता है, वह अपना अवगुण प्रकट करता है।

मूर्ख कौन है? जो बकवाद करता है। मूर्ख को चाहिये कि सभा में मुंह न खोले और बुद्धिमान केवल प्रश्न का उत्तर देने के लिये बोले। बहुत सुनना और थोड़ा बोलना ही बुद्धिमान का लक्षण है।

मनुष्य को चाहिये कि अपना मित्र आप बने, बाहरी मित्र की खोज में न भटके।

जो सच्चे हृदय के साधु होते हैं, वे मन को पीस कर चाले हुए मैदे की भांति कर देते हैं जिस में मान या गर्व की किरकिरी नहीं रह जाती।

भक्त वह है जो अपने मन को पृथ्वी के समान सहिष्णु और परोपकारी बना ले, जिस में लोग खाद डालते हैं, परन्तु वह अन्न ही देती है।

संसार में तीन बातें बड़ी उपकार करने वाली हैं। परन्तु धारण करने में कठिन हैं। (१) निर्धनता में उदारता (२) एकान्त में इन्द्रिय निग्रह और (३) भय में सत्य।

अच्छे गुणों को सीखने में तुम्हारी यह धारणा होनी चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधार का है न कि लोक में बड़ाई का।

जो पास में धन रहने पर भी अपने भाइयों की दीन अवस्था पर तरस नहीं खाता और उन की सहायता नहीं करता, उनके हृदय में प्रभु का प्रेम कैसे धँस सकता है?

—यति

—:०:—

वेद—परिचय

—:०:—

(ले—श्रीयुत् गंगाप्रशाद जी, उपाध्याय एम० ए०)

(२)

तद्द विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षु राततम् ॥

(सूरयः) बुद्धिमान् लोग (विष्णोः) ईश्वर के (तत्) उस (परमं) बड़े (पदं) पदको (सदा) सदा (पश्यन्ति) देखते रहते हैं। (इव) जैसे (आततम्) फैली हुई (चक्षुः) आंख (दिवि) सूर्य को।

इस वेद मंत्र में ईश्वर की प्राप्ति की आवश्यकता दिखाई गई है। और इसको एक साधारण दृष्टान्त देकर समझाया है। "आततम्" 'चक्षुः' का अर्थ है वह आंख जो पूर्ण रूप से फैली हुई हो। अर्थात् उसका पूरा विकास हो चुका हो। जो आँख कच्ची या रोगी है उसको प्रकाश से भय लगता है। जो आंख पूरी विकसित है उसे अन्धकार से दुख और प्रकाश से सुख होता है। जिस समय बच्चा उत्पन्न होता है उससमय उसकी आंख कच्ची होती हैं। इसी लिए बाहर धूप में लाने में आंख को हानि पहुंचने का भय रहता है। परन्तु ज्यों ज्यों यह आंख बढ़ती जाती है उसको प्रकाश से प्रेम होता जाता है। प्रायः मातायें अपने नवजात बच्चे की कोमल आंखों पर पट्टी बांध देती हैं जिससे सूर्य की तेज किरनें आंख को खराब न कर सकें। वस्तुतः आंख सूर्य का ही अंश है। आंख प्रकाश से हो बनती हैं। प्रकाश ही आंख की खुराक है। परन्तु खुराक की भी तो सीमा होती है। दूध बच्चों की खुराक है। परन्तु बच्चा थोड़ा ही दूध पी सकता है। इसी प्रकार यद्यपि सूर्य का प्रकाश आंख की खुराक है तथापि बच्चे की कच्ची आंख प्रकाश के केवल कोमल अंश को ही ग्रहण कर सकती है। जिस प्रकार भोजन करने से मनुष्य के उदर को शक्ति पहुंचती है और वह शनैः २ अधिक भोजन पचा सकता है, इसी प्रकार बच्चे की आंख भी कोमल प्रकाश का सहन करते करते अधिक प्रकाश को पचाने में समर्थ हो जाती है। प्रकाश में रुचि रखना ही आंख के विकाश का चिह्न है। यदि किसी बड़े बच्चे को सूर्य के सामने आने से कष्ट होता है तो समझिये कि अवश्य आंख में कोई दोष है। जब आंख रोगी हो जाती है तो उसे प्रकाश से भाग कर अंधकार की शरण लेनी पड़ती है। अंधकार से प्रेम ही आंख के दूषित होने का सूचक है।

अब समझ में आगया होगा कि वेदों में ईश्वर प्राप्ति की आवश्यकता बताने के लिए सूर्य और विकसित आँख का दृष्टान्त क्यों दिया गया है? यह बात आंख और सूर्य का सम्बन्ध ठीक ठीक समझ लेने से यथार्थ रीति से समझ में आ सकता है।

(१) सूर्य प्रकाश का एक बहुत बड़ा पुंज है।
(२) आंख भी उसी प्रकाश के छोटे से अंश से बनी हैं।
(३) आंख के लिए प्रकाश रूपी भोजन की जरूरत है।
(४) विकसित आंख को अंधेरे से घृणा है और प्रकाश से प्रेम।
(५) अंधेरे में देर तक रहने से आंख खराब हो जाती है। जैसे खानों के भीतर काम करने वालों की आंख।

(६) दूषित आंख ही अंधेरे की ओर भागती है, स्वस्थ आंख नहीं।
(७) सूर्य के प्रकाश में ही आंख अपने कर्तव्य का पालन कर सकती है, अंधेरे मे नहीं।
(८) यदि सूर्य न हो तो आंख बेकार हैं, और यदि आंख न हों तो सूर्य से लाभ नहीं उठाया जा सकता।

बस ठीक यही सम्बन्ध जीव और ईश्वर का है।

(१) ईश्वर ज्ञान तथा आनन्द का एक बहुत बड़ा पुंज है।
(२) जीव में भी ज्ञान तथा आनन्द का कुछ अंश है।
(३) जीव के लिए इस ज्ञान तथा आनन्द रूपी भोजन की जरूरत है।
(४) "सूरयः" अर्थात् बुद्धिमान पुरुषों को अज्ञान और अनीश्वरता से घृणा है और ईश्वर से प्रेम।
(५) अनीश्वरवाद के दूषित वायु मंडल में रहते रहते जीव खराब हो जाता है।
(६) केवल दूषित जीवों को हीं ईश्वर प्रेम से घृणा होती है। ईश्वर से ऐसे ही दूषित प्राणी भागते हैं, शुद्ध प्राणी नहीं।
(७) ईश्वर भक्ति द्वारा ही मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है अन्यथा नहीं।
(८) यदि ईश्वर-भक्ति नहीं तो जीव का होना बेकार है, और यदि भक्ति-परिपूर्ण न हो तो ईश्वर से कुछ लाभ उठाया नहीं जा सकता।

इस लिये वेदों का उपदेश है कि बुद्धिमान पुरुषों को सदा ईश्वर भक्ति तथा ईश्वर-प्राप्ति पर ही लक्ष्य रखना चाहिये। वेदों में ईश्वर के "पद" को "परम पद" कहा है, अर्थात् संसार की समस्त वस्तुओं की प्राप्ति से भी अधिक महत्ता ईश्वर प्राप्ति की है। रुपया, पैसा, पुत्र, पौत्र, राज-पाट, यह सब अच्छी और प्राप्त करने योग्य वस्तुयें हैं, परन्तु इन सबका दर्जा ईश्वर के दर्जे से नीचा है। ईश्वर की प्राप्ति के पश्चात् और किसी की प्राप्ति की जरूरत नहीं रहती। सूर्य के अभाव में आंख दीपक, चांद या बिजली की रोशनी से काम चलाती हैं परन्तु सूर्य के सामने यह सब साधन फीके और अनावश्यक हो जाते हैं। दोपहर के समय दीपक की किसको परवाह रहती है? इसी प्रकार जब तक परम पिता जगदीश्वर के महान् आनन्द का मान नहीं होता उसी समय तक जीव सांसारिक पदार्थों से आनन्द ढूंढता है। जहां उस परम आनन्द की प्राप्ति होगई वहां भौतिक आनन्द तुच्छ जान पड़ते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि भौतिक पदार्थों में आनन्द ही नहीं। इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि यह सब आनन्द ईश्वर के परम आनन्द का अंश मात्र है। चांद सूर्य की रोशनी से चमकता है। दीपकों में भी सूर्य की रोशनी ही काम करती है, परन्तु अपूर्ण और विकृत रूप में। इसी प्रकार रोटी, पानी, तथा अन्य आनन्ददायक वस्तुओं में भी ईश्वर के आनन्द का ही अंश है। केवल भेद इतना है कि यह आनन्द अपूर्ण और विकृत है। ईश्वर के पूर्ण आनन्द से लाभ उठाने के लिये "आततम् चक्षुः" अर्थात् पूर्ण रीत्या विकसित आंख की आवश्यकता है। इसी प्रकार ईश्वर के पूर्ण आनन्द को अनुभव भी विकशित जीवों को ही हो सकता है, सबको नहीं। जब तक सूर्य से प्रकाश ग्रहण करने की आंख में योग्यता नहीं है उस समय तक आंख अपूर्ण प्रकाशसे काम चलाती है। इसी प्रकार जब तक मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं होता उस समय तक वह आनन्द की प्राप्ति के लिये सांसारिक पदार्थों का ही आश्रय ढूंढता है। क्योंकि ईश्वर

का आनन्द मनुष्य से इतना ही दूर है जितना आंख से सूर्य। इसीलिये ईश्वर के "परम पद" के लिये वेद में "तत्" शब्द का प्रयोग किया है। "तत्" दूर की ओर संकेत करता है। आप बच्चे को उंगली के संकेत से कहते हैं कि देखो "सूरज वह है"। इसी प्रकार 'तत्' अर्थात् 'वह' से आध्यात्मिक दूरी की ओर संकेत है। दूरस्थ सूर्य से निकलती हुई प्रकाश की किरणें प्रत्येक आंख तक आती हैं। मैं कमरे के भीतर बैठा लिख रहा हूं, सूर्य मेरे सम्मुख नहीं है, परंतु मैं सूर्यके ही प्रकाश में लिख रहा हूँ। सूर्य की किरणें मुझ तक नहीं आरहीं। सूर्य भी मुझे दिखाई नहीं पड़ता। परंतु उन किरणों की छाया भी एक प्रकार का कोमल प्रकाश है जो मुझे कार्य करने में सहायता देता है। इसी प्रकार ईश्वर का "वह" परम पद दूर है। दीखता नहीं। बहुत सों के अनुभव में भी नहीं आता। वह नहीं समझते कि सांसारिक पदार्थों में जो आनंद उनको मिल रहा है वह उस आध्यात्मिक अर्थ में दूरस्थ ईश्वर का आनंद है। रात में तारों के प्रकाश में चलने वाला बटोही विश्वास नहीं करता कि सूर्य कोई वस्तु है जिसका प्रकाश तारों द्वारा उस तक आ रहा है। इसी प्रकार यद्यपि अणु में अणु ईश्वरका प्रकाश चमकता है परंतु नास्तिकों को उस पर विश्वास नहीं आता। वह रात्रि के थोडे बहुत प्रकाश का दूरस्थ सूर्य से सम्बंध जोड़ नहीं सकते। यही भेद है। केवल 'सूर्य' अर्थात् विचक्षण बुद्धि के पुरुषों की दृष्टि ही वहां तक जा सकती है।

निहां है ज़र्रे ज़र्रे में, अयां है ज़र्रे ज़र्रे से।
मुनव्वर पर्दा है पर्दानशीं के रूए रोशन से॥

——:o:— —

प्रतीक्षा करो!

——:o:——

आर्य जगत में १३ जुलाई की बड़ी प्रतीक्षा थी। यह आई और चली गई, और ऐसी चली गई कि न अब यह फिर कभी लौट कर वापस आयेगी, और न इसे ही कोई भूल कर कभी याद करेगा! मुरादाबाद के सत्याग्रह का कुछ निर्णय हुआ या न हुआ, पर इस तिथि का भाग्य-निर्णय तो हो ही गया।

उस दिन रा० ब० ठा० मशालसिंह जी प्रधान, आ० प्र० सभा संयुक्त प्रांत, गवर्नर महोदय से मुरादाबाद के नगर-कीर्तन के सम्बन्ध में मिल लिए। कहा जाता है, अच्छी तरह मिल लिए। बड़ी-बड़ी बातें हुईं—बहुत देर तक बातें होती रहीं। पर क्या बात-चीत हुई? क्या निर्णय हुआ। इसका कुछ पता नहीं, और पता होना भी क्यों चाहिये था? राय बहादुर की यह अपनी निजू--घरेलू--मुलाकात थी! ऐसी मुलाकातों की बातें प्रकाशित नहीं होतीं! और न ऐसी बातों के जानने के लिए लोगों में उत्सुकता ही होनी चाहिए। रही यह बात, कि आर्य जगत ने उसे आर्य प्रतिनिधि सभा के श्री प्रधान महोदय की मुलाकात समझी! यह उसकी समझ! उसकी बुद्धि! इसमें दूसरों की क्या खता? क्या कसूर? नादान आर्य समाजी कभी कभी अपना ऐसी ही उलटवाँसी समझ के पीछे अपने-पराए में बदनाम

हो जाते हैं—शायद बाग़ी तक समझ लिए जाते हैं! अस्तु—हम ऐसे सज्जनों को सावधान करना चाहते हैं !! सभा-सोसाइटि के कामों में कभी-कभी एक खास नीति का आवलम्ब करना पड़ता है या करने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है।

हमें तो सन्तोष है। १३ जुलाई योहीं नहीं खिसक गई! उस दिन कुछ हुआ ही। सभा के प्रधान महोदय से भेंट न हुई न सही। हमारे एक प्रतिष्ठित आर्य-भाई से तो हो ही गई। यह भी क्या कम बात है ??

हम सत्याग्रह के लिए नहीं मर रहे हैं। मर रहे हैं अपने कर्तव्य-परायणता के लिये। धर्म-प्रचार के लिए; धर्म-प्रचार में खड़ी हुई बाधाओं को दूर हटाने के लिये और अपनी स्वाभाविक जन्म-सिद्ध अपहरित अधिकारों का पुनः प्राप्त कर उन्हें स्वतन्त्र-पूर्ण व्यवहार में लाने के लिए। बस इस के लिए हम मर रहे हैं। उतावले हो रहे हैं, पागल हो रहे हैं। हमें अपने इस काम से काम है। नगर-कीर्तन की रुकावट दूर हो जाय। हम अपना कार्य स्वतन्त्रता पूर्वक करने पायं। हम खुश, हमारा ईश्वर खुश।

कहा गया है "सभा की ओर से एक लिखित आवेदन पत्र गवर्नमेंट की सेवामें भेजा जायगा'। सरकार उस पर उचित आज्ञा देगी। मुरादाबाद का मामला जब तय हो जायगी, तब और जगहों को बात चलेगी। सम्प्रति सत्याग्रह का आन्दोलन बन्द कर देना चाहिए';

ठीक है! सभा के प्रधान महोदय की आज्ञा में, किसी को चूं-चरा, करने का अधिकार ही क्या हो सकता है? वह तो सर्वमान्य वस्तु है। उसके आगे मत्था टेकना प्रत्येक आर्य और आर्यसमाज का कर्तव्य ही होना चाहिए। हमें दुख है कुछ पत्रों ने इस आज्ञा का यथेष्ट पालन नहीं किया, बल्कि उसे एक प्राइवेट और निजू बात के भांति इसकी अवहेलना की!! हम इसे उचित नहीं समझते! जब आपने एक व्यक्ति को अपना अधिकारी या मान्य निर्वाचित कर लिया और उसे अपना विधाता या भाग्यनिर्माता बना लिया, तो फिर आप को उसके फैसले के आगे नत मस्तक होना ही चाहिए!

विधाता चुनते समय जो विचार आपको कर लेना चाहिए, उन्हीं विचारों को चुनाव के बाद सोचना व्यर्थ ही नहीं वरन् अनुचित भी हो जाता है।

सत्याग्रहको घोषणा निकालना जितना सरल है, निवाहना उतना ही कठिन है—यह हम जानते हैं।

इसके लिये हमें अपने धीर, गम्भीर नेताओं की आज्ञा-परामर्श का मान्य करना ही होगा। 'प्रधान जी सरकार में उद्योग कर रहे हैं कि ये सब उलझनें शान्ति पूर्वक सुलझ जावें'। बहुत अच्छी है। हम भी पूर्ण शान्ति-पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। पाठको! आप भी शान्ति-पूर्वक प्रतीक्षा करो!

आनन्द स्वामी



मण्डल-परिचय

—:०:—

अखिल भारतवर्षीय आर्य कांग्रेस, देहली के शुभ-अवसर पर श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज के सभापतित्व में ३ नवम्बर १९२७ ई० को सन्यासी मंडल की स्थापना हुई। उस के पश्चात् साधु-आश्रम, हरदुआगंज (अलीगढ) के वार्षिकोत्सव पर ८, ९, तथा १० नवम्बर २७ को मंडल के विशेष अधिवेशन हुए। इन्हीं अधिवेशनों मे निर्वाचन इत्यादि के अतिरिक्त मंडल के उद्देश्य और आवश्यक नियम आदि बन गए। श्री स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती को यह आज्ञा दी गई कि वह गुरुकुल के महोत्सव पर मंडल का पुनः अधिवेशन रक्खे और अन्य और आवश्यक नियम-उपनियम बनाकर मंडल को स्थायी रूप देने का यत्न करें। अतः गुरुकुल वृन्दाबन के वार्षिकोत्सव पर तारीख २७ दिसम्बर १९२७ को मंडल के उपप्रधान श्री स्वामी परमानन्दजी (आगरा) के सभापतित्व में ये उप-नियम इत्यादि बन कर स्वीकृत हो गए। और इसी अवसर पर वीतराग पूज्यपाद श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज तथा पूज्यपाद श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने मण्डल की संरक्षता स्वीकार करने की कृपा की।

इसके पश्चात् १९२९ ई० में मण्डल का स्थान आदि का सुप्रबन्ध न होने तथा अन्य अनेक अनिवार्य कारणों से कोई अधिवेशन न हो सका। हां, समाचार-पत्रों तथा पारस्परिक पत्र-व्यवहार एवं मेल-मुलाकात के अवसर पर मंडल की उन्नति और संगठन को सुदृढ करने की चर्चा अवश्य जारी रही। गत ६ मई सन् १९२९ ई० को दयानन्द आधु-आश्रम, अजमेर के विशेष उत्सव पर मण्डल के सुयोग्य प्रधान श्री पूज्य स्वामी शंकरानन्द जी महाराज तथा प्रियवर श्री लक्ष्मणानंदजी महाराज अध्यक्ष साधु-आश्रम अजमेर से मंडल के सम्बंध में बहुत कुछ विचार विनिमय हुआ। परन्तु कोरम के अभाव से कोई नियमित अधिवेशन न हो सका।

कुछ यत्न न करने और कुछ भी न करने पर, अब तक मंडल के ५० सदस्य हैं, और मण्डल की आय ९२) और व्यय २२।) हुए हैं। आय में इस समय ६९।॥)शेष हैं। इनमें से २४) श्रीस्वामी सत्यानन्दजी संयमी वरौढा, अलीगढ कोषाध्यक्ष मंडल के पास और ४५॥।) मन्त्री के पास हैं।

यह है मंडल का संक्षिप्त परिचय, इस की सविस्तार रिपोर्ट हम फिर कभी—शायद बहुत जल्दी ही—सार्वदेशिक या किसी सामाजिकपत्रमें प्रकाशित करेंगे। हाँ, मंडल किस मतलब की चीज है ? इसका उद्देश क्या है, ये हम लगे हाथों अभी बताए देते हैं। सुनिए:—

(१) सन्यासियों में परस्पर सौहार्द और मेल-मिलाप की वृद्धि करना। (२) सन्यासियों की बिखरी हुई शक्तियोंको धर्म और जातिके कल्याणार्थ संगठित करना। (३) सन्यासियों के लिए प्रचार कार्य में आने वाली विघ्न-बाधाओं तथा रुग्णादि अवस्था में होने वाली असुविधाओं को दूर करने का यत्न करना और उसके महान् उद्देश्यकी पूर्ति में यथा शक्ति सहायक होना। (४) किसी कारण से छोटी अवस्था में जिन व्यक्तियों ने सन्यास लिया हो, उनके पठन-पाठन का प्रबंध करके उनको जाति और धर्म के हितार्थ उपयोगी बनाने का प्र-

अखिलानन्द और आर्यसमाज

——:०:——

आर्यसमाज क्या है ? आर्यसमाज वैदिक-धर्मके प्रचार करने वाली परम पुनीत संस्था है। उसका संचालन शिष्ट और विद्वान पुरुषों की सामूहिक शक्ति और आर्य प्रतिनिधिसभा द्वारा होता।

और अखिलानन्द ?

अखिलानन्द है एक व्यक्ति—स्वार्थी, लम्पट, धूर्त, प्रपञ्ची, वाचाल, पेट के लिये गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला, ढोंगी, वितंडावादी, इधर-उधर की बातें बना कर अपना उल्लू सीधा करने वाला !

समझ गये आप अखिलानन्द और आर्यसमाज को ? अखिलानन्द ऐसे नारकीय-कीड़े, आर्यसमाज को—आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानंद को—कितने ही कोसें, कैसे ही लांछन लगायें ? पर बिगाड़ क्या सकते हैं। ऋषि दयानन्द अब केवल आर्यसमाज के ही मान्य नहीं रहे, वह सर्वमान्य हैं, सब के हैं। सब उन्हें आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अखिलानन्दके इन नीच और काली करतूतों से ऋषि के मान्-प्रतिष्ठा में कोई अन्तर--रत्ती भर अन्तर--नहीं आ सकता। हां, अखिलानन्द ने अवश्य अपने को लोगों की दृष्टि में बिलकुल पोच, लचर और अत्यन्त हेय बना लिया है। और कोई भी समझदार आदमी उसे अब जरा भी मुंह नही लगा सकता। परन्तु अखिलानन्द यह जो कुछ कर रहा है, जैसो कुछ प्रपंच रच रहा है, यह कैसे ? किस साहस से ? क्या सनातन-धर्म की आड़ लेकर ? सनातन-धर्म के प्लेट-फार्म से ? नहीं ! हम से अनेक समझदार सनातन धर्मी विद्वान पंडितों से विचार हुआ है। वे सभी एक दम से अखिलानन्द की ऐसी घृणित बातों की घोर निन्दा करते हैं और निस्सन्देह उन्हें ऐसा करना ही चाहिए।

हम भी सनातन-धर्म को—सनातन धर्म के प्लेट-फार्म को—पवित्र समझते हैं, और नहीं चाहते कि वह किसी व्यक्ति विशेष की गन्दगी और बेहूदगियों से गन्दा और अपवित्र बने। परन्तु × × + समझ में नहीं आता कि सनातन-धर्म के जिम्मेदार व्यक्ति सनातन-धर्म जैसी जिम्मेदार संस्था के प्लेट-फार्म से इस प्रकार किसी धर्म--संस्था के प्रवर्तक के साथ ऐसे घृणित और निन्द्य व्यवहार होते देखना कहां तक उचित समझते हैं ? और फिर ऐसे समय में ? ऐसे विपत्तिके समय में? संगठन के ऐसे विशेष अवसर पर?? यदि अखिलानन्द अपने व्यक्तित्व से-अपनी जाती हैसियत से-कुछ भी, किसी को भी, कुछ कहे-सुने, हमें उसकी तनिक भी परवाह नहीं उसे तो हम बहरे कानों भी सुनने के लिये तैयार नहीं!लेकिन जिम्मेदार संस्था

यत्न करना ।' (५) प्रचारार्थ देश--विदेश भ्रमण करने वाले सन्यासियों के लिए हर प्रकार की आवश्यक सामग्री का यथा शक्ति प्रबंध करना। (६)मंडलके सदस्योंके हृदयमें मत-मतान्तरका भेद न रखते हुये सब जाति के सत्पुरुषों के प्रति प्रेम, सम्मान तथा सहिष्णुता का भाव उत्पन्न करना। (७) सन्यासियों के पठन-पाठन, विश्राम तथा रुग्णावस्था में औषधि उपचारार्थ आश्रम की स्थापना करना।

आनन्दभिक्षु सरस्वती
मंत्री, सन्यासी मंडल

——:०:——

के प्लेट-फार्म से इस प्रकार को कार्यवाही कोई कैसे और कहां तक सहन कर सकता है?

अखिलानन्द ने कुछ पुस्तकें भी ऐसी प्रकाशित की हैं, जिनमें ऋषि के विशुद्ध चरित्र पर निर्मूल दोषारोपण किए गए हैं। सनातन धर्मी भाइयों को चाहिए था कि वह स्वतः अपनी जिम्मेदारियों और समय की महत्ता को अनुभव करते हुए अखिलानन्द को डांट बतलाते और इन घृणित रचनाओं को अग्निदेव को अर्पण कर देते !! यह यदि अब तक नहीं हुआ तो अब सही। एक व्यक्ति के अपेक्षा देश और जाति का हित निकटतम होना चाहिए। फिर अखिलानन्द जैसे व्यक्तिके अपेक्षा!!

यह किसी से अप्रकट नहीं है कि, जिस समय अखिलानन्द सामाजिक क्षेत्र में काम करता था, उस समय इसीने--इसी भद्र पुरुष (?)ने 'दयानन्द दिग्विजय" जैसा महा काव्य लिख कर ऋषि के गुणों को गाता हुआ नहीं थका था। और आज? आज वही इतनी घृणित स्वार्थपरता में आसक्त होकर क्या से क्या कर रहा है? और कहां से कहां जा रहा है? हा! इतना पतन! इतना अधः-पतन !! इतना घोर अधः पतन !!

अवश्य ही, जो मनुष्य इतना पतित ! इतना स्वार्थी! इतना नीच है. उसका विश्वास करना, उसकी बातों पर ध्यान देना सर्वथा व्यर्थ है। अब रहा सरकार से प्रार्थना करना कि वह इन पुस्तकों जब्त कर ले। हमें यह भी उचित नहीं मालूम होता। आप जितना ही ऐसा कहेंगे,उतने ही लोगों की कुप्रवृत्ति इधर और बढ़ेगी और अखिलानन्द के मिजाज का पारा चढ़ता जायगा।

स्मारण रहे जो दूसरों के लिये कांटा बोता है, वह स्वयं कांटों से बच नहीं सकता। अखिलानन्द जैसे तुच्छ व्यक्ति यदि आर्यसमाज या आर्य समाज के प्रवर्तक को गाली दे या बुरा भला कहे तो आर्यसमाज या आर्यसमाज का प्रवर्तक बुरा नहीं हो सकता। बुरा होगा वही और बुरा होगा उसी का, जो दूसरों का बुरा चाहता है। सत्यता प्रकट होकर रहेगी। सचाई छिप नहीं सकती, छिपाई नहीं जा सकती। सचाई की झलक सात पर्दों के अन्दर से भी चमकेगी ही। झूठे, कुचाली, क्रूर कभी ठहर नहीं सकते हैं? हां! चांद पर थूका हुआ थूकने वाले के मुंह पर ही आता है।

अब रही कुछ समाचार पत्रों की बात, जैसे धर्म प्रकाश, ब्राह्मण सम्मेलन, हिंदू, वेंकटेश्वर आदि पत्र। यह क्यों अखिलानन्द की बेहूदगियों को अपने पत्रों में स्थान देते हैं? इसलिए, केवल इस लिये कि वह अखिलानंद एंड० को० में से हैं। और उसके स्वार्थ-सिद्धि के साथ-साथ अपना भी स्वार्थ-सम्पादन का अवसर देखते हैं। पर यह कब तक? स्वार्थ परायणता की चांदनी चार दिन की ही होती है।

अब अन्त में मैं इन दोनों जिम्मेदार संस्थाओं, आर्यसमाजों और सनातन धर्म सभाओं-से निवेदन करता हूं कि इन बातों की ओर विशेष ध्यान न दें। आर्यसमाज के सामने अनेक उपयोगी कार्य हैं। इन तुच्छ बातों को विशेष महत्व देना अपने समय और शक्ति का व्यर्थ दुरुपयोग करना है। हां, जो बातें आवश्यक हों और जिनके स्पष्ट किए बिना जनता में भ्रम फैलने की संभावना हो उनको समुचित समाधान करें, और सनातन धर्म सभा को चाहिए कि वह अपने प्लेट फार्म से इस प्रकार की घृणित बातों का होना एक दम असंभव कर दें और ऐसे उच्छृंखल और स्वार्थी आदमी को अधिक संयत और नियंत्रित रखें और उन्हें किसी प्रकार मुंह लगने का अवसर न दें। बस, देश और जाति का हित सामने रख कर मुझे इस समय इतना ही निवेदन करना था।

—हरिश्चन्द्र

——:o:——

विदेश-प्रचार और एक लाख रुपये की आवश्यकता

——:o:——

प्रिय महानुभाव !

सार्वदेशिक-सभा, समस्त भूगोल की सम्पूर्ण आर्य-प्रतिनिधि-सभाओं, आर्य--समाजों तथा अखिल आर्य--जाति की ओर से एक प्रतिनिधि सभा है। अन्यान्य उद्देश्यों में इसका एक उद्देश्य है, भारतवर्ष तथा अन्य देश-देशांतरों में वैदिक-धर्म के प्रचार का प्रबन्ध करना। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मथुरा में गत दयानन्द जन्म शताब्दि-महोत्सव पर ५ लाख रुपये एकत्रित करने का प्रस्ताव रखा गया था। आशा थी, वह एकत्रित हो जावेगा और उसके सूद से, प्रचार-कार्य वेग से, दृढ़ता से, और नियमित रूप से, आरम्भ किया जा सकेगा। परन्तु ५ लाख में केवल ५७ हजार रुपये ही इकट्ठे हो पाये। इसमें भी अब लगभग ४६ हजार शेष हैं, और इस धन के सूद से सभा मद्रास-प्रचार का कार्य कर रही है।

विदेशोंमें प्रायः सभी जगह—विशेष कर वहां, जहां प्रवासी भारतीय रहते हैं—प्रचार की कितनी आवश्यकता है, इसको बतलाने की आवश्यकता नह । ईसाई मिशनरियों का प्रचार वहां जोरों पर ह ता है। वहां प्रचार का क्षेत्र है। ज कुछ अपने प्रचारक भी वहां काम कर रहे हैं, कितनी आशातीत सफलता प्राप्त कर रहे हैं, और वे वहां प्रचार की--और धन की कितनी आवश्यकता बतला रहे हैं? वह आपको पत्रों से ज्ञात होता ही रहता होगा।

कार्य कितना विस्तृत है और साधनों में यह सभा कितनी हीन! इसके लिये बिशाल धन-बल और विशाल जन—बल की आवश्यकता है। कार्य कर्त्ताओं के लिए धन की आवश्यकता है। इस देशांतर-प्रचारके कार्य के लिए कम-से-कम सम्प्रत्ति १ लाख रुपये की आवश्यकता है। इतने द्रव्य से विदेश में प्रवासी भारतियों के मध्य प्रचार कार्य बढ़ाने के सिवा एक-एक योग्य उपदेशक स्थिरता से योरुप और अमेरिका में भी काम कर सकेंगे।

एक लाख रुपया जमा कर देना समाज के धनी-मानी पुरुषोंके लिए कठिन नहीं होना चाहिये। यदि आप जैसे धनशाली १०० आर्य सज्जन ५००), ५००) देकर सार्वदेशिक सभा के आजीवन-सदस्य बन जायं, तो यह आवश्यकता सहज ही पूरी हो सकती है। नियमावाली की धारा * ६ (क) के अनुसार आप ५००) या ५०००) देकर सदस्य बन सकते हैं और इस पुण्य-योग में सहायक भी हो सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि, देहली के कतिपय सज्जनों ने आजन्म सभासद होने का वचन भी दें रक्खा है।

हमे पूरी आशा है। आप धर्म की आवश्यकता और प्रचार की इस मांग का, आदर करेंगे, और सभा के कोष में ५००) अवश्य प्रदान करेंगे। इस सहायता का जो पुण्य फल होगा वह शीघ्र ही आपके सामने आजायगा और तब, हम विश्वास दिलाते हैं, आप हमें ही अपने दान का यह सुअवसर प्रदान करने के लिए—धन्यवाद देंगे।

आपके और सब के सेवकः—

नारायण स्वामी, प्रधान।
आनन्दभिक्षु सरस्वती, मन्त्री।

* ६-(क) जो महाशय एक साथ ५००) दान देवें और जो किसी आर्य समाज के सभासद् हों जिस का सम्बन्ध सार्वदेशिक या सार्वदेशिक सभा में प्रविष्ट किसी प्रतिनिधि सभा से हो या अन्य कोई आर्य पुरुष ५०००) देवें, तो वे जीवन-पर्यन्त सार्वदेशिक सभा के सभासद् माने जायेंगे।

——:o:——

एक घृणित-रचना

महात्मा गांधीजी २५ जुलाई के 'यंग इण्डिया' में लिखते हैं:—

तीन संवाद दाताओं ने मुझे पत्र लिखकर प्रेरणा की है कि मैं एफ० के० दुर्रानी बी० ए०, मुसलिम मिश्नरी द्वारा लिखित "Dayanand a critical study of his life and Teachings" पुस्तक के बारे में अपनी सम्मति प्रकाशित करूं। एक चौथे महानुभाव ने मेरे पास उस पुस्तक की एक प्रति भी भेजी है। एक ने मुझे यह भी लिखा है कि आपने "रंगीला रसूल" के बारे में अपनी सम्मति प्रकाशित करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया था इस लिये अब आपको इस पुस्तक की आलोचना करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये।

मैंने इस पुस्तक को आद्योपान्त शांति पूर्वक पढ़ा है, और इसे पढ़कर मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि यह पुस्तक बहुत शरारत भरी है। एक जिम्मेवार आदमी को इस प्रकार की पुस्तक नहीं लिखनी चाहिये थी, और एक जिम्मेवार सोसायटी को इसे प्रकाशित भी नहीं करना चाहिये था।

लेखक ने भूमिका में कहा है कि मैं अपने विषय पर वैज्ञानिक ढंग पर बड़े शान्त मन के साथ विचार करूंगा। परन्तु भूमिका में ही उसने अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिया है। वह लिखता है कि "हम न तो प्रशंसा करेंगे और न निन्दा" पर अगले पृष्ठ में वह "सत्यार्थ प्रकाश" के बारे में लिखता है कि "यह एक निकम्मी किताब है और इस पुस्तक के विचार तथा शिक्षायें ऐसी वाहियात तथा बचपन की सी हैं कि कोई आदमी बड़ी मुश्किल से इस बात पर विश्वास करेगा कि एक आदमी जो कि आर्यसमाज जैसी शक्तिशाली समाज का प्रवर्तक है वही इस पुस्तक का भी लेखक होगा।"

लेखक ने बीच बीच में इस बड़े सुधारक को झूठा, दगाबाज, और भंग के नशे में चूर रहने वाला कहा है। तथा लिखा है कि "उनका स्वलिखित जीवन निराधार है, उनका प्रारम्भिक जीवन सहस्यमय है।" इत्यादि, पुस्तक के लेखक ने आर्य समाज और स्वामीजी के बारे में प्रशंसा सूचक एक भी वाक्य नहीं कहा है।

पुस्तक में कहीं कहीं हिंदुओं तथा हिंदू धर्म के बारे में भी बुरा भला लिखा है। परन्तु मैं अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं समझता। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ से ऐसे प्रमाण दिये जा सकते हैं जिनकी निन्दा की जानी चाहियें। लेखक ने पुस्तक के अन्त में लिखा है कि "यदि हम अपनी मातृ भूमि से प्रेम करते हैं और यदि हम हिंदुस्तान को एक विशाल तथा सभ्य देश बनाना चाहते हैं तो हमें यहां से हिन्दुओं के पुराने अन्ध विश्वासों को साफ कर देना चाहिए। इसलाम एक विजयशील सेना है, मुसलमान स्वतंत्रता के लिए तथा शासन करने के लिए पैदा हुए हैं, यह दोनों बातें हमें प्राप्त हो सकती हैं यदि हम अपनी संख्या बढ़ावें। भारतवर्ष का भला हिंदुओं से नहीं होगा, भारत का भला इसलाम के झण्डे के नीचे जाने से ही हो सकता है।" लेखक ने अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए विष में कलम डुबो कर वर्तमान समय के सब से बड़े सुधारक, उसकी पुस्तकों और उदीयमान धर्म-आर्यसमाज, हिन्दुओं और हिंदू धर्म पर विषैले लेख लिखे हैं।

मैं मि० दुर्रानी को सलाह देता हूं कि वह अपने कार्य पर फिर से विचार करें और इस गन्दी किताब के प्रकाशन के लिए शोक प्रकाशित करें और इसे वापस लेलें।

———:0:———

क्या आर्यसमाज सत्याग्रह कर सकता है

—:o:—

(लेखक—श्री स्वामी रामानंद जीसंन्यासी)

—❀—

सन् १९२७ में जो आर्य कांग्रेस देहली में हुई थी उसके केवल दो उद्देश्य थे। (१) आर्य नेताओं की मुसलमान गुंडों से जीवन-रक्षा का उपाय (२) आर्यसमाज के ऊपर सरकार द्वारा लगाई हुई बाधाओं को हटाने के लिए कोई क्रियात्मक आन्दोलन।

देश की स्थिति के अन्दर परिवर्तन होने के कारण पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्यसमाज को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा। दूसरी अबतक उसी तरह विद्यमान है, और कई बार कहने के बावजूद इस समय तक कोई क्रियात्मक उपाय नहीं हुआ और बाधाएं न हट सकीं।

बाधायें संयुक्तप्रान्त में अनेक स्थानों पर उपस्थित की गईं, इस कारण सब से प्रथम दायित्व आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त का था कि, वह इस सम्बन्ध में कोई कार्यवाही करे। संयुक्तप्रान्त की प्रतिनिधि सभा के अधिकारी, आर्य सार्वदेशिक सभा व आर्यरक्षा समिति के द्वारा कई बार ध्यान आकर्षित कराने पर भी टस से मस न हुए। इसी काल में प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र "आर्यमित्र" सार्वदेशिक सभा तथा आर्य-रक्षा समिति के अधिकारियों पर बराबर आक्षेप करता रहा है कि वे लोग कुछ करने को तैयार नहीं। परन्तु ऐसी अवस्था में सार्वदेशिक सभा व आर्य-रक्षासमिति करती तो क्या करती? संगठन निर्माणके अनुसार सार्वदेशिक तथा रक्षा-समिति उस समय तक कोई कार्यवाही नहीं कर सकती जब तक कि, प्रतिनिधि सभा का कोई निर्णय उनके पास न हो। जो कुछ भी प्रतिनिधि सभाके अधिकारियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए किया जा सकता था, वह किया गया। परन्तु वे लोग अपने स्वभाव से मजबूर रहे।

आर्यसमाज में एक काल से संयुक्तप्रांत की प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों के प्रति उपरोक्त बातों के कारण असन्तोष फैल रहा था। वे लोग किन्हीं भी कारणों से कोई क्रियात्मक आंदोलन करने पर राजी नहीं थे। बड़ी कठिनता से प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री ठाकुर मशालसिंहजी गवरनर से मिले, जिसके सम्बन्ध में आज तक उन्होंने जनता के सामने कोई बात प्रगट नहीं की। जनता के असन्तोष के भाव को मैंने कुछ २७ जुलाई के "लिबरेटर" में लिखा है। शब्द कड़े होंगे, जिसके लिए मैं ठाकुर साहब से क्षमा चाहता हूं। परन्तु मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि ८-८-२९ के "आर्यमित्र" में मेरे लेख का उत्तर देने की जो चेष्टा की गई है, उसमें मेरी कही हुई एकबात का भी उनसे उत्तर नहीं बन पड़ा। क्या वे बतला सकते हैं कि उन्होंने आर्य-जनताको गवर्नर महोदय से हुई बातचीत के सम्बंधमें विश्वासपात्र क्यों नहीं समझा? और उनकी भेंट गवरनर महोदय से १३-७-२९ को हुई थी, परंतु १७ ता० के "लीडर" में बेमतलब तार देने के सिवाय उन्होंने आज तक आर्यजनता को बतलाने की क्या चेष्टा की है कि आयसमाज को अपनी मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भविष्य में क्या उपाय करना चाहिये?

मैंने रायबहादुर ठाकुर साहब तथा उनके पुत्रों के सम्बन्ध में यदि कुछ असत्यपूर्ण लिखा हो, तो ठाकुर साहब उसका प्रतिवाद कर सकते

हैं, मैं पहला व्यक्ति हूंगा जो उनसे नियम पूर्वक क्षमा चाहूंगा। और जो कुछ मुझसे उनके मान व आदर-वृद्धि के लिए हो सकेगा करूंगा। माननीय ठाकुर साहब क्या इस बात से इन्कार कर सकते हैं कि वे और उनके पुत्र निजू मामलों तथा आजीविका के सम्बंध में सरकार के आभारी नह हैं?

आर्यसमाज की 'सत्याग्रह' की योग्यता के सम्बन्ध में जो 'आर्यमित्र' ने ८।८।२९ के अङ्क में मुख्य लेख लिखा है उसे पढ़कर कौनसा सच्चा आर्यसमाजी, स्त्री वा पुरुष होगा जिसको लज्जा न आई हो। क्या ऋषि दयानन्द ने कायरों का समूह इकट्ठा करनेके लिए ही आर्यसमाजकी बुनियाद डाली थी? पंजाब के आर्यवीर अजीतसिंह, लाजपतराय, परमानन्द, राष्ट्रीय सेवा के कुंड में अपने जीवन की आहुति दे सकते हैं, पटियाला के अभियोग के समय कई आर्य-नेता जेलखाने में सड़ सकते हैं, महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में सहस्रों की संख्या में आर्यवीर कारागार में जा सकते हैं। लेखराम, श्रद्धानंद, राजपाल, धर्म-रक्षा के लिए अपने जीवन को स्वाहा कर सकते हैं, राजनैतिक क्रांति के लिए भगतसिंह तथा रामप्रसाद 'बिस्मिल' आर्यसमाज में हो सकते हैं, परंतु नगर कीर्तनों पर बाधाएं हटाने के लिए, 'आर्यमित्र' के सम्पादक को आर्यसमाज त्याग, निर्भयता, वीरता से दूर दीख पड़ता है, और सत्याग्रह करने के सम्बन्ध में असमर्थ प्रतीत होता है? मैं यह बात अभिमान से नहीं कहता; जोश से प्रेरित होकर नहीं कहता, बल्कि संयुक्त प्रांत की प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों की सूचनार्थ निवेदन करता हूं, कि यदि वे नगरकीर्तनों पर लगी बाधाओं के दूर करने में असमर्थ हैं तो स्पष्टरूप से इस बात का ऐलान करदें। फिर देखें आर्यसमाज सत्याग्रह के लिये पर्याप्त संख्या में आर्यवीर दे सकता है या नहीं?

---:o:---

मातृ—मन्दिर

---:o:---

माँ!

दूध-धोई रात हँस रही थी।

एक मधुर स्वप्न ने मुझे जगा दिया। मैं फिर सो न सका और गंगाजी के दुकूल पर आ रहा। परम-पावनी मां जान्हवी आकाश-गंगा की भांति शुभ्र नीर से जगमगाती विश्राम ले रहीं थी।

इस निशीथ चांदनी में, इस कटाले की सर्दी में, बड़े ही उज्वल श्वेत वस्त्र पहने, एक महिला आई और मेरे सामने से होकर नीचे-से-नीचे की सीढ़ी पर उतर गई। उन्होंने मुझे न देखा।

उन्होंने बड़ी आतुरता से गोदमें से सफेद कपड़ों में लिपटा हुआ एक बंडल निकाला और बड़ी संभाल के साथ सीढ़ी के पत्थर पर धर दिया। मैं जान सका, वह एक सद्य-प्रसूत बालक का बंडल था।

कुछ देर अपने नन्हें से बच्चे को मां ने देखा, चूमा और फिर वह चल दीं। मैं देखता रहा। एक ओर कुछ दूर गई, और जब वह लौटीं, तो एक डलिया उनके हाथ में थी।

डलिया में बड़े ही कांपते, परंतु सावधान, हाथों से बच्चे को लिटाया, उसके कपड़ों की तहों

को ठीक किया, अपने पास से बहुत से कपड़े की कतरनें निकालकर, बालक की शैय्या को गुदगुदा से गुदगुदा बनाया, और उसके दो नन्हीं रेखाओं सरीखे पतले, लाल ओठों से अपने दो जलते हुए व्याकुल ओठों को पूरे दो मिनट डुवाए रख कर डलिया को मां गंगा की लहराती हुई गोद में विसर्जन कर दिया।

बच्चे की तरिणी कुछ दूर निकल गई, मां की देह वहीं की हो रही। मां हिल न सकी। बच्चे की जान को जिस जर्जरी, बेचारी नाव पर विश्वास रख कर उन्होंने अथाह-जल की विकरालता के सपुर्द कर दिया था, मां उस डगमगाती हुई नाव को एक-टक देख रही थी।

मैं धीरे से गंगा में पैठ गया। सर्दी शायद भाग गई थी। मैं डलिया तक पहुंचा, उसे पकड़ा और किनारे खींच लाया। बच्चा आसमान में शायद परमात्मा को पहचान रहा था। उसकी बड़ी-बड़ी कमल सी आंखें भरपूर खिली हुई थीं।

माँ ने कहा—मुझे दो।

"क्यों?"

"वह मेरा है, मैं उसकी मां हूं" यह शब्द स्नेह में से गूंथे गये थे।

"क्या तुम उसे बहा दोगी?"

"हां"

यह "हां" मेरे हृदय में बिंध गई और बालक मैंने उन्हें थमा दिया।

वहा देने के सिवा, मैं कर क्या सक्ती हूं, मैं मां जो हूं। इतना कह वह वहीं बैठ गई और बालक को जोर से चिपटा लिया। उन्हों ने फिर पूर्ण विस्फुरित आंखों से मुझे देखा। उनमें राक्षसीयता थी क्या? मुझे ऐसा ही लगा। पर वह था शुद्ध मातृत्व।

× × ×

सवेरे ही जब मैं अपने बुखार को लेकर घाट पर पहुंचा-वहां भीड़ लगी हुई थी। मां वहीं की वहीं, जैसी की तैसी, निर्जीव बैठी थी। वह उनका शव था, प्राण उन के रात की सर्दी के साथ उड़ गये थे। उनकी आंखें बच्चे के खेलते हुए मुंह पर गढ़ी हुई थीं। बालक गोद में, उनकी निस्सत्व निश्चेष्ट आंखों में पूरी सजग सजीवता के साथ उलझा हुआ था। बालक सजीव क्रीड़ा-मग्न था, मां अन्तर्हित हो चुकी थी।

× × ×

इस निर्बाध मातृत्व को मैंने देखा। समाज के कुकृत्यों और कुबन्धनों ने इस गुरु मातृत्व को कितनी निरीहता से भर दिया है। समाज ने उसे निठुर बन जाने को लाचार किया है। पर वह मातृत्व कितनी नैसर्गिक, कितनी परिमल और कितनी स्निग्ध वस्तु है!!

समाजके अत्याचार पर मां का यह स्व-उत्सर्ग मैंने देखा-और मैंने बालक को उस गोद में से उठा लिया।

× × ×

वह बालक मेरे पास है। उस में अबोध शिशुपन और अबोध मातृत्व की झलक मैं पाता हूं। समाज की घृणय, अवमाननीय, वह वस्तु-वह बालक-मेरी संताप की, मेरी अर्चना की वस्तु है।

—जैनेन्द्रकुमार

विचार-निमन्त्रण

—:०:—

आर्य-सभासद् के सदाचारकी व्यवस्था

मैं समझता हूं अब समय आ गया है कि श्रीमती सार्वदेशिक सभा पंजाबके कालेज समाजों की आर्यप्रतिनिधि को लेनेके दृढ़उपाय सोचे। सार्वदेशिक पत्र के गत उत्तम अंक में जो पत्र व्यवहार छपा है, उसमें मैं समझता हूं कि कालेज समाज के नेताओं ने जो उत्तर दिया है वह अनुचित नहीं। कारण कि मानहानि का प्रश्न उस समाज के सामने है। मुझे ४५ वर्ष आर्यसमाज का सभासद हुए हो, लिए हैं। मैंने २२वर्ष पंजाबमें रहकर सभासद के रूपमें सामाजिक काममें कुछ अनुभव प्राप्त किया। इसके पीछे गत २२ वर्ष से मैं इधर बड़ौदा में हूं। बड़ौदा में आने से पूर्व जब पंजाब में ही था, तो श्री महात्मा मुंशीरामजी तथा पं० गोपीनाथ सनातनी के अभियोग के समय, यदि मेरी स्मृति मुझे धोखा नहीं देती तो, प्रोफेसर रामदेव ने अदालत में कहा था कि हमारी दो Parties (दल) विरोधी दल नहीं, किन्तु Division of Labour के नियमानुसार वा गवर्नमेन्ट के कार्य विभाग के अनुसार भिन्न भिन्न Department (विभाग) हैं। इससे पहले स्व० धर्मवीर पं० लेखरामजी के बलिदान के अवसर पर दोनों दल मिलने के लिए कितने व्यग्र थे, और कुछ काल मिल भी गये, यह बातें विचार करने योग्य हैं। स्वर्गीय श्रीमंत महाराजा कोल्हापुर ने जब मुझ से कहा कि "आर्य लोग पंजाव के दो दलों का द्वेष दूर करें--इसका बुरा परिणाम इधर पड़ता है।" तो मैंने कहा कि "अब द्वेष बहुत कुछ शांत हो चुका है, हम द्वेष करते करते थक चुके हैं। वास्तव में जब दोनों समाजें १० नियम ही मानते हैं तो उनको एक समझने में दिक्कत नहीं होनी चाहिये। संस्थाएं, धन राशी, तथा प्रबन्ध सदा पृथक रहे, इसमें कुछ हानि नहीं।" यह उत्तर मैंने कोल्हापुर नरेश को दिया था, आगरा के महा० स्वामी परमानन्दजी के सामने की बातहै। अब इससमय जबकि मिलाप का प्रश्न बड़े वेग से चल रहा है तो मेरी समझ मेंजो बात आती है, वह निवेदन करता हूं। इसके होने पर दोनों दल मिल सकते हैं। वह बात यह है कि जब आ० प्रतिनिधि सभा पंजाब की रजिस्ट्री कराने की चर्चा महात्मा दल में फैली तो स्वर्गीय श्री राय पैडारामजी ने आर्य सभासद के सदाचार की व्याख्या करने पर बड़ा जोर दिया था। शायद अन्तरंग सभा ने कुछ व्याख्या की भी थी, जिसका भाव शायद यह था कि, सदाचार से भाव उस सदाचारका लिया जावेगा जिसकी व्याख्या महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश के दशम समु० में की है। अस्तु। अब मेरा निवेदन यह है कि आजकल उपनियमों के संशोधन तथा व्याख्या करने कराने की भारी चर्चा आर्य सामाजिक जगत में चल रही है। इस लिये यदि हम उस उपनियम की व्याख्या जिसमें सदाचार का शब्द आया है, इस प्रकार करदें, और वह भारतवर्ष के सब आर्यसमाजों के लिये समान लागू होगी, तो उस उत्तम दशा में कालेज समाज की मानहानि का प्रश्न ही जाता रहेगा। प्रत्येक आर्य सभासद को जानना चाहिये कि सदाचार शब्द निम्न बातों को कम से कम प्रगट करता है।

(१) अहिंसा—किसी मनुष्य का खून न करना।

(२) सत्य—सत्य मानना, बोलना तथा करना।

(३) आस्तेय—परधन का चोरी वा रिश्वत द्वारा त्याग।

(४) ब्रह्मचर्य—वेश्यागमन, हस्तमैथुन पुंसी मैथुन आदि कुकर्मों के त्याग से वीर्य तथा बल वृद्धि करते रहना।

(५) अपरिग्रह:—शराब, मांस आदि विषय वर्द्धक पदार्थों के सेवन का त्याग करना।

—शुभचिंतक सेवक

आत्माराम अमृतसरी।

समाधान ?

मैं "अबला" हूं, किन्तु अबला शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे उसमें अनार्यता की गन्ध आती है। आर्य-संस्कृति का मुख्य सिद्धान्त है स्त्री-पुरुष साम्य,-समता-पूर्ण स्त्री पुरुष की सहयोगिता। यह शब्द इस सिद्धान्त से उलटा पड़ता है। नहीं जानती हमारे देश में ये कैसे प्रचार पा गया। मैं समझती हूं ऐसे अनार्य और सिद्धान्त-घातक शब्दों का प्रयोग जल्दी से जल्दी खतम हो जाना चाहिये!

ऐसे ही और भी शब्द हमारे यहां प्रचलित हैं। मैं उन्हें अनार्य ही कहूंगी, जब तक कोई पंडित उन्हें शास्त्र विहित या वेद विहित न प्रमाणित करदें।

पंडितों के आगे मैं "कन्यादान" शब्द, प्रथा और विधि की पुष्टि करने का निवेदन रखती हूँ।

[१] कन्या-दान शब्द का उल्लेख क्या अपने शास्त्रों में मिलता है? कहां और किस प्रकार?

[२] क्या इस शब्द में ऐसी ध्वनि नहीं निकलती कि कन्या जैसे और सामान सम्पत्ति की तरह हेय वस्तु है? क्या सचमुच कन्या दे-डालने या ले-बैठने की वस्तु है?

[३] क्या आर्य संस्कृति में इसकी गुंजायश है? या इसका विधान है कि स्त्री पुरुष से छोटी, हीन, चेरी, पांव की जूती, जो जब चाहे उतार देने और पहन लेने की चीज है?

[४] क्या यह स्पष्ट नहीं है कि स्त्री की आवश्यकतायें वही और उतनी ही हैं जो पुरुष की? स्त्री की उपयोगिता भी कम नहीं है, स्त्रीमें ज्ञान भी कुछ घटिया नहीं है?

[५] जब यह सत्य प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक प्रकार से प्रत्यक्ष सिद्ध है तो इस सत्य के खिलाफ जानेवाला शब्द (असत्य) फिर भी परिपोषणीय है?—त्याज्य नहीं है?

[६] क्या अपने आगम में निर्विवाद स्पष्ट उल्लेख और विधान नहीं है कि स्त्री पुरुष की समकक्षणीय है सहयोगिनी, अर्द्धाङ्गिनी और मातृ-रूप में पूज्या है?

सीतादेवी वर्मा

भरतपुर राज्य

एक विशेष योजना।

चतुर मास का प्रोग्राम

वर्षा ऋतु में प्रायः समाजों के उत्सव इत्यादि बहुत कम होते हैं, और भ्रमण आदि में भी अन्य ऋतुओं की भांति सुविधा नहीं होती। इसलिए इन दिनोंमें हमें विशेष रूपसे 'क्या करना चाहिए' इस सम्बन्ध में एक विचार-योजना हम आपके सामने उपस्थित करते हैं—

(१) स्वाध्याय की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

(२) किसी एक या दो स्थान में जमकर कथा इत्यादि द्वारा वेद-प्रचार किया जाय।

(३) यम-नियम आदि में किसी एक व्रत का विशेष-अनुष्ठान किया जाय। स्मरण रहे एक अनु-

ष्ठान में यथेष्ट सफलता प्राप्त हो जानेसे अन्य सभी में आपसे आप सफलता प्राप्त होने लगती है और किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रहती। एक संयम हजार संयम के लिये सहायक होजाता है।

(४) अपने पड़ोस या गांव के अनपढ़-भाई-बहनों को पढ़ानें का यत्न किया जावे।

(५) साधुओं को कोई ऐसी कठोर प्रतिज्ञा धारण कर उसे अभ्यास में लानें का यत्न करना चाहिए, जिस से उनकी आत्मोन्नति हो, और उनके संसर्ग में आनें वाले गृहस्थियों का सुधार हो। जैसे किसी रिश्वत खाने वाले या नियम से संध्या-अग्निहोत्र न करने वाले गृहस्थियों के घर भिक्षा न करना।

(६) देश तथा समाज के हितार्थ तन, मन, धन अर्पण कर देने के लिए विशेष तैयारी करना, और आवश्यकता पडने पर कारावास का जीवन कष्टप्रद अनुभव न हो, इसलिए किसी न किसी कठोर परिश्रम का अभ्यास करना।

(७) सप्त-व्यसनों को तिलाञ्जलि देकर शुभ कार्यों में तत्पर रहने का अभ्यासी बनना।

(८) मातृ-भक्ति के प्रति विशेष पूज्य और आदर के भावों को स्वयं अपनाना और उनका दूसरों में प्रचार करना।

(९) आहार सादा और जल्द पचाने वाला करना चाहिए और अपना रहन-सहन एक दम सादा, सात्विक और स्वाभाविक बनाने को यत्नशील रहना।

(१०) नव-युवकों में ब्रह्मचर्य रखने और शक्ति संचार करने का यत्न करते रहना चाहिए और उनके हृदय में इस भाव को जगाने और जाग्रत रखने का उद्योग करना चाहिये कि वे घर-बाहर कहीं भी, किसी भी दशा में अपने मा-बहनों का अपमान न सहन कर सकें।

—'आनन्दभिक्षु' सरस्वती

———:o:———

साहित्य—सत्कार

——:o:——

वैदिक-संध्या-रहस्य

लेखक—पूज्यपाद श्रीमहात्मा नारायण स्वामी जी महाराज, प्रकाशक सार्वदेशिक सभा देहली, पृष्ठ संख्या ७२ मूल्य -)॥

प्रस्तुत पुस्तक में संध्या मंत्रों के शब्दार्थ, तथा भावार्थ के पश्चात उनकी विस्तृत व्याख्या की गई है। यह व्याख्या कैसी सुन्दर, कितनी मनोरम कितनी खोजपूर्ण बन पड़ी है, उसके बतलाने की जरूरत नहीं है। जिन लोगों ने श्रीपूज्य स्वामीजी महाराज की उपनिषदों की मनोहर कथा सुनी है, वह इस बातको भली भांति जानते हैं कि श्रीस्वामी जी का उपदेश किस पाये का होता है, और वह किस प्रकार सुधारस से पगा हुआ होता है। सच तो यह है कि जहां श्रीस्वामी जी की बाणी में अमृत है वहां उनकी लेखनी में भी चमत्कार है। पुस्तक खोलते ही, वैदिक-सन्ध्या-रहस्य के नीचे सन्ध्या का उद्देश्य मिलता है। सन्ध्या क्यों, कैसे और कब-कब करना चाहिए? मानव धर्म क्या है? मनुष्य को इस संसार में आकर क्या क्या करना

पड़ता है ? उसे क्या क्या करना चाहिए ? और वह इन कर्तव्य-कर्मों को यथेच्छा से पालन करके किस प्रकार अपने मनुष्य जन्म को सफल बना सकता है ?यह समस्त उद्देश्य किस प्रकार सन्ध्योपासना द्वारा सम्पादन किये जा सकते हैं। इस विषय को इस पुस्तक में बड़ी सुन्दरता के साथ प्रतिपादित किया गया है।

सन्ध्योपासन प्रत्येक आर्य का नित्यकर्म है, और उसे उसको प्रत्येक दशा, प्रत्येक अवस्था में आजीवन करना पड़ता है। जिन लोगों का मन ईश्वरोपासना में न लगता हो, जो चिरकाल से सन्ध्या करते करते उकता गये हों, और उन्होंने अपने जीवन में सन्ध्योपासन द्वारा कोई विशेष परिवर्तन न पाया हो, उनसे मैं बल पूर्वक कहूंगा कि वह एक बार इस पुस्तकको अवश्य पढ़ जायं। यह पुस्तक उन्हें आशा और विश्वास का सन्देश देगी, और कुछ दिनों में वे अपने जीवन में एक नवीन, अपने हृदयमें नवीन ज्योति की झलक पायेंगे।

यह सर्वथा सुपाठ्य है। किसी आर्य को इस पुस्तक के बिना न रहना चाहिए। आर्यसमाजों को तो इसे धर्मार्थ बांटनेके लिये अपने यहां काफी तादाद में रखना चाहिए।

भावना

लेखक स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थ-माला, वृन्दावन। पृष्ठ सं० लगभग २५०, मूल्य ॥।=)

इस पुस्तक के लेखक स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती—हिंदीके पुराने सेवक हैं। आपकी सेवा गुप्त तथा निःस्वार्थ है। आप के लेख प्रायः समाचार-पत्रों में विविध नामों से प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपके ही भिन्न भिन्न विषयों पर विचारों और सद्भावनाओं का संग्रह है। लेख क्या हैं उत्तम गद्यमय कविता है। हिंदी में ऐसी पुस्तकों का प्रायः अभाव है। पुस्तक के भाव उत्कृष्ट हैं। 'बेकन विचाररत्नावली' को पढने में जो आनन्द आता है, वही इस पुस्तक के पढ़ने से प्राप्त हो सकता है। हम चाहते हैंकि इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार हो,क्योंकि ऐसी उत्तम भावनाओं को पढकर प्रत्येक हृदय शुभ संकल्प वाला हो सकेगा और तभी जीवन सुन्दर व महान हो सकता है।

"अर्जुन"



विविध-समाचार

—मल्लावा ज़िला हरदोई में सैयद हामिदअलीखां मुतजिम ताजियादारी ने इस गांव के खास खास हिन्दू मुसलमानों को बुला कर, यह कहा कि बिना शंख, घड़ियाल के मन्दिरों में पूजा हो सकती है। इस लिए यह चीजें पूजा के वक्त इस्तेमाल में न लाई जायं। इस हुक्म को लिख कर भी पुलिस के द्वारा भिजवाया गया। इस की सूचना हिन्दुओं ने गवर्नर महोदय और डिप्टी कमिश्नर साहब को भी दी है। परन्तु अभी तक कोई सुनवाई नहीं हुई है। मन्दिरों के पुजारी निराहार व्रत कर रहे हैं।

—ब्रिटिश पार्लमैंट के हाउस आफ कामन्सके पोस्टमास्टर जनरल ने यह घोषणा की है कि दो या तीन मास के अन्दर लन्दन और बर्लिन के बीच तार के ज़रिये तसवीरें आने जाने का सिलसिला शुरू हो जायगा।

—नैनीताल के पूर्व स्वामी गोविन्दलाल जी शाहन ताकुला ग्रामकी अपनी ३० एकड़ भूमि तथा मकानात आर्य प्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रांतको प्रदान की हैं। यह जायदाद अन्दाजन ५०,०००) रुपयेकी है। सभा को इन में एक गोशाला और एक अनाथालय स्थापित करने होंगे। यह दान सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री० पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की कृपा से प्राप्त हुआ है।

—संन्यासी-मण्डल के प्रधान श्री० पूज्य शंकरानन्द जी महाराज इस समय कोलम्बो में वैदिक-धर्म का प्रचार कर रहे हैं। यह कहना न होगा कि श्री० स्वामी जी योरप, अफ्रीका आदि देशों में भी इस के पहले लगभग ६-७ वर्ष काफी प्रचार कर चुके हैं। आप के प्रचार का ढंग अत्यन्त आकर्षक और आप की व्यक्तित्व-शक्ति बहुत ही प्रभावोत्पादक है।

—पंजाबके प्रसिद्ध नेता डाक्टर सत्यपाल को दिल्ली के एडिशनल मजिस्ट्रेट ने ताजीरात हिन्द की दफा १२४ ए के अनुसार दोषी ठहरा कर दो वर्ष की सख्त कैद और ५००) जुरमाने की सजा दी। जुरमाना नहीं देने पर छः महीना और सख्त कैद की सजा।

—शुद्धि समाचार के सम्पादक स्वामी चिदानन्द जी को १५३ ए० और २९६ ए० के अनुसार छै-छै मास की कैद और तीन—तीन सौ रुपये जुर्माना हुआ। सेशन जज से अपील नामंजूर हुई, अब हाईकोर्ट में अपील दायर की गई है।

—गढ़वालमें प्रायः बुर्दाफरोशी होतीहै। अभी हाल में एक कन्या पांच बार बेची गई है। इस प्रकार वहां सदा क्रय विक्रय होता ही रहता है।

—मैसूर राज्य में अछूतों को वेद पढ़ने की राज आज्ञा होगई है, जो कोई पढ़ने से मना करेगा उसे राज्य से दंड मिलेगा।

—ब्यावर म्युनिसिपिलिटी ने खद्दर पर चुंगी माफ़ कर दी है।

—श्री० पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति, प्रचारक सार्वदेशिक सभा को ६ अगस्त को सिटी मजिस्ट्रेट ने बिना लाइसेन्स लिये "वेदों के सन्देश" पर व्याख्यान देने के अपराध में २० रुपये जुर्माना और जुर्माना न अदा करने पर दस दिन की सादी कैद की सज़ा दी। पं. धर्मदेव जी ने कैद भुगतना स्वीकार किया।

—पंजाब गवर्नमेंट की कार्यवाहियों से तंग आकर सरदार भगतसिंह व श्री० बी. के. दत्त ने पानी पीना तक छोड़ दिया है। इन्हें १५ अगस्त तक ६३ दिन भूख-हड़ताल करते बीत गये हैं। इन के साथ अन्य कैदियों ने ३३ दिन से भूख-हड़ताल कर रखी है।

———:०:———

आय, व्यय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

तारीख १-३-२८ से २८-२-२९ तक।

---:o:---

निधि	आय	व्यय
[१] दयानन्द दलितोद्धार निधि	+	५०)
[२] ढोढाराम चूड़ामणि वेद चार स्थिर निधि	५०)	+
[३] चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक स्थिर निधि	४७५)	+
" " सूद	१६६॥।=)	२६।-)
[४] शुद्धि-फन्ड	४९३।=)४	५॥।)
[५] विविध अमानतें	३८॥≡)	१६।≡)॥
[६] आर्य नगर का सूद	२४७॥)	+
[७] अ. दलितोद्धारसभा	१४९६६॥)१०	१५६८२॥-)
[८] " " निधि	+	७०)
[९] " " भवन	२ ६)	०
" " " सूद	६४॥।-)॥।	२६॥-)॥
[१०] दयानन्द आश्रम निधि सूद	५८।≡)।	०
[११] अफगानिस्तान प्रचार	२)	०
[१२] चीन "	२)	०
[१३] प्रकाशन	५०)	०
[१४] अमानत शुद्धिसभा	६८॥=)	१११॥।)
[१५] वेदप्रचारफन्ड	२२१२॥।-)४	×
[१६] रक्षानिधि	१३३४३॥।=)६	१४२४॥।=१०॥
" " का सूद	१२००)	×
[१७] शताब्दी फन्ड	२७२५=)	१११६८॥।-)
[१८] सार्वदेशिक पत्रिका	७८२॥।≡)	१७३५)४॥
[१९] कार्यालय	७=)	७२८।≡)॥
[२०] किराया	११४५)	×
[२१] ज्योति उपदेशक विद्यालय	५)	३३०॥≡)॥।
[२२] विविध-व्यय	×	॥≡)
[२३] वेदविद्यालय काशी	२)	×
[२४] दान	१७१=)१०	×
[२५] पंचमांश	११७६॥=)६	×
[२६] दशमांश	२०)	×
[२७] सूद स्थिरराशि	११५३॥।=)१	×
[२८] मद्रास प्रचार	३०१०)	४३४५॥=)॥।
[२९] बलिदान भवन	×	२५१॥-)
[३०] उचंत	६ =)॥	१२५॥।-)
[३१] आसाम प्रचार	०	६४॥≡)।
[३२] शताब्दी पुस्तक दान	०	२५≡)
[३३] अमानत बुरहानपुर जायदाद		३०)
योग	४४०५२-)२	३६५५८॥।)६

आय	४४०५२-)२
व्यय	३६५५८॥।)६
शेष	७४९३॥)५
गत वर्ष का शेष	११९६३॥≡)
कुल शेष	१२७१३०॥≡)५

ह० रघुनाथप्रसाद
एकाउ टेन्ट

---:o:---

बैलेंस शीट सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

बाबत मास फरवरी १९२९

—— :o: ——

२६२६॥) ०	दयानन्द दलितोद्धार निधि
५०)	ढोढाराम चूड़ामणि वेद प्रचार स्थिर निधि
३३३१ ~)३	चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक स्थिर निधि
६५०)	शिवलाल वेद प्रचार स्थिर निधि
६०३२।~।	शताब्दी पुस्तक दान
११९७॥-)१०	शुद्धिफण्ड
२००००)	सार्वदेशिक भवन मूल्य
४७॥)	विविध अमानतें
५७४७।)	आर्य नगर
४७२॥~)१०	श्र० दलितोद्धार सभा
२२०३॥=)॥	श्र० भवन निधि
१२४१॥।=)	दयानन्द आश्रम
५)	अफगानिस्तान प्रचार
२,	चीन प्रचार
८२०६॥~)६॥	वेद प्रचार फण्ड
२६९७८॥~)१॥	रक्षा निधि
२)	वेद विद्यालय काशी निधि
४१०९।॥)	देश शान्ति प्रचार
३४॥=।॥	उचंत
८१६)।	किराया मकान खाता
१६६॥=)	सूद चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक निधि
१८७ ०॥≡,५	योग

ह० रघुनाथप्रसाद पाठक एकाउन्टेन्ट।

जांच की, सही पाया। ह० श्रीराम।

५०)	श्रीस्वामी रामानंदजी
३८~)।	श्री प्रो० इन्द्र जी प्रधान दलपति आर्य वीरदल
८०००)	पोस्टल कैश सर्टिफिकेट
४२०≡)	श्री वत्सपांडयाट्रस्ट निधि
१५०	कुंवर हुकमसिंह
४६०६६)	पंजाब नेशनल बैंक देहली स्थिर राशि
१३१५०)	पीपल्स बैंक देहली स्थिर निधि
२५)	पुस्तकाध्यक्ष सभा
६=।)	पं० शंकरदेव पाठक
९८३३)॥।≡)	सेन्ट्रल बैंक देहली स्थिर राशि
२००००)	सार्वदेशिक भवन
२)	ठाकुर माधवसिंह
४७।)	डी० ए० हाईस्कूल देहली
१२२१॥।=)।	शामियाना
२५)	देहली इलैक्ट्रिक कम्पनी
५०)	रघुनाथप्रसाद पाठक
४६)	आर्यसमाज मंगलौर
१८५१४॥~)।	पुस्तकालय
५६२२॥~)२	पंजाब नैशनल बैंक दिल्ली चलतखाता
६=)	कृष्णलाल वकील सहारनपुर
७॥)॥	पं० द्विजेन्द्रनाथ
२६)	पं० रामरक्ष उपाध्याय
२५५)	अर्जुन प्रेस देहली
४०)	डा० कुंतलकुमारी
३४~)	कोषाध्यक्ष सभा
१२७१३०॥≡)'९	योग

नारायणदत्त कोषाध्यक्ष।

—— —:o:—— —

आय, व्यय बजट के लेखे के साथ

१-३-२८ से २८-२-२९ तक

---❀---

आय

निधि	बजट १९२७-२८	आय	बजट १९२८-२९	आय
सूद	२२५०	२१६४।।।≡)४	२३७५	२९४६।।≡)१
सेठ जुगलकिशार जी बिडला	३०००	३२५०)	३०००	७५०
वि० मद्रास प्र०	+	÷	+	२६०)
पत्र मांश	९९६	८९९।)	१ ०७	११७९।।=)।।
दश मांश	२५०	१७५।।)	२००	२०)
किराया	१०८०	८६५	७८०	११४५)
दान छात्रवृति	+	÷	९००	५)
सार्वदेशिक	२०००	१०६४≡)	१२००	७८२।।।≡
अफ्रीका प्रचार	...	...	५००	...
आसाम प्रचार	..	...	१२००	...
पुस्तक बिक्री	८००	७८१।	६३२	८३४।।≡)६
विविध दान	२७७०	३२२।।।=	३२११	१७१=)१०
,, आय	...	...		७=)
योग	१३११६	६५२२।।। ४	१५१०५	६६०२।)११
रक्षा निधि	+	१७६८३।।≡)६	३३०१७	१३३४३।।।= ९
श्र० भवन	५२०००	२१२।।-)	४०००	२१६
योग	५२०००	१६८ ७।। ६	३७११७	१३५६२।। =)६
चंद्रभान् वेदमित्र स्मारक निधि	२२८०	१५०	१८००	४७५
सूद				१६६।।।=)
शुद्धि फंड	९०	७५०।=)	१००	४६३।=,४
योग	२३७०	९००।=)	१९००	११३०।)४
महायोग	६७४८६	३०२३०।।≡)१	५४०२२	२४६००।।

व्यय

निधि	बजट १९२७-२८	व्यय	बजट १९२८-२९	व्यय
मद्रासप्रचार	४०००	५१२४।।≡)	५३७५	४३४५।।।=)६
कार्यालय	१२१६	१४५४।।।≡)।।।	९६७	७२८।≡)।।
ज्योति उपदेशक विद्यालय	२३००	१३६६।।≡)६	२४६१	३३०।।≡)६
सार्वदेशिक	२०००	२०६२।।-)।।।	२४००	१७३५।)४।।
अफ्रीकाप्रचार	१५००	१०००	५००	०
आसाम प्रचार	१२००	२५०=)।।।	१२००	६४।।≡)।।
पुस्तकालय	८००	६३६।।=)।।	६३२	७३५=)
वेद--प्रचार	०	०	१२००	०
बलिदान भवन	१००	९५=)।।	३४०	२५१।।-)
योग	१३११६	१२२ ४	१५१०५	८१६१।।।)१०।।
रक्षानिधि	०	८२४।=)।	३०१७	१४२४।।।=)१०।।
श्र० भवन	५२०००	२१५।≡)	५००	२६।।-)।।
योग	५२०००	१०३६।। -)।	३५१७	१४५१।।)४।।
चन्द्रभानु वेदमित्र निधि	२२८०	१६३।-)।।	१८००	२६।-)
शुद्धि	९०	२११।।।-)	१००	५।।।)
श्र० भवन	०	०	३५००	०
रक्षानिधि	०	०	३००००	०
योग	२३७०	४०५=)।।	३५४००	३२-)
महायोग	६७४८६	१३७३८।।≡ ।।।	५४०२२	९६७५।=)२

सार्वदेशिक के नियम

ग्राहकों से निवेदनः-

१ सार्वदेशिक प्रत्येक अंग्रेजी मास की १५ ता० को प्रकाशित होता है।

२ इसका वार्षिक मूल्य भारत के लिए दो रुपया, विदेश के लिए पांच शिलिंग है। वी. पी. से मंगाने वालों को ≡) इससे अधिक देने पड़ेंगे।

३ सार्वदेशिक का वर्ष मार्च मास से आरम्भ होता है, किंतु वर्ष के किसी भी मास से कोई ग्राहक बन सकता है।

४ पत्रादि लिखते समय ग्राहकों को अपना नाम और पूरा पता तथा ग्राहक संख्या खूब साफ लिखना चाहिये।

५ प्रत्येक ग्राहक के पास "सार्वदेशिक" बड़ी सावधानी से भेजा जाता है। यदि इस पर भी किसी के पास कोई संख्या महीने के अन्त तक न पहुंचे, तो उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ लेना चाहिए, फिर हमें लिखना चाहिए। वह संख्या उनके पास भेज दी जायगी।

लेखकों से प्रार्थनाः-

१ कृपया लेख साफ—साफ और काफी मार्जिन छोड़कर क़ाग़ज़ के एक ही तरफ लिखिए और जो कुछ लिखिए, यथासंभव संक्षेपमें लिखिए, लेखों को क्रमशः छापना हमें पसन्द नहीं।

२ किसी लेख या कविता का छापना न छापना, लौटाना या न लौटाना, अथवा उसे घटाना बढ़ाना या संशोधन करना सम्पादक के आधीन है।

३ अधूरे, अनुचित, वैयक्तिक वा साम्प्रदायिक विवादग्रस्त लेख सार्वदेशिक में न छप सकेंगे।

४ लेखों तथा कविताओं का स्थान मुख्यतया हमारे सुविधा पर निर्भर है। अच्छे अच्छे लेख तथा कवितायें कभी प्रारम्भ में, कभी बीच में, कभी कभी अन्त में होंगी।

५ लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तनार्थ पत्र भेजने तथा विज्ञापन छपवाने आदि समस्त प्रबन्ध विषयक पत्र व्यवहार प्रबन्धकर्ता, सार्वदेशिक से करना चाहिए।

सम्पादकः—
"सार्वदेशिक" देहली।

पंडित रघुनाथ प्रशाद पाठक पब्लिशर के लिए अर्जुन प्रेस, श्रद्धानन्द बाज़ार देहली से छप कर प्रकाशित हुआ।

Registered No. L 2121

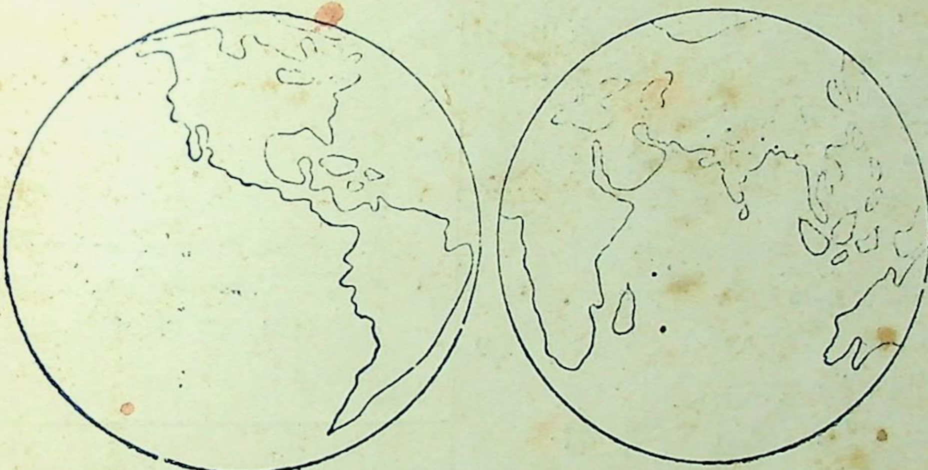
ओ३म्

कार्तिक १९८६
अक्तूबर
१९२९

सार्वदेशिक

दयानन्द
अब्द
१०५

भूमण्डल



कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् ॥ वेद ॥

वार्षिक
मूल्य
२)

सम्पादक--स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती

एक प्रति का
मूल्य
≡)

ओ३म्

विदेश से ५ शिलिङ्ग

विषय-सूची

सार्वदेशिक के नियम

ग्राहकों से निवेदनः-

१ सार्वदेशिक प्रत्येक अंग्रेजी मास की १५ ता० को प्रकाशित होता है।

२ इसका वार्षिक मूल्य भारत के लिए दो रुपया, विदेश के लिए पांच शिलिंग है। वी० पी० से मंगाने वालों को ≡) इससे अधिक देने पड़ेंगे।

३ सार्वदेशिक का वर्ष मार्च मास से आरम्भ होता है, किंतु वर्ष के किसी भी मास से कोई ग्राहक बन सकता है।

४ पत्रादि लिखते समय ग्राहकों को अपना नाम और पूरा पता तथा ग्राहक संख्या खूब साफ लिखना चाहिये।

५ प्रत्येक ग्राहक के पास, "सार्वदेशिक" बड़ी सावधानी से भेजा जाता है। यदि इस पर भी किस के पास कोई संख्या महीनेके अन्त तक न पहुंचे, तो उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ लेना चाहिए, फिर हमें लिखना चाहिए। वह संख्या उनके पास भेज दी जायगी।

* ओ३म् *

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष ३ | कार्तिक १ सम्बत् १९८६ वि० | अङ्क ८

अक्तूबर १९२९ ई०] [दयानन्दाब्द १०५

अभ्यास की महिमा

———:०:———

(ले०—श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज)

———:०:———

योग दर्शन के आचार्य महामुनि पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग बतलाते हुए उसकी सिद्धि के केवल दो साधन, अभ्यास और वैराग्य, बतलाये हैं उन में से अभ्यास वह महत्त्व पूर्ण वस्तु है कि, उस से संसार की हरेक पहेली हल की जासकती है। जो कार्य और किसी तरह से नहीं होसकते वह भी अभ्यास से हो जाया करते हैं। देखो वह सामने एक पत्थर पड़ा है, इसका वजन १० मन से कम न होगा। इन्द्र, इशारा पाकर पत्थर के पास पहुँच गया और जानने के लिए कि, क्या वह उसे उठा सकता है, उसे हिलाने जुलाने की चेष्टा करता है, परन्तु पत्थर टस से मस नहीं होता। अब किस प्रकार इन्द्र इस पत्थर को उठा

सकता है ? उसे पहले मन, फिर दो मन, तीन मन इत्यादि वजन के पत्थरों के उठाने का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास करते करते एक दिन वह इस वजनी पत्थर के उठाने में सफलता प्राप्त कर लेगा, इन्द्र ने इसी तरह अभ्यास शुरू किया। यह लो! अभी अभ्यास को ३ मास भी नहीं बीतने पाये थे कि इन्द्र उस पत्थर के उठा लेने में सफलता प्राप्त कर लेता है। कृष्ण चाहता है कि वह संस्कृत का व्याख्याता बन जावे और धारा प्रवाह संस्कृत भाषण करने लगे, परन्तु उसे अभी तो सभा में ठीक रीति से खड़े होकर चार शब्द बोलने की भी योग्यता नहीं है। कुछ परवाह नहीं, उसे व्याख्यान देने के लिये खड़ा होना चाहिये। वह खड़ा होगया, वह खड़ा तो होगया-परन्तु देखो उसके पांव एक ओर कांप रहे हैं, ज़ुबान दूसरी ओर लड़ खड़ा रही है, कोई भी शब्द ज़ुबान से पूरा नहीं निकलता, वह घबड़ा कर बैठ गया। दूसरे दिन वह फिर खड़ा होता है, आज कल से उसका कुछ अच्छा हाल है, एक दो शब्द भी उसने साफ़ बोल दिये हैं। इसी प्रकार एक सप्ताह बराबर प्रति दिन खड़ा होने से उसे ढंग से खड़ा होना और ढंग से कुछ बोलना भी आगया। अब इस अभ्यास में सफलता देखकर कृष्ण की रुचि अभ्यास करने में बढ़ गई और अब वह दिन में दो वार खड़ा होकर कुछ कहने लगा। अभ्यास को इसी प्रकार नित्य प्रति जारी रखते हुए ६ मास भी नहीं बीतने पाये थे, कि आर्यकुमार सभा के एक अधिवेशन में हम कृष्ण को अच्छा व्याख्यान देते हुए देखते हैं—

(३) आकृति विद्या के पण्डित मनुष्यके हृदय का भेद उसकी आकृति देख कर जान लिया करते हैं। राम को बड़ी उत्सुक्ता है, कि वह भी इस विद्या का जानकार बन जावे। इसी उद्देश्य से राम आकृति विद्या के एक पण्डित 'वरुण' के पास जाता है और इच्छित विद्या की प्राप्ति की दीक्षा लेता है, वरुण ने बतलाया, कि मनुष्य के मस्तिष्क से, जो उसके भावों और विचारों का केन्द्र होता है, रंगीन किरणें निकला करती हैं, जिन्हें अभ्यास से शक्ति विकासित करके मनुष्य जान लिया करता है। कुछेक किरणों का विवरण इस प्रकार है:—

(क) जो मनुष्य अत्यन्त आवेश वाले (Passionate) होते हैं। उनके मस्तिष्क से, गहरे लाल रंग की किरणें, निकला करती हैं।

(ख) परोपकारी निष्काम सेवा करने वाले महानुभावों के मस्तिष्क से निकलने वाली किरणों का रंग गुलाबी होता है।

(ग) यश की कामना वाले पुरुषों की किरणें नारंगी रंग की होती हैं।

(घ) फ़िलासफरों (दार्शनिकों) और गहरे विचारकों की किरणें गहरी नीली रंगत वाली हुआ करती हैं।

(च) कला प्रेमियों की किरणें पीली होती हैं।

(छ) उद्विग्न और उदास पुरुषों की किरणें धवल (Gray) रंग की होती हैं।

(ज) नीच प्रकृति वालों की मैली बादामी होती हैं।

(झ) भक्ति और सदुद्देश वालों की हलकी नीली।

(त) उन्नतशील पुरुषों की हलकी हरी और

(थ) शारीरिक और मानसिक रोगियों की गहरी हरी होती हैं, इत्यादि।

बरुण ने बतलाया, कि किस प्रकार राम को शक्ति विकसित करने और इन किरणों के देखने का अभ्यास करना चाहिए। राम उसीके अनुसार अभ्यास करके अपने को आकृति विद्या का पण्डित बना लेता है, और अब वह इस योग्य हो गया, कि किसी के भी हृदय का हाल जान सकता है।

तीनों उदाहरण स्पष्टता से साक्षी देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ने उपर्युक्त तीनों प्रकार की योग्यता अभ्यास और केवल अभ्यास से प्राप्त की है। आदत (स्वभाव) जो इतनी प्रभावशालिनी वस्तु है कि उसे द्वितीय प्रकृति (Secovd nature) कहते हैं. वह भी अभ्यास ही से बना करती है, मनुष्य के लिये उत्कृष्टता प्राप्त करने का साधन अभ्यास है, इसलिए अभ्यास की महिमा समझते हुए, उससे काम निकालने का यत्न प्रत्येक उन्नति के इच्छुक नर-नारी को करना चाहिये।

———:०:———

उनकी प्रतीक्षा में

———:०———

(ले०--वैद्य शास्त्री डा० हरिश्चन्द्र जी साहित्यालंकार भरतपु)

क्या इस अन्याय और अत्याचार का अन्त होगा! आखिर कोई इन्तहा सीमा! यह मुसीबत कब तक। यह जिल्लत कब तक! ऊफ? कब तक! कुछ ठिकाना है। मुद्दत गुजर गई, शताब्दियां बीत गई, पर हमारी दशा वैसी ही। हम पर वही जुल्म, हमारी वही बेईज्जती। नादिरशाह आया और चला गया, पर हमारे ऊपर से नादिरशाही न गई, न गई। संसार परिवर्तन शील कहा जाता है। यहां किसी की स्थिरता नहीं। एक आता है एक जाता है। वह गये, यह गये! पर हमारे लिए कुछ नहीं। हमारे भाग्य में वही ····आह वही। कमबख्त जान क्यों नहीं निकल जाती। ऐसी बुरी किस्मत लेकर जीना क्या। आह! कैसी बेहयाई की जिन्दगी है। जिन्दगी! यह जिन्दगी नहीं मृत्यु है, निकम्मी और घृणास्पद मृत्यु है। कोई जिन्दा आदमी बेहया नहीं होता। वह अपनी और अपनी जाति की इज्जत पर जान दे देता है। अपमानित जीवन जीवन नहीं होता. क्या होता है, सो मैं नहीं जानता, जान सकता भी नहीं। चिरकाल की पराधीनता में मैंने अपना ज्ञान बुद्धि एवं सभी कुछ गवां दिया है। आह! मेरी जिन्दगी, जिन्दगी नहीं, और जीता हूँ। मैं जीता हूँ, यह मैं कहता हूँ। दूसरा इसे मान नहीं सकता और मैं मनवा भी नहीं सकता इस जीने से मरना अच्छा, जीना चाहते हो तो मरना सीखो, पर मैं मरना भी नहीं जानता।

हाय ! मुझे मरना जीना कुछ नहीं आता । फिर मेरी सुनेगा कौन । सभी सबल की सुनते हैं, और अपने मतलब की सुनते हैं । दूसरों की और ऐसे वैसे की कोई नहीं सुनता । सुनना मूर्खता होती है, कोई मूर्ख क्यों बनेगा, हमको उनकी सुननी होगी, होगी क्यों, सुनते ही हैं, सुनोगे भी अच्छी तरह से, बुरी तरह से उनकी और उनके साथ औरों की भी । मिस मैयो कौन है ? हमने उनका क्या लिया दिया है । पर उन्हों ने हमें 'मदर इंडिया' (Mother India) में क्या, क्या नहीं सुनाया । ऊफ जी चाहता है। मुंह नोच लो, जवान काट खाओ, पर हम चुप हैं, एक दूसरे का मुंह तक रहे हैं, क्या ? उनकी प्रतीक्षा में ।

× × ×

हम दीन हैं, असहाय हैं, हमारा कोई नहीं ? भूतल पर हमें कही ठौर नहीं, हम एक नहीं, अनेक हैं, और एक होना नहीं जानते । हम कहते बहुत कुछ हैं, पर करते कुछ नहीं । हम स्वार्थी हैं——पतित और नीच स्वार्थी हैं । अपनी मानप्रतिष्ठा और अधिकार-पिपासा में अपने सगे भाई से शत्रुता करते भी, हमें तनिक संकोच नहीं होता । हम आपस में लड़ना, द्वेष करना, स्वयं मिटना और दूसरों को मिटाना अच्छी तरह जानते हैं । पर मिल कर रहना, मिल कर काम करना, एक दूसरे के लिये मर मिटना हमें नहीं आता । महामहोपाध्याय जी के पुत्र बनने में हमें बड़ा अभिमान है, पर स्वतः उपाध्याय होने के लिये भी हाथ पैर नहीं हिलाते । हम आततायियों से दुःखी हैं । उनकी दुष्टता, क्रूरता और उद्दण्डता पर हमारा खून खौलता है । हम से अपनी बहिनों, माताओं का अपमान नहीं देखा जाता । पर उन्हें दण्ड देने के लिये हम में साहस नहीं होता । साधु पुरुषों के त्राण के लिये हम "यदा यदाहि धर्मस्य" की कोरी रट लगाते रहते हैं । गो-गुहार और साधु-पुकार से भक्तवत्सल भगवान् का आसन हिलाने में हम निपुण हैं । पर वीर सैनिक की भांति स्वतः साहस दिखलाते हम कतराते हैं । राम-लक्ष्मण धनुष, बाण ले कर हमारी रक्षा के लिये आ जाएं । कृष्ण भगवान् के पधारने पर ही दुष्टों का दमन और गोरक्षा हो सकेगी । वैदिक-धर्म के पुनरुद्धार के लिये ऋषि दयानन्द को फिर एक बार आना चाहिये । महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी की सख्त जरूरत है । हिन्दुपति प्रताप के बिना हिन्दू जाति की रक्षा कौन करेगा । इन भावनाओं के सुख स्वयं हम देखा करते हैं । पर कुछ नहीं, वह हम को, हम उन को देख रहे है । क्यों ! उन की···।

× × ×

यह सब क्यों है ? हमारे आत्म विश्वास की कमी आत्मबल का अभाव नास्तिकता का प्राबल्य और सब से बढ़ कर हमारी भीरुता, कायरता कातरता । राम वनवास में है, लक्ष्मण के सिवा उनके आगे पीछे कोई नहीं । दागाबाज रावण आता है और सीता को हर ले जाता है ।

राम क्या करते हैं । क्या वह भी हमारी तरह दैवी शक्ति के आह्वान का आयोजन करते

हैं। नहीं, वह उसी बन में बन्दर और भालुओं की सेना को सुसंगठित करते हैं और उनकी सहायता से केवल महारानी सीता को ही दुष्ट के पंजे से छुड़ा नहीं लेते बल्कि, सारी लंका को ढा देते हैं, निशाचर कुल का नाश करते हैं और पापी रावण को उसके पाप का फल चखाते हैं। कहो, क्या तुम में ऐसा साहस है। या तुम हाय हाय मचाना और शुष्क प्रस्ताव ही पास करना जानते हो तुम्हें अब अपने वीर जाति के वीर सन्तान होने का परिचय देना चाहिए। आज दिन वह कौनसा अत्याचार है जो इन नर पिशाचों के द्वारा हम पर नहीं हुआ वह कौनसा दुःख है, जो आज दिन हमें नित्य प्रति नहीं मिल रहा। इस समय दशहरा, दिवाली और होली मनाने से और महापुरुषों के आह्वान से काम नहीं चलेगा। उठो और अपनी वीर प्रकृति के अनुसार कार्य कर दिखाओ, जिसमें तुम्हारे उत्साह और वीरता की झलक हो। विजयादशमी तुम्हारे लिए यही शुभ सन्देश प्रत्येक वर्ष लाती है। पर ध्यान कौन देता है। तुम्हें तो अपने परम्परा के अनुसार स्वांग रचना आता है। बन्दर और भालु संगठित हो सकते हैं। पर सर्व श्रेष्ठ आर्य जाति के महानुभाव संगठित नहीं हो सकते। वह भी कब जब हमारे सामने जीवन और मृत्यु का प्रश्न उपस्थित है, जब हमारी एक सीता का नहीं अनेक सती सीताओं का अनादर हमारे आंखों के सामने होता रहता है- किन्तु दुख और आश्चर्य का मुकाम है। नहीं, मरने और जूझ मरने का स्थान है। हमारा हरा भरा खेत हिरण आदि दुष्ट जन्तु तहस नहस कर चिड़ियां दानादाना चुगे जा रही है। पर हम बैठे देख रहे हैं। उठत नहीं, क्यों ? किस लिए उनकी प्रतीक्षा में, केवल उनकी प्रतीक्षा में।

———:०:: ———

कुम्भ प्रचार

——:०:——

भारत की अधिकांश जन संख्या ग्रामों में बसती है और यहां पर कोई आन्दोलन चाहे वह धार्मिक या राजनैतिक किसी प्रकार का क्यों न हो सार्व भौमिक नहीं होसकता, जब तक कि गांवों में उसका प्रचार न हो।

आर्य समाज अपने आरम्भकाल से ही इस की आवश्यकता को अनुभव करता रहा है और यद्यपि हमारे प्रायः सभी नेताओं की दृष्टि सदा से ही इस ओर रही है, तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि अभी तक देहातों में शिक्षा प्रचार ऐसा सन्तोष जनक मात्रा में नही हुआ जितना कि नगरों में। ग्राम प्रचार के दो ही साधन हैं, एक तो गांव गांवमें जाकर गांव वालोंको एकत्रित कर उन में प्रचार किया जाय। दूसरा उन सभाओ में प्रचार का प्रबन्ध किया जाय जहां पर गांव की जनता अधिक से अधिक संख्या में स्वयं एकत्रित होती है। ऐसे कितने मेले हैं जो कि भारतवर्ष में हर समय किसी न किसी नाम

से प्रायः सभी स्थानों पर होते रहते हैं। ये अवसर आर्य समाज के प्रचार के लिए बड़े ही उपयुक्त होते हैं। आर्यसमाज को इन मेलों से अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वामी जी महाराज ने भी अपने प्रचार कार्यमें इन मेलों का उचित उपयोग किया और कुम्भ के मेले से ही प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया गया, भारत के सभी मेलों में कुम्भ के पर्व बड़े महान हैं। और अब कुम्भ के मेलों में प्रयाग का कुम्भ सब से बड़ा होता है। इस अवसर पर प्रयाग में न केवल भारतवर्ष के ही प्रत्येक भाग से, वरन बाहर के भी यात्री और दर्शक लाखों की संख्या में एकत्रित होते हैं। आर्य समाज के प्रचार के लिये यह एक बड़ा अपूर्व अवसर है। थोड़े व्यय और परिश्रम से वेदों के अमृतमय सन्देश जितनी जनसंख्या के कानों में इस अवसर पर पहुँचाये जा सकते हैं, उन से कई गुना व्यय तथा परिश्रम करने पर भी समस्त भारत क्या उस के किसी प्रांत के एक भाग में भी इतना प्रचार नहीं किया जा सकता।

आर्यसमाज प्रयाग ने भी इस अवसर पर बडे पैमाने पर प्रचार कार्य करने का निश्चय किया है। मौखिक तथा मैजिक लालटेन द्वारा प्रचार करने के अतिरिक्त पूरे एक मास तक वृहद यज्ञ, नगरकीर्तन, संकीर्तन उपनिषदादि धार्मिक ग्रन्थों की कथा, बड़ी संख्या में ट्रेक्ट वितरण, गुरुकुल आदि अन्य आर्यसामाजिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के खेल तथा शुद्धि, अछूतोद्धार आदि अनेक धार्मिक सम्मेलनों के करने का विचार है, सारांश यह कि हम इस अवसर पर लाखों की संख्या में एकत्रित हुई जनता को आर्यसमाज का वास्तविक रूप दिखला देना चाहते हैं। इस कार्य के लिए कुम्भ प्रचार उप-सभा ने ११००० का बजट स्वीकृत किया है जो कार्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए कुछ भी नहीं है। कुम्भ-मेला स्थानीय तथा प्रांतिक मेला नहीं है वरन् सार्वदेशिक है। अतः इस अवसर पर धर्म-प्रचार का उचित प्रबन्ध करना केवल स्थानीय समाजों का और विशेषतः संयुक्त प्रांतीय समाजों का है और उन्हीं के भरोसे पर आर्यसमाज प्रयाग ने यह भार अपने उपर लेने का साहस किया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि देश के सभी समाजें विशेष कर संयुक्त प्रान्तीय सामाजें हमारे इस कार्य में पूर्णरूप से सहयोग देंगे और यह थोड़ासा धन (ग्यारह हजार) रुपया बहुत ही शीघ्र एकत्रित हो जायगा।

रास बिहारी तिवारी — मन्त्री — आ०प्र०नि० सभा

परमानन्द सिन्हा — प्रधान-मन्त्री — आ स० प्रयाग

——:o:——

राम चरित

हिन्दुस्तान—रामायण, भारत आदि में वर्णित हिन्दुस्तान-धार्मिक संस्कार का प्रतिनिधि है। इस बात का न जानना भारतीय आदर्श और मर्यादा से अपरिचित रहना है। जो लोग राष्ट्रीय विद्यालय में पढ़ते-पढ़ाते हैं, वे भी रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों को नहीं जानते। राम के समय में हिन्दुस्तान की सभ्यता कैसी थी? हम प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन की चर्चा करते हैं। इस शासन के लिये राजनीतिज्ञ कई पीढ़ियों से आन्दोलन कर रहे हैं, पर आर्यों के लिये 'प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन' कोई नई चीज नहीं है। रामायण कहती है कि, आर्य राजा एकाधिपति (खुदसर) नहीं होता था, कौंसिल की राय से वह देश का शासन करता था। कौंसिल में आठ सदस्य होते थे, जिस में दो ऋषि, और आर्य विद्या के जानकार होते थे। रामायण से मालूम होता है कि, राम के समय में समाज में मजदूरों और कारीगरों के प्रति वह घृणा नहीं थी, जो कुछ दिनों के बाद प्रकट हुई, और जिसने हिन्दू समाज की शक्ति हर ली। रामायण हमें बताती है कि, उस समय कारीगरों या शिल्पकारों को समाज में उत्तम स्थान प्राप्त था, और ब्राह्मणों तथा आचार्यों की तरह उनकी भी इज्जत होती थी।

उस समय आर्यों के गावों में अध्यापक रामायण आदि इतिहास लोगों को सिखाते थे। लड़के और लड़कियां उसे गाती थीं। आप आज भी देहातके लोगों को उन्हीं चीजों को गाते सुन सकते हैं इन वीर गायनोंमें सभ्यताकी परम्परागत सम्पत्ति है। दुर्भाग्य का विषय यह है कि, 'शिक्षित' समाज इन से अपरिचित हो गया है। इन इतिहासों के अध्यापन से मेरी समझ में दो उद्देश थे:- (१) लोगों के मनों पर भारतीय सभ्यता का प्रभाव डालना, उन्हें इसके मूल्य से परिचित कराना, और (२) यह बताना कि नित्य के सामने अनित्य का मूल्य कितना है। कई शताब्दियों तक भारतीय जीवन पर रामायण आदि राष्ट्रीय ग्रन्थों का प्रभाव पड़ता रहा। अध्यापक इन्हें भारतवर्ष के बिना दीवार विश्वविद्यालय में गा गाकर जनता को सुनाते थे। ये शिक्षक लोकप्रिय शिक्षा के प्रचार के लिये ईश्वर के भेजे हुए दूत थे।

भारतवर्ष हर साल राम की लंका विजय का उत्सव मनाता है। इस विजय का रहस्य क्या है?

तपस्या! राम अयोध्या छोड़ कर बन चले गये। राज कुमार राम ने सब सम्पति त्याग कर मोटे वस्त्र धारण किये। कन्द, मूल, और जंगली फल, उनका आहार हो गया।

सघन बनों में राम को प्रत्येक प्राकृतिक सुन्दरता अपनी ओर आकर्षित करती थी। योद्धा राम के हृदय में पवित्र आत्मा थी। प्रकृति का दृश्य और सत्य की सुन्दरता उनके हृदय में प्रवेश करती थी। पर यह आकर्षण उन्हें तपस्या की ओर खींच कर ले जाता था। यूनानी वीरों में यह बात न थी। उन्हें कमलों के देश

(Lotus-land) में आराम करने की लालसा थी। बेबिलोन ने बड़ी-बड़ी इमारतें तैयार कीं, मिश्र ने पिरामिड बनाए, असिरिया ने स्मारक बनाए, पर भारतवर्ष ने आश्रमों का निर्माण किया। ये आश्रम तपस्या के स्थान थे। बाद को जो बाग और महल यहां बने, वह नष्ट हो गए, पर आश्रम अभी तक मौजूद हैं। रावण के साथ युद्ध करने में राम ने आदि से अन्त तक आत्म-संयम और तपस्या-बल का परिचय दिया है। रामायण में एक जगह लिखा है कि, जादूगर रावण माया की सीता बना कर युद्धक्षेत्र में ले गया और वहां उसे कत्ल किया। राम को उस समय मालूम न हुआ कि, वह सीता माया की थी। वह उस समय न जानते थे कि, सीता जीवित है। उन्होंने समझा कि सीता मार दी गई, पर राम ने युद्ध बन्द नहीं किया। उनके भक्त भ्राता लक्ष्मण उन्हीं की बगल में पडे हुये थे। पर राम ने लडाई जारी रखी। तपस्वी निडर होता है, और उसके सामने एक ही कर्तव्य होता है। आकाश क्यों न गिर पडे पर वह युद्ध जारी रखता है।

संसार ने धन और बलकी पूजा की है। सब धनों में आत्म-बलिदान और सब बलोंमें तपस्या-बल श्रेष्ठ है। योरुप कहता है-"जीने का अर्थ है उत्पन्न करना", भारतवर्ष कहता है--'बलिदान करना ही जीना है।" योरुप इस समय घृणा, हिंसा आदि के भावों से भरा हुआ है। एक आस्ट्रियन प्रोफेसर का कहना है कि, "भारतवर्ष का अनुकरण करने--भारती करण-में ही योरुप की भलाई की आशा है।" मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि, योरुप को भारतवर्ष की बुद्धि भारतवर्ष के आत्मा के संसर्ग की आवश्यकता है। राष्ट्रों के समागम से साहित्य और आदर्श में नवजीव का संचार होता है। राष्ट्रों को नया स्वरूप प्राप्त होता है। इस नवीनता के लिए योरुप को चाहिए कि, वह अपना जाति---गर्व और लूट की बृत्ति त्याग दे, और हिन्दुस्तान से भाई-भाई की तरह मिले। आधुनिक भारतवर्ष को अभी बहुत बातें योरुप से सीखनी हैं, पर योरुप को भी भारतवर्ष से बहुत ज्ञान प्राप्त करना है। हिन्दुस्तान के दर्शन और साहित्य इसके प्राचीन सभ्यता के साक्षी है। योरुप इस पर लालच भरी निगाहों से देखता है। पर अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि, कितने ही लोगों ने इस देश में अपने को आराम में खो दिया है:—

बहुत लोगों ने अपने अपने हृदयको सोनेकी जंजीर से जकड़ लिया है। कितने ही लोगों ने उपाधियों से निज अत्याचारों को पददलित किया है। बहुत लोग सुख और शक्ति के स्वप्न देखने के आदी होगए हैं। पर अब भी मेरा विश्वास है कि, वृद्धा (प्राचीन) माता की मृत्यु नहीं हुई है। कई शताब्दियों की वीरता और आत्म-त्याग के बाद अब भी वही पुरानी वाक्य बोल रही है कि, ऐ पस्त हिम्मत लोगो! बलिदान करो और अपनी जँजीर तोड़ डालो।

—अज्ञात।

:*:

वेद-परिचय

—— -:o: ——

(ले०—बा० गंगाप्रशाद जी उपाध्याय, एम ए०, प्रयाग)

—— -:o: ——

(४)

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूति मुपासते। ततो भूय इव ते तमो यउ सम्भूत्या रताः ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इतिशुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभय थं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नु ते ॥

यजुर्वेद अ० ४० मं० ६, १०,११)

यह तीनों मंत्र परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः इन को इकट्ठा ही पढ़ना चाहिये। पहले मंत्र में 'असम्भूति' और 'सम्भूति' का वर्णन है। दूसरे में 'सम्भव' और 'असम्भव' का, और तीसरे में 'सम्भूति' और 'विनाश' का। इससे प्रतीत होता है कि 'असम्भूति', 'असम्भव' और 'विनाश' का एक अर्थ है और 'सम्भूति' तथा 'सम्भव' का दूसरा।

'सम्भूति' और 'सम्भव' 'भू' धातु में 'सम्' उपसर्ग लगा कर बनते हैं। इसका अर्थ है जन्म या उत्पत्ति। इस का उलटा है असम्भव 'असम्भूति' अथवा विनाश। तीसरे मन्त्र में 'विनाश' शब्द स्पष्ट ही है।

पहले मन्त्र में बताया है कि जो पुरुष 'असम्भूति' के उपासक हैं वह अन्धकार में पड़ते हैं और जो सम्भूति के उपासक हैं वह उससे भी गहरे अन्धकार में।

दूसरे मन्त्र में केवल इतना ही बताया है कि सम्भूति और असंम्भूति की उपासना एक नहीं है। ऋषियों की यही सम्मति है।

तीसरे मन्त्र में कहा है कि जो सम्भूति और असम्भूति दोनों का उपासक है वह 'असम्भूति' 'असम्भूति' से मृत्यु को पार करके सम्भूति से मोक्ष को प्राप्त करता है।

तीनों मन्त्रों का सारांश यह है कि जो लोग सम्भूति और असम्भूति को एक दूसरे से अलग समझ कर इनकी अलग अलग उपासना करते हैं वे अन्धकार में हैं। परन्तु जो दोनों की साथ साथ उपासना करते हैं वे मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं।

इससे पता लगता है कि सम्भूति और असम्भूति दो ऐसी चीजें हैं जिनका हमारे जीवन में एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। इन दोनों पर संयुक्त दृष्टि रख कर तो हम कुछ कर सकते हैं

परन्तु यदि इन को एक दूसरे से अलग कर दिया जाय तो बड़ी हानि हो सकती है।

सम्भूति और असम्भूति का अर्थ जानने के लिये तीसरा मन्त्र विचारणीय है क्योंकि पहले दो मन्त्रों से इस विषय में कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती। तीसरे मन्त्रके अन्तका पद इस प्रकार है:-

(विनाशेन) विनाश से (मृत्युं) मौत को (तीर्त्वा) पार कर के (सम्भूत्या) सम्भूति से (अमृतम) अमृत या मोक्ष पद को (अश्नुते प्राप्त होता है।

पहले मंत्र की संगति जोड़ने के लिये 'विनाशेन' का अर्थ 'विनाश मुपास्य' और 'सम्भूत्या का अर्थ 'सम्भूति मुपास्य' ऐसा करना चाहिये। क्योंकि पहले मंत्र में 'उपासना' की ओर संकेत है।

तीसरे मंत्र से स्पष्ट है कि 'असम्भूति' या 'असम्भव' का अर्थ 'विनाश' है। और इस लिये 'सम्भूति' या 'सम्भव' का अर्थ हुआ, 'विनाश का उल्टा' अर्थात् 'जन्म। सम्भव और जन्म पर्याय विख्यात ही हैं।

अब प्रश्न यह रहा कि:-

(१ सम्भूति, जन्म या जीवन की उपासना से क्या तात्पर्य है ?

(२) यह अकेली उपासना अन्धकार का कारण क्यों है ?

(३) असम्भूति या विनाश की उपासना से क्या तात्पर्य है ?

(४ यह अकेली उपासना अन्धकार का कारण क्यों है ?

(५) दोनों के साथ साथ ज्ञान से क्या तात्पर्य है ?

(६) इन दोनोंकी उपासना करनेसे किसप्रकार मृत्यु से पार हो सकते हैं और किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ?

हम संसारमें साधारणतया दो प्रकारके मनुष्य पाते हैं। एक जीवन में लिप्त हैं और दूसरे जीवन से उदासीन। जीवन में लिप्त होना ही सम्भूति की उपसना है और जीवन से उदास होना असम्भूति की उपासना।

असम्भूति की उपासना को अन्धकार का कारण बताया है। वेद कहता है कि जीवन मनुष्य को व्यर्थ नहीं दिया गया। यह कुछ कर्त्तव्य के पालन करने के लिये है, अतः जो पुरुष जीवन से उदास रह कर 'मृत्यु-मृत्यु' ही चिल्लाते रहते हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य यही है कि मृत्यु को प्राप्त हो सकें, जो सदा आत्म घात करने को तैयार रहते हैं वह जीवन के उद्देश्य को क्या समझें और उस उद्देश्य की पूर्ति कैसे करें ? जीवन क्या है ? शरीर, इन्द्रियों आदि की प्राप्ति, उनका विकास तथा उनका उचित प्रयोग। संसार के भिन्न २ पदार्थ इस जीवन को सफल बनाने के साधन हैं। इनके उचित प्रयोग से ही हम अपनी इन्द्रियों का विकास कर उनसे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं। जो जीवन को नीरस, असार, दुखमय और व्यर्थ समझते हैं, जिन्होंने जीवन को केवल एक अगाध

भयंकर समुद्र या बड़ा जेलखाना समझ रक्खा है वह जीवित रहते हुए भी असम्भूति के ही उपासक हैं। 'हाय यह जीवन कैसा दुखमय है' 'हे मृत्यु देव ! तुम कहां हो ? इस शरीर से मुझे कब छुड़ाओगे ?' 'हाय ! मैं कैसा अभागा हूं ? मुझे मौत क्यों नहीं आती ?' इस प्रकार की आहो पुकार करते ही उनका समय व्यतीत होता है। इनके लिये जीवन वस्तुतः एक बड़ा गहन समुद्र है जिसमें वह गोते खा रहे हैं। न प्राणही निकलते हैं न समुद्र से छुटकारा मिलता है। ऐसे गोता खाने वाले प्राणियों से किसी प्रकार की उन्नति की आशा रखना व्यर्थ है। भारतवर्ष के रहने वालों का दृष्टिकोण भी आजकल यही है। यह असम्भूति के उपासक हैं। इन से पूंछो कि जीवन क्या है ? उत्तर मिलेगा "असार संसार" 'स्वप्न' ! पानी के ऊपर का बुलबुला' छलावा'। यह उत्तर भारतवासी केवल मुंह से नहीं देते किन्तु अपने जीवन से देते हैं। इनके प्रत्येक कार्य से यही ध्वनि आती है, इसीलिये इनके अभ्युदय का अभाव है। जेलखाने में तो दरियां भी लकड़ी के बल बुनी जाती हैं और चक्की भी जूते के डर से पीसी जाती है। कैदी का जीवन अन्धकार मय न हो तो क्या हो ?

परन्तु एक, और कोटि मनुष्यों की है जिन को "सम्भूति के उपासक कह सकते हैं। इनको जीवन से प्रेम ही नहीं किन्तु मोह है, यह जीवन के लोलुप हैं। यह जीवन को मार्ग नहीं किन्तु सदा रहने का घर समझते हैं। यह इन्द्रियों-और शरीर का विश्वास नहीं करते किन्तु इनको भोग का साधन समझते हैं। यह मौत से सदा डरते रहते हैं। यह जीवन को साधन नहीं किन्तु साध्य समझते हैं। यह किसी कर्त्तव्य का पालन करना नहीं जानते। इनको खाने पीने और भोग करने से फुरसत ही नहीं। ऐसे पुरुषों के लिये वेद कहता है कि यह पूर्व कोटिकी अपेक्षा अधिक अन्धकार मय हैं। मृत्यु की बाट जोहने वाला मनुष्य कर्त्तव्य--विमूढ़ अवश्य है परन्तु लोलुप नहीं। परन्तु जीवन का मोह कर रहा है वह कर्त्तव्य--विमूढ़ होने के अतिरिक्त विषयी और लम्पट भी हैं। अतः यह अधिक अन्धकार का भागी है।

दूसरा मंत्र बताता है कि सम्भव' अर्थात् जीवन की उपसना से भिन्न फल मिलता है और असम्भव' अर्थात् मृत्यु की उपासना से भिन्न फल ! वस्तुतः दोनों का यथार्थ ज्ञान ही श्रेय का मार्ग है।

जीवन न तो भयंकर सागर या जेल है। न सदा रहनेका घर। यह एक मार्ग है, मार्गमें चलने वाला मार्ग को स्वच्छ और सुन्दर बनाता है जिस से सुगमता से यात्रा हो सके। वह मार्ग की अवहेलना नहीं करता। वह मार्ग को असार नहीं समझता। वह मार्ग से प्रेम करता है। वह मार्ग को अधिक से अधिक सुगम बनाता है। परन्तु साथ ही वह मार्ग को मार्ग समझता है, मंज़िल नहीं समझता। उसके पैर मार्ग पर होते हैं और आंख उद्दिष्ट स्थलपर। जीवनका एक फल हैं और मृत्यु का दूसरा। व्यर्थ दोनों नहीं प्रयोजन दोनों से है। यदि जीवन न हो तो उन्नति कैसे हो ?

यदि मृत्यु न हो तो उद्देश्य की प्राप्ति कैसे हो ? मार्ग सुविस्तृत हो, सुगम हो सुख कारक हो परन्तु अनन्त न हो। मार्ग का अन्त होना आवश्यक है। यात्रा सर्वथा सुखकर होनी चाहिये परन्तु यात्रा का अन्त भी तो अवश्य ही चाहिये जिस यात्रा का अन्त नहीं उस पर कोल्हू के बैल के समान नित्य घूमनेसे क्या लाभ ? सुरम्य मार्ग के लिये भी पूछते हैं कि यह मार्ग कहां को जाता है ? यदि मार्ग का कोई उद्दिष्ट स्थान न हो तो वह मार्ग ही क्या ? इस लिये सुरम्य से सुरम्य सड़क के लिये भी अधिक आनन्द की यही बात होगी कि उसका अन्त होने वाला हो। उस से उद्दिष्ट स्थान भली भांति दिखाई पड़ता हो।

बस वेद मंत्र यही कहता है, 'विनाश' के ज्ञान से मनुष्य मौत को पार कर लेता है। जिस ने समझ लिया कि सड़क का समाप्त होना ही निर्दिष्ट स्थान की प्राप्ति है, वह मौत से डरता नहीं। वह मौत को पार कर लेता है। 'मृत्यु' का अर्थ है 'मृत्यु-भय'। शास्त्रों में 'मृत्युञ्जय' की बड़ी पदवी है 'मृत्युञ्जय' वह नहीं है जिस को मौत न आवे किन्तु वह जिस को मौत डरा न सके। मौत के डर से पार होना ही मौत के पार होना है। मौत के डर को जीतना ही मौत को जीतना है। मृत्यु का ठीक ठीक ज्ञान ही हम को मौत के डर से मुक्त कर सकता है।

परन्तु वेद कहता है कि केवल मृत्यु के ज्ञान से ही कुछ लाभ नहीं। केवल मौत से न डरना ही अमरत्व की प्राप्ति नहीं कराता। वेद का उपदेश है कि 'संभूत्यामृतमश्नुते'। अर्थात् जीवन के यथार्थ ज्ञान और उस के यथार्थ प्रयोग से ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। और बिना जीवन का यथार्थ प्रयोग किये हमें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि अमरत्व के लिये जीवन की आवश्यकता न होती तो परमात्मा जीवन देता ही क्यों ? फिर तो संसार के निर्माण की ही क्या आवश्यकता थी ? संसार का बनाना और स्थित रखना यह सब जीवन है। जीवन का एक मुख्य प्रयोजन है। प्रयोजन यही है कि हम अपने आत्मा का विकास करें। बिना जीवन के विकास असम्भव है और बिना विकास के मोक्ष असम्भव। वस्तुतः जीवन की उच्चतम विकसित अवस्था का नाम ही मोक्ष है।

यदि हम विद्यार्थी की भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि जीवन है वर्ष भर का अध्ययन और मृत्यु है वर्ष के अन्त की परीक्षा। जिस ने वर्ष भर गिल्ली डण्डा खेला वह परीक्षा के भय से कैसे छूट सकता है। परीक्षा से उत्तीर्ण होना ही, पहली कक्षा का अन्त है और वर्ष भर में प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही अगली कक्षा का अधिकारी बनाता है।

बलि-बलिदान शब्द पर विचार

———:०:———

(ले० श्री॰ प्रियरत्न जी, कारोली बाग, बड़ोदा)

———:०:———

प्रश्न—महाशय ! आप आर्य लोग वेदों में हिंसा नहीं मानते हैं, किन्तु जहां वेदों में बलि अथवा बलिदान शब्द आया है, वहां आप किस प्रकार हिंसा से इन्कार कर सकते हैं। जब कि उक्त दोनों शब्दों का अर्थ पशुकिंवा मनुष्य के वध का है ?

उत्तर—जिज्ञासो ! बलिकिंवा बलिदान शब्द का अर्थ हिंसापरक नवीन ग्रन्थों में ही मिल सकेगा जो कि वेद विरुद्ध होने से अपमान कोटि में हैं। प्राचीन ग्रन्थों में उक्त दोनों शब्दों का अर्थ कहीं भी हिंसापरक नहीं है। सन्तोष के लिये निम्न प्रमाणों पर दृष्टिपात करें।

१—"बलिकृत" बलिपूजां करोति करं प्रयच्छतीत्यर्थः, एतरेयब्राह्मण ३५-२६ सायण यहां राजा की पूजा करना अर्थात् कर देना अर्थ बलि से स्पष्ट है।

२—"राज्ञोबलिदान कर्षकैर्देशमष्टमं-षष्ठंवा" गौतम धर्म सूत्र २-१-२४ यहां पर किसानों की ओर से जो दशगं आठवां या छठा शुल्क राजा को दिया जावे उस को बलिदान शब्द से व्यवहृत किया है।

३—"तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमां बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि" प्रश्नोपनिषद् २-७ इस स्थल पर भी हिंसा अर्थ में बलि शब्द नहीं है किन्तु भोज्य आहार वा ग्राह्यरस के अर्थ में है।

४—"बलिवैश्वदेवयज्ञ" जिसे भूतयज्ञ भी कहते हैं 'यद्भूभ्यो बलिं हरति स भूत यज्ञः' भारद्वाज गृह्य सूत्र ३-१५ यहां पर पके हुए अन्न के भाग का नाम बलि है।

विशेषः—यहां पर यह बात भी बतला देना उचित है कि इस उक्त भारद्वाज सूत्र में बलि शब्द चतुर्थ्यन्त भूत शब्द के साथ सम्बन्ध दर्शाया है वे दो कहीं भूत बलि शब्द देख कर भूतानां बलि भूतों की बलि ऐसा नवीन अर्थ न करना क्योंकि यहां भूत शब्द में चतुर्थी विभक्ति है और उस का समास भी चतुर्थी तदर्थार्थ बलिहित सुखरक्षितैः अष्टाध्यायी ५-१ से हुआ है। इसी सूत्र के भाष्य पर देखिये महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि को भी बलि शब्द का अर्थ शुल्कादि भाग ही इष्ट है।

५—'योहि महाराजाय बलिः समहा-राजार्थो भवति' अष्टाध्यायी २-१-२६ सन्तोष के लिये इतने ही प्रमाण पर्याप्त हैं, इस से आप समझ गये होंगे कि वस्तुतः प्राचीन समय में बलि अथवा बलिदान शब्द का अर्थ किसी प्राणी की हिंसा नहीं था, अतएव वेदों में बलि अथवा बलिदान शब्द के अर्थ सर्वत्र भाग बट-वारा कर या अन्न भाग के ही करना उचित है। इति।

——:०:——

"आर्य्य सभासद्" के सदाचार की व्याख्या

------o:-----

(ले०—बा० श्यामसुन्दरलाल एडवोकेट, मैनपुरी यू. पी.)

-----:०:-----

हमारे मान्यवर भ्राता श्री० राजरत्न मास्टर आत्माराम जी ने 'सार्वदेशिक' के अगस्त मास के अंक पृष्ठ ३६-३७ पर 'विचार-निमंत्रण' शीर्षक द्वारा आर्यसभासद के सदाचारकी व्याख्या आर्य-समाज के उपनियमों में सम्मिलित कर देने के लिये परामर्श किया है और इस व्याख्या के उप नियमों में दाखिल हो जाने पर उन्हों ने अपना यह विचार प्रकट किया है कि पंजाब कालिज समाज का मान हानि का प्रश्न ही जाता रहेगा। व्याख्या आंशिक रूप से यमों का भाषान्तर है।

मेरी लघु सम्मति में हम जितनी ही अधिक 'सदाचार' शब्द की व्याख्या करेंगे उतनी ही उलझनों में पड़ने का अवकाश उत्पन्न करेंगे। जिस व्याख्या का परामर्श हमारे प्रशंसित महोदय ने किया है उस में अनेक प्रश्न उपस्थित होते और हो सकते हैं। यथा अहिंसा का अर्थ "किसी मनुष्य का खून न करना" किसी प्रकार शास्त्र सम्मत नहीं हो सकता। अहिंसा के यह संकुचित अर्थ अपने संस्कृत साहित्य में किसी स्थान पर भी किये गये नहीं देखे गये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के अर्थों में भी बहुत कुछ नूनच का अवकाश है। यह सच है कि हमारे मान्य भ्राता जी ने व्याख्या से पहिले यह लिख दिया है कि प्रत्येक आर्य सभासद को 'सदाचार' शब्द में कम से कम निम्न बातों का समावेश मानना चाहिये जिससे उनका तात्पर्य यह प्रकट होता है कि सदाचार की प्रकटता विशद प्रकार से नहीं किन्तु संक्षेप रूप से की गई है। परन्तु इतना लिख देने से जनता की मनोवृत्ति उक्त प्रकार के आक्षेप से विराम नहीं पा सकती।

प्रथम तो इस उत्थानिका के उठाने से कि पंजाब कालिज समाज की मानहानि का प्रश्न उपरोक्त व्याख्या से स्वयमेव जाता रहेगा, उपरोक्त आक्षेप स्वभावतः मन के सामने प्रस्तुत हो जाता है। द्वितीय यदि उपरोक्त मानहानि के भाव को ही दूर करना है तो केवल एक छोटा सा साधन सदाचार' के साथ लगा देने से यह फल सहज ही निष्पन्न हो सकता है; किसी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यथा निम्न प्रकार का समाधान सं० १ इस प्रकार बढ़ा दिया जा सकता है। अर्थात्:—

(समाधान १। शराब तथा मांस तामसी पदार्थों का सेवन आर्य समाज के मन्तव्य और वैदिक धर्म के अनुसार 'सदाचार' के प्रति-

कूल है।

यदि उपरोक्त प्रकार के छोटे से समाधान के अतिरिक्त सदाचार की कोई व्याख्या की जावेगी तो भय है कि अधिक उलझनें उत्पन्न होंगी। सदाचार का सद्भाव इतना बड़ा और हमारे शास्त्रों में इतने विषद रूप में वर्णित है कि उस को सदाचार के साथ मुक्त करने की चेष्टा सफल नहीं हो सकती। अतएव मेरा विचार है कि सदाचार के साथ उपरोक्त प्रकार का एक छोटा सा नोट लगा देना पर्याप्त समझा जावे तो उत्तम होगा।

——:०:——

संसार की समस्त जातियां आर्य नस्ल से हैं ?

——:*:——

(ले —श्री० स्वामी अगस्त संन्यासी)

——:—:——

इस बात को साफ़ करने के लिये मुझे पहिले यह बताना आवश्यक है कि इस पृथ्वी पर आबादी सब से पहिले कहां. किन लोगों की, और किस तरह हुई। भगवान् तिलक ने अपनी पुस्तक में बताया है कि यह पृथ्वी अण्डे या नारंगी की शक्ल की है, जिसके दोनों किनारे जो 'ध्रुव' कहलाते हैं जरा चपटे हैं, और चूंकि गर्मी अक्सर नोकदार हिस्से से खारिज हुआ करती है इस लिये ये सब से पहिले ठण्डे हुये, और इन में से भी उत्तरी ध्रुव सबसे प्रथम शीतल हुआ। इस लिये आबादी भी सबसे प्रथम उत्तरीय ध्रुव पर ही हुई होगी। हमारी और दूसरी धार्मिक पुस्तकें इस बात को पुष्ट भी करती हैं। हमारी पुस्तकों में लिखा है कि सब से पूर्व देव लोक की रचना हुई, और देवता उत्पन्न किये गये। इसी प्रकार अन्य धर्म की पुस्तकें कहती हैं कि सब से पूर्व स्वर्ग (बहिस्त) बनाया गया और फरिस्ते उत्पन्न किये गये। यह देव लोक कहां था ? इस की बाबत हमारी पुस्तकें बताती हैं कि देव लोक में छः मास का दिन और छः मास की रात्रि होती थी, और हमारा एक वर्ष देवताओं के एक दिन रात के बराबर होता था। ईरानियों की प्राचीन पुस्तक 'जिन्दावस्था' भी ऐसा ही बताती है। यह दशा उत्तरीय ध्रुव पर ही है। इस लिये स्पष्ट है कि उत्तरीय ध्रुव को ही देव लोक लिखा गया और वहां ही देवता वास करते थे। प्राचीन धार्मिक पुस्तकों से यह भी प्रकट होता है कि दैत्य भी देवताओं के साथ ही पैदा हुए। इस बात की पुष्टि भी हमारे ग्रन्थों से होती है। जैसे लिखा है कि ब्रह्मा या दक्षप्रजापति के दो स्त्रियां थीं, एक दिति और दूसरी अदिति। दिति से दैत्य और अदिति से देवता उत्पन्न हुए। हमारी पुस्तकें मत्स पुराण आदि बताती हैं कि सब से प्रथम देव लोक से हिन्दुस्तान में मनु भगवान् आये थे, और उनकी नाव हिमालय की सब से

ऊँची चोटी जो नाव बंधन कहलाती है, उस पर बांधी गई थी। मुसलमानों की किताबें भी बताती हैं कि सब से पहला आदमी जो वहिस्त से निकाला गया था, आदम था और यह आदम हिन्दुस्तान में गिराया गया था। आदिम और आदि मनु एक ही प्रतीत होते हैं। इसी तरह पारसियों की किताब जिन्दावस्था कहती है कि देव लोक से ईरान में आने वाला सब से पहला सूर्य का बेटा यम था। और महाभारत कहती है कि यम और मनु दोनों सहोदर भाई थे। जगद्-गुरु आर्यावर्त पृष्ठ ८१-८२ में पद्म पुराण से प्रकट है कि हमारे शास्त्र evolution से सृष्टि उत्पत्ति वर्णन करते हैं, जैसे कच्छप, मत्स्य, बराह आदि का अवतार क्रम अभी तक परम्परा से मनुष्यों में चर्चा किया जाता है। लिखा है कि पहिले अयोनिज सृष्टि पैदा हुई थी। अर्थात् जो जीव जन्तु और मनुष्य पहिले पैदा हुए वह अपने ही समान माता पिता से उत्पन्न नहीं हुए। मिस्टर Huxley अपनी evolution and ethics नामी पुस्तक में लिखते हैं कि evolution को सब से प्रथम भारतवासियों ने ज्ञात किया था। इस से आगे पद्मपुराण में लिखा है कि जब दक्षप्रजापति के पहिले दश सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए, जिन को नारद ने संसार की खोज करने भेज दिया और वे लौट कर वापिस न आए। दक्ष ने पुनः एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किए। नारद ने दूसरी दफा भी उन को संसार भ्रमण के वास्ते भेज दिया या अपने पहिले गये भाइयों को ढूंढने भेज दिया। वे भी वहां ही रह गए और लौट कर न आये। तब दक्ष ने पुनः सन्तति उत्पन्न की और वह सन्तति वहीं रही जहां दक्ष रहता था। उसी से आर्य जाति बनी। अर्थात् वेही आर्य जाति के आदि कारण बने। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दक्ष की सन्तान ने ही पृथ्वी के भिन्न भिन्न देशों में जा कर सब से प्रथम उन देशों को आवाद किया, और वे ही दस्यु, देशीय या Native कहलाए। रामायण में भी लिखा है कि सब से प्रथम जो मानवी जातियां हुईं वह दक्ष की दिति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति से देवता हुए। दिति का अर्थ है अनुदारता और स्वार्थता और उसकी सन्तान अनुदार और स्वार्थी हुई। आदित का अर्थ हे उदारता, इस की सन्तान देवता हुए। इस के अनन्तर पद्म-पुराण में लिखा है कि भगवान् कश्यप की दैत्य वंश की स्त्रियों से तेरह भिन्न भिन्न नाग आदि जातियां पैदा हुईं जो पश्चात् द्राविड़ कहलाए। ६८ पृष्ठ को देखिये मैं आपको वंशावली सुनाता हूँ। संसार के सब से प्राचीन समय में जातियों के नाम प्रायः पशु पक्षियों के नाम पर होते थे। जैसे नाग बानर, गृद्धर, ऋक्ष आदि। टाड साहिब लिखते हैं कि फुट नोट नम्बर ६८ Human Race नाम की पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि संसार में अभी तक ऐसी जातियां उपस्थित हैं (पृष्ठ २१) जैसे एक जाति का नाम crow (काक) जाति है, जो सिर के ऊपर बालों को दो सींगों के आकार में बना कर रखते हैं। और एक जाति ऐसी हे जो घोड़े की पूँछ की

तरह पूँछ लगाती है। अबतक रूस वालों को ऋत्त Bear जर्मन वालों को Eagle अर्थात् श्येन,और अंग्रेजों को Bull अर्थात् बृषभ कहते हैं। ये जातियां अपनी पैतृक भूमि में न समा सकीं। चाहे अपने दूसरे सौतेले भाइयों के साथ स्वभाव न मिलने से या स्थानाभावसे और वहां से निकल कर संसार में बड़े २ राज्य बनाये। जैसे मक्खी जातिने मिश्र पर, मच्छर जाति ने असेरिया पर Dove या कपोत जाति ने troy पर। तिलक ने अपनी गीतामें लिखा है कि troy में स्वास्तिक चिन्ह अर्थात् गणेश की प्रथा थी। नाग जाति ने बावल पर जगद्गुरू पृष्ठ २७ दानव जाति ने अमेरिका अर्थात पाताल में। जिसमें से मयदानव था और जिस ने युधिष्ठर का महल बनाया था। दानव लोग Danes भी कहलाए हैं। जब भगवान खांडव बन में नाग जाति का नाश कर रहे थे तो वहां पाताल से आया हुआ मय दानव इनको मिला था। और इनकी शरण में आया था। इस मय जाति के बड़े आलीशान खण्डरात अमेरिकामें पाये गये हैं। वृषभ जातिने ब्रिटेन में इत्यादि। पद्म पुराणके इस वर्णन की कि नाग आदि द्राविड़ जातियां आर्या नसल से हैं। वेद भगवान से भी पुष्टि होती है। ऋग्वेद में नाग जाति को उत्पन्न करने वाली भगवान कश्यप की स्त्री माता कद्रू एक सूक्त की ऋषि मानी गई है। जगद्गुरू पृष्ठ २० और ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १७५। यह नाग जाति नागपुर खांडवबन, कश्मीर तक्षशिला, सिन्ध के डेल्टा में, पाताल नामनगरी में Asia Minov और अर्थात बाबल तक फैली हुई थी। रामायण भी साक्षी है। (जगद्गुरु आर्यावर्त पृष्ठ १६) कि देवता और दैत्य दो भाई थे। ईरान में निवास करने वाले असुर लोग तो विशुद्ध आर्य थे। क्योंकि यम अथवा यमसेद (यमसूर्य का बेटा फारसी में य' जीम से बदल जाता है) भगवान यम मनु का भाई था। (जगद्गुरु पृष्ठ ६३) यहूदी लोग भी आर्य थे। वेद में यम यह परमात्मा का नाम आता है। आर्य लोगों ने पश्चात द्राविड़ जातियों को पराजय कर लिया, जैसे कि रामायण के ऊपर वाले दृष्टान्त से प्रतीत होता है। मेरे विचारमें द्राविड़ नाम उनको आर्यों ने ही उस समय दिया जब कि उनको पराजित किया। द्राविड़ का अर्थ भगाया हुआ प्रतीत होता है। ये लोग काले रंग के होते थे। ऋग्वेद में लिखा है कि हे परमात्मन्! व्रत न पालन करने वाले काली त्वचा वाले लोगों को मनु की सन्तान के शासन में कर दो। जगद्गुरु पृष्ठ ३४ जब आर्य्य लोगों ने उन्हें पराजित कर लिया तो एक आर्य द्राविड़ नसल पैदा हुई जो स्थिक कही जाती है और उत्पादक Sytha बतलाया जाता है। साका अर्थात Sasxon जिस को (सीय) अर्थात वे लोग जिन्हों ने सीय स्थान आवाद किया, जिनमें से रुस्तम बहुत प्रसिद्ध हुआ है। Jute अर्थात जाट, जिन्होंने यूरोपमें जाकर जटलैंड बसाया। हूण जिन्होंने हंगरी बसाया। इब्रानी और सुमेरियन लोग जिन्होंने ऋषि पुलस्त्य (रावण के दादा) के आश्रम (जो सुमेरु पर्वत पर था) अर्थात पुलस्त्य स्थान मौजूदा Palestine टर्की, अरब में रहने लगे। कुश जाति

जो कुशागिरी, जिसका नाम अब काशगर है उससे निकल कर स्वीडन तक फैली। केलट, जो ब्रितानियां में गये, गाल जो फ्रांस में बसे, गौथ जो जर्मनी में गये, बेलूज और आर्यलैंड के प्राचीन निवासी आदि २ (जगद्गुरु पृष्ट १८) ये सब जातियां इंडोस्थिक Indosthic जातियां कहलाती हैं। सथिया नाम की पुस्तक में लिखा है कि नाग जाति की एक लड़की और हरक्यूलीज़ के मेल से सथिया पैदा हुआ था। जगद्गुरु पृष्ट ६६) हरक्यूलीज़ भगवान बलराम का युरोपीय नाम है। हरि-कुल-ईश वह हिन्दुस्तान से बाहर गये और स्थान २ पर अपने बाहुबल से लोगों को चकित करने से देवता मानें गये। और इस नाम से प्रसिद्ध हुये। (जगद्गुरु पृष्ठ १६) मेरे विचार में यह बात ठीक नहीं है बल्कि आस्तिक ही सिथा था और उस की सही महाभारत में लिखी है अर्थात वह आर्य ऋषि जरत्कारु और नाग कन्या अर्थात वासुकी की बहिन से पैदा हुआ था (जगद्गुरु पृष्ठ ६७) द्राविड़ लोग समस्त संसार में भ्रमण करते थे, और आर्य लोग भी संसार भ्रमण के अनुरागी थे। उन्होंने कहां २ और किस २ प्रकार राज्य स्थापित किये। इसके लिये जगद्गुरु आर्यावर्त पुस्तक को देखिये। कोई बात बिना आधार नहीं लिखी गई।

अश्वमेध यज्ञ

मैं बताचुका हूँ कि पहले समय में जातियों के नाम पशु पत्तियों के नाम पर होते थे। इस बात को ध्यान मे रखियेगा। और मैं आपको अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में अपने विचार भेंट करता हूँ। यजुर्वेद में राजा के सम्बन्ध में अर्थात् राजा के करने के लिए तीन यज्ञ लिखे हैं।

प्रथम—राज सूय यज्ञ है। यह अध्याय नवम व दशम में उल्लिखि है। इसमें जो विधि या कर्म हैं उसमें किसी पशु पत्ती अथवा मनुष्य को यज्ञ स्तूप से बांधने या यज्ञ में प्रदर्शनी (नुमायश) करने का कोई विधान नहीं। यह यज्ञ राजा बननेके समय अर्थात् राज्याभिषेकके समय किया जाता था इस यज्ञ को अच्छी प्रकार समझलेने के लिये राजा और सम्राट, जिनको King और Emperor से अनुवाद किया जासकता है। इन में जो अन्तर है वह भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है। यह यज्ञ राजा अर्थात् King बनने के समय किया जाता था। न कि सम्राट बनने के समय। जैसे हमारे-सम्राट इङ्गलेन्ड के तो King है परन्तु भारतवर्ष के Emperor हैं।

द्वितियं अश्वमेध यज्ञ है। जो यजुः अध्याय २३-२४-२५ में लिखा है। यह यज्ञ सम्राट बनने के समय किया जाता था। अर्थात् इस बात की घोषणा के लिए किया जाता था कि यज्ञ करने वाले ने संसार की समस्त जातियों (Nations) को अपने वशमें तथा आधीन कर लिया है। इस लिए अश्व एक वर्ष पर्यन्त समस्त भूमण्डल पर फिराया जाता था, और इसके साथ सेना रहती थी। यदि उसको कहीं कोई रोकता तो वहां शत्रु के साथ युद्ध करके उसे पराजित कर देते थे।

और साल भर के पश्चात् सबको परास्त कर के लौटते थे। और अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ होता था जिसमें इक्कीस यज्ञ के स्तम्भ गाड़े जाते थे। तीन सात, इक्कीस, आर्य लिटरेचर में एक मुख्य संख्या नियत की गई है। जैसे नीचे लिखे मन्त्र में स्पष्ट है। ये त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रुपाणि बिभ्रतः।

इन के साथ प्रदर्शिनी रूप से ६०६ पशु-पत्ती बांधे जाते थे। जो यज्ञ के पश्चात् मुक्त कर दिये जाते थे। इसके अन्दर मक्खी, मच्छर, मधुमक्खी, मेंढा, गाय, बकरा, हाथी तोता उल्लू श्येन कबूतर Whiteant नाग वानर सिंह घोड़ा श्वान आदि जीव सम्मिलित हैं। जो जाति जिस दिशा में रहती थी वह उसी दिशा अथवा उसी दिशा के मध्य के स्तम्भ से बांधी जाती होगी। यहां पर बांधना एक मुख्य भाव को प्रकट करता है। जिसका अर्थ अपने आधीन अथवा वश कर लेने के अभिप्राय को प्रकट करता है। क्यों कि शत्रु को बांध लेना ही उसको वश कर लेना जाना जाता है। इसके साथ यह बात मुख्यतया स्मरण रखना होगी कि यह यज्ञ Animal Kingdom अर्थात पशु पत्ती पर सम्राट् बनने के लिए नहीं किया जाता था प्रत्युत मनुष्य जातियों पर सम्राट् बनने के लिए किया जाता था। इस लिए पशु पक्षियों को बांधना अथवा उनकी प्रदर्शनी करना सर्वथा निरर्थक होजाता है। बांधना व प्रदर्शनी रूप से प्रदर्शन कराना उनका होता था जिन पर विजय प्राप्त की गई है और जिनको अपने आधीन करके वह राजा सम्राट बनने लगा है। और जो अपनी Presence से उसके अधिकार को प्रमाणित कर रहे हैं, और जिनकी उपस्थिति में वह अपने सम्राट बनने की घोषणा कर रहा है इस प्रकार मेरे विचार में यह स्पष्ट प्रकट है कि ये पशु पत्ती न थे। प्रत्युतः Conquered tribes का एक २ Representative या प्रतिनिधि था। जिसको बांधकर प्रदर्शनी करना उस समस्त Nation को पराजित कर लेने को दर्शाना था।, और जो देवता उनके साथ लिखे हैं वे उन जातियों के Predominent मुख्य गुण हैं। जैसें-बटेरा जाति बुद्धि के लिए मक्खी जाति नेत्र शक्ति के लिए और मच्छर जाति श्रवण शक्ति के लिए प्रसिद्ध थी। यह देवता उनके गुण हैं यह भाव सब से प्रथम ऋषि दयानन्द जी ने प्रकट किया था और उनके पश्चात् सभा लेखक उनकी नक़ल करते आरहे हैं। जैसे-मिश्र ज्वाला प्रसाद ने भी अपनी यजुर्वेद टीका में लिखा है। इस यज्ञ के सम्बन्ध में एक बात और आश्चर्य जनक प्रतीत है कि जब हम देखते हैं कि जो अश्व छोड़ा जाता था, उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह चौबीस वर्ष से न्यून और एकसौ वर्ष से अधिक अवस्था का न होना चाहिये। इससे ज्ञात होता है कि वह अश्व न होता था बल्कि कोई पुरुष होता था जो कि ब्रह्मचर्य पूर्ण कर चुका हो। ऊपर लिखे हुये मेरे इन विचारों की पुष्टि एक अन्य बातसे भी होती है वह यह है कि यज्ञ के अन्त में जो दक्षिणा दी जाती थी वह पराजित किये देशों से प्राप्त किया हुआ धन होता था। Grifith (२३०) दो सौ तीस, और

पृथक पृथक पुरोहितों को भिन्न २ दिशाओं से लाया हुआ धन दिया जाता था। जैसे पूर्व दिशा का धन होत्ता को, और दक्षिण का ब्रह्मा को।

तृतीय यज्ञ पुरुषमेध यज्ञ है, जो अध्याय तीस में लिखा है। जैसे लिखा है कि यह यज्ञ उस चीज़ की प्राप्ति के लिए किया जाता है जो अश्वमेध से भी दुर्लभ है। अश्वमेध संसार की जातियों पर विजय प्राप्त करने के लिए अथवा उनको अपने वश में करने के लिए किया जाता था। परन्तु पुरुष मेध यज्ञ अपने ऊपर विजय पाकर, अर्थात अपनी समस्त पुरुष वृत्तियों को जीतकर मोक्ष प्राप्ति के लिए किया जाता था। यथा किसी कवि ने कहा है—

दाराको ऐ सिकन्दर अगर मारा तो क्या मारा,
न मारा आपको जो मरके अक्सीर हो जाता।

विदेशी लोग भी इस यज्ञ का यही अर्थ वर्णन करते हैं।

इसमें यज्ञ के स्तम्भों से नाना प्रकार की वृत्तियों अथवा पेशों के लोग बांधे जाते थे। जो प्रदर्शिनी रुप से होते थे। और अन्त में मुक्त कर दिये जाते थे। अर्थात इन लोगों को बांधना यह दिखाता था कि यज्ञ करने वाले ने इन समस्त वृत्तियों को जीत कर अपने वश में कर लिया है और वह संसार से ऊपर हो गया है, उसको सम अवस्था प्राप्त हो गई है। जिसमें कि कोई भी विकार नहीं प्रविष्ट हो सकता।

ध्यान करके यह समस्त सूची पढ़ जाइये इसमें जाति भेद से पुरुष नहीं गिने गये प्रत्युतः Profession भेद से गिने गये हैं। जितनी Possible वृत्तियां पुरुष में हो सकतीं हैं वे सब दिखाने की कोशिश की गई है।

इसका यही भाव है और इस बात से भी सिद्ध है कि इस यज्ञ को राजा ही नहीं बल्कि ब्राह्मण भी कर सकता था। ब्राह्मण का दूसरी जाति के लोगों को पराजित करने का कोई अर्थ नहीं बन सकता, अतः अपनी वृत्तियोंको जीतना ही इसका अभिप्राय है। गृफिथ ने पृष्ट २५६ में यह भाव दर्शाया है। केवल यह इतनी भूल कर गये जो यह लिख दिया कि इस यज्ञ में भिन्न २ जातियों के लोग बांधे जाते थे। इस समस्त अध्याय में किसी जाति का वर्णन नहीं, केवल एक शब्द मागध है। जिसका अर्थ मगध देश का रहने वाला भी हो सकता है। परन्तु टीका में गृफिथ साहब ने स्वयं स्वीकार कर लिया है कि मागध का अर्थ मगध का रहने वाला नहीं बल्कि भाट है।

वेद प्रचार और सन्यासी

———:०:———

(ले —श्री० स्वामी स्वतन्त्रानंद जी महाराज)

:०:- ——

आर्य समाज में वेद प्रचार मुख्य काम है, क्यों कि वर्तमान काल में अन्य मतावलंबियों को वैदिक धर्म में सम्मिलित करने का काम ऋषि दयानन्द ने ही किया है और उन्हों ने आर्य समाजियों के लिए देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में प्रचार का विधान किया है।

आर्य समाजियों ने प्रचार के लिये प्रत्येक प्रान्त में आर्य प्रतिनिधि सभाएं बनाई और उन सब पर सार्वदेशिक सभा है। प्रतिनिधि सभाएं जहां वेद प्रचार का काम करती हैं वहां पाठशालाएं (गुरुकुल, कालिज) भी चलाती हैं, इस लिए जो धन दानियों से मां । जाता है वह तो संस्थाओं के नाम से मांगा जाता है और उन्हीं पर व्यय होता है। कुछ धन समाजों से मिलता है वह वेद प्रचार में व्यय होता है उस धन से सभाएं उपदेशक रखती हैं वह धन उन उपदेशकों के वेतन और मार्ग व्यय में लग जाता है और उनके अतिरिक्त कुछ संन्यासी भी वेद प्रचार में काम करते हैं।

संन्यासी वेद प्रचार का काम आरम्भ से ही करते रहे हैं और अब भी कर रहे हैं पूर्व कालों में स्वामी आत्मानन्द जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, आदि के नाम प्रसिद्ध हैं और वर्तमान वालों में स्वामी अच्युतानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी सर्वदानन्द जी, श्री नारायण स्वामी जी आदि प्रसिद्ध हैं।

सभाओं ने वेद प्रचार के काम को जिस ढंग पर चलाया और चला रही है वह ढंग ईसाइयों का है। ईसाई इस देश में बेगाने थे उन्हों ने अपने ढंग पर काम किया आर्य समाज में लिखे पढ़े बाबू थे इन्हों ने उसी ढंग पर सोचा और उसी पर काम किया जिस में उन्हें कुछ सफलता भी हो गई। किंतु इस समय यह गाड़ी आगे बढ़ती ही नहीं है, इस के आगे कोई ऐसा पत्थर आगया है जो आगे बढने ही नहीं देता है। इस लिए अब, अब इस मार्ग से कुछ इधर उधर होना ही पड़ेगा।

वेद प्रचार में सब से अधिक कठिनाई धनाभाव की है। जनता से धन पाठशालाओं के लिए मांगा जाता है और उसी काम में लगा दिया जाता है, जिस से वेद प्रचार निधि खाली ही रह जाती है और इसी कारण उपदेशक रखना कठिन हो जाता है।

जो सन्यासी वेद प्रचार में काम कर रहे हैं, वा करते हैं उनको भी प्रायः उसी ढंग पर काम करना पड़ा है जैसा कि उपदेशक करते हैं। इस समय उपदेशक कठिनता से उत्सव भुगता सकते हैं और संन्यासी भी उन्हीं में सम्मिलित होकर उत्सवों की शोभा के कारण बन रहे हैं। अधिक कार्य होने से उपदेशक जैसे नए स्थानों में प्रचार नहीं कर सकते हैं उसी भांति संन्यासी भी नए स्थानों में दर्शन देने में असमर्थ रहते हैं इस लिये प्रचार बन्द सा होगया है।

अब संन्यासियों को इस मार्ग से हट जाना चाहिये। तब प्रश्न होगा इस मार्ग से पृथक हो कर संन्यासी क्या करें। मेरी ओर से इसका यह उत्तर है संन्यासी अपनी इच्छानुसार, जो स्थान वह अनुकूल समझें, कोई स्थान अपने लिये नियत करलें और न्यून से न्यून एक साल वहां ही दस बीस कोस में भ्रमण करके अथवा किसी एक स्थान में ठहर कर वा दो तीन स्थानों में रह कर प्रचार करें। जहां वह लोगों से परिचित होकर अपना काम करेगा वहां उसे सफलता भी होगी और उस जनताके सामने अपना जीवन भी अच्छा रखने का ध्यान रखना होगा। और इस समय जैसे लोग अपरिचित रहते हैं वह भी वैसे न रहेंगे। इस से काम सफलता पूर्वक शांति से होगा। जिस समय संन्यासी इस कार्य को इस भांति करके दिखा देंगे उस समय सभाओं को अपने मार्ग पर पुनः विचार करने की आवश्यकता होगी और सहज, से बदल भी लेंगे।

यह सत्य है उस भांति काम करने से संन्यासियों के नाम समाचार पत्रों में न छपेंगे और आशा है समाज के उत्सवों के भोजन भी न मिलें परन्तु मुझे संन्यासियों पर श्रद्धा है और पूर्ण विश्वास है वह इन प्रलोभनों से ऊपर हैं इसी कारण मैं प्रथम उन्हें ही इस मार्ग में जाने की प्रार्थना करता हूँ।

यदि कोई संन्यासी वृद्ध हों इतना भी भ्रमण न करना चाहें तो मैं उन्हें एक ग्राम में बैठने की सम्मति दूंगा वह आर्य भाषा पढ़ावें संध्यादि सिखावें, संस्कार करवादें अपने आचरण से वहां के निवासियों को आर्य बनावें।

ऋषि-के आदेश को पूर्ण करने का सब से अधिक उत्तर दायित्व संन्यासियों पर ही है इस लिये वेद प्रचार उन्हें अपने ढंग पर स्वतंन्त्र करना चाहिये, कुछ समय के लिये सभाओं से पृथक होकर नये क्षेत्र में पग रखना इनका कर्त्तव्य है उसे इन्हें पूरा करना चाहिये।

ईरान व भारतीय मुसलमानों में अन्तर

——:*:——

(ले०—मौलवी आलिम फ़ाज़िल श्री० महेशप्रशाद जी, काशी)

:o:

मैं ईरान गया और इसमें सन्देह नहीं कि मैं वहां बहुत ज्यादा समय तक नहीं रह सका तथापि मैं कितने दिनों रहा और जो कुछ मुसलमानों के विषय में जान सका उसी के आधार पर मैं यह बतलाना चाहता हूं कि ईरान व भारत के मुसलमानों में मुझे क्या २ अन्तर मिला है.—

सब से पहली बात यह है कि भारतमें बहुत ही कम मुसलमान ऐसे हैं जो अपने आप को पहिले भारतीय और फिर मुसलमान कहते हैं और यह मानते हैं कि हमारे बाप दादा हिन्दु ही थे। वही मुसलमान हो गये थे। हम उन्हीं की सन्तान हैं। परन्तु ईरानी मुसलमान बड़ी प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करते हैं कि हमारे बाप-दादा पहिले पारसी थे। वही मुसलमान हो गये थे वह लोग पहलेअपने आपको ईरानी और फिर मुसलमान कहते हैं और हिन्दुस्तानी मुसलमानों की भांति अपने को तुर्क व अरब की सन्तान कदापि नहीं बतलाते।

दूसरी बात यह है कि प्राचीन ईरान की किसी २ बात को ईरानी मुसलमान आज भी आदर के साथ मानते व मनाते हैं। यही कारण है कि नौरोज जमशेदी' बहुत धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। ज्ञात रहे कि जमशेद मुसलमान नहीं था और मुसलमानी धर्म के जन्म से बहुत पहले एक बड़ा भारी बादशाह ईरान का हो चुका है।

इसी सम्बन्ध मे यह भी जान लेना चाहिये कि ईरान में मुसलमान लोग आज भी वही दिन व मास मानते हैं जो पारसियों में प्रचलित थे। परन्तु उक्त प्रकार की बातों में हमारे भारतीय मुसलमान भाई जैसे हैं वह स्पष्ट ही है।

तीसरी बात यह है कि वहां मुज़तहिद (धार्मिक गुरु) लोग दाढ़ी रखते हैं। इनके सिवा देहात के कुछ लोग दाढ़ी रखते हैं। बाकी लोग प्रायः दाढ़ी से कोसों दूर हैं।

चौथी बात यह है कि नुमाज की परवाह बहुत ही कम लोग किया करते हैं। शुक्रवार को छुट्टी रहा करती है परन्तु जितनी भीड़ मैंने शुक्र के दिन भारत के अनेक स्थानों की बड़ी २ मस्जिदों में देखी है उस प्रकार की भीड़ बड़ी नही हुआ करती।

पांचवीं बात यह है कि भारत में यदि किसी कब्र के तोडे जाने का प्रश्न हो तो हमारे बहुतेरे मुसलमान भाई यह समझते हैं कि ऐसा हो जाने से इस्लाम की जड़ कट जायगी। मैंने ईरान के कई स्थानों में देखा कि कब्रों के टूटने की परवाह नहीं की जाती है। सरमान में बहुतसी

कब्रें तोड़ी गई हैं और उन पर रहने के लिए मकान बन रहा है।

छठवीं मुहम्मद साहब के जन्म व मृत्यु दोनों की तिथियां सब हिजरी के हिसाब से भारत में एक ही हैं और वह रबीउलअव्वलकी १२ तारीख है। पर ईरान में जन्म तिथि १७ रबीउल अव्वल व मृत्यु की तिथि २६ सफर मानी जाती है।

सातवीं—सारे ईरान की जन संख्या १करोड़ में से ६८॥ लाख के करीब मुसलमान है। इनमें ८० लाख शिया और बाकी मुसलमान शिया नहीं है। परन्तु शिया लोग धूमधाम के साथ मुहर्रम मनाया करते हैं और जो लोग शिया नहीं हैं वे उसमें भाग नहीं लिया करते और भारत में यह हाल है कि शिया के सिवा अन्य मुसलमान भी बड़े चाव से भाग लेते हैं।

आठवी - इरान में केवल डेढ़ लाख के लग भग लोग ऐसे हैं जो मुसलमान नहीं हैं। यह यहूदी पारसी, कल्दानी व कुछ हिन्दू आदि हैं किन्तु सभों में परस्पर प्रेम भाव है। मैंने देखा कि मुसलमान लोग पारसियों व हिन्दुओं को 'अरबाब' कह कर सम्बोधन किया करते हैं जिस का अर्थ है—स्वामी, मालिक। इसके विपरीत भारत में जो दशा है उसके बतलाने की आवश्यकता ही क्या है।

नवीं—मुसलमान लोग यहां उर्दू में अरबी भाषा के बड़े २ शब्द ठूँस रहे हैं किन्तु ईरानी चाहते हैं कि उनकी फारसी भाषा से अरबी दूर ही रहे। यही कारण है कि फारसी के बाद अरबी का नहीं बल्कि फ्रांसीसी भाषा का चलन बहुत ज्यादा है।

उक्त बातों से लोग जान सकते हैं कि ईरान के मुसलमान क्या हैं! अधिक क्या बतलाऊँ?

——:*:——

अम्बोद्गार !

(१)

फूट का कपाल फोड़ ओढ़ मेल की उमंग।
भिन्नता बिसार दो, रहो समस्त एक संग॥
"अम्ब" भद्र भाव से, स्वदेश में भरो सुढंग।
धर्म्म, कर्म धार में, सुधार की उठें तरंग॥

(२)

सर्वाधार ईश अविनाशी, सकल सृष्टि का स्वामी है।
महा शक्ति सम्पन्न विधाता, अविचल अन्तर्यामी है॥
मायामय "श्री अम्बेश्वर" ने, जीवों को तन, प्राण दिये।
वेदों द्वारा मानव-दल को, धर्म्म, कर्म निर्माण किये॥

[आर्य्यमित्र से उद्धृत]

प्रादेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

तथा

उस का सार्वदेशिक सभा में प्रवेश ।

———:o::———

(ले०—बा० श्यामसुन्दरलाल जी एडवोकेट, मैनपुरी)

———:o:———

प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का महती सार्वदेशिक सभा में अब तक अप्रविष्ट रहना आर्य सामाजिक जगत के लिए संगठन की दृष्टि से हानिकारक ही नहीं किन्तु कलंक रूप है । वह आर्य समाज जो अपने माने हुए वैदिक धर्म को सार्वभौमिक धर्म बतलाता और संसार को उसमें प्रवेश करने का निमन्त्रण देता है किसी प्रकार इस लांछन से मुक्त नहीं हो सकता कि एक ही नियमोपनियम मानता हुआ भी अपने भीतर इस भग्नावस्था को इतने दीर्घ काल से टक टक देख रहा है और उसके दूर करने का कोई उपाय अब तक फलीभूत नहीं कर पाया । आर्यसमाज दूसरों को साधारणतया तथा हिन्दू समाज को मुख्यतया संगठन का उपदेश देते नहीं थकता परन्तु वह स्वयं अपनी असंगठित और भग्नावस्था के दूर करने के लिए अपने पास पर्याप्त अवकाश नहीं रखता । क्या 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत इस दृश्य के होते हुए आर्यसमाज के उज्ज्वल भविष्य का निदर्शन कर रही है ? मैं आर्यसमाज के नेताओं से सानुरोध निवेदन करूंगा कि वह इस विषय में शीघ्र पर्याप्त ध्यान देकर इस लांछन को दूर करें । प्रादेशिक आ० प्र० सभा का सार्वदेशिक सभा में प्रविष्ट न होना दोनों के लिये ही अहितकर है । पहली सभा के लिये इस कारण से कि वह सार्वदेशिक समस्याओं पर संयुक्त विचार कर सकने से विरहित है और द्वितीय महतीसभा के लिये इस हेतु से कि वह एक अच्छी आंशिक सामाजिक शक्ति को अपने भीतर न रखने से अपूर्ण और असुसंगठित है ।

शोक है कि यह विषय इतने दीर्घ काल से अनिर्णीत चला आता है । मैं न सार्वदेशिकसभा का सदस्य हूं और न मुझ को इस विषय के फ़ाइल का पूरा स्मरण और ज्ञान है । पहले पहल जब सार्वदेशिक सभा का निर्माण हुआ था उस समय अवश्य आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० की ओर से प्रतिनिधि होकर गया था परन्तु अब मुझ को यह स्मरण भली भांति नहीं रहा कि क्यों प्रादेशिक सभा उस समय सार्वदेशिक सभा में प्रविष्ट नहीं हुई या प्रविष्ट की गई। सिवाय इस के कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों की ओर से मांस विषयक कोई आपत्ति

उत्पन्न की गई थी। जिसके कारण प्रादेशिकसभा को निमन्त्रित भी किया गया था वा नहीं इसका स्मरण अब मुझको किञ्चित भी नहीं रहा है। इतना अवश्य याद पड़ता है कि महा० हंसराज आदि प्रादेशिक सभा की ओर से पधारे थे। जो कुछ वृत्त अब इस विषय में 'सार्वदेशिक' के जौलाई के अंक में दिया गया है उससे कम से कम मुझको बहुत निराशा उत्पन्न हुई है।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से पेश की गई दो आपत्तियों में से दूसरी आपत्ति को अर्थात् यह कि प्रा० सभा निश्चय कर देवे कि कोई व्यक्ति जो मांस भक्षण करता है आर्य सभासद न बनाया जावे "स्वयं सार्वदे० सभा के वार्षिक वृत्तान्त मे स्वीकरणीय दृष्टि से नहीं देखा गया है तथा पहली आपत्ति के विषय में जो इस प्रकार है किः-"प्रादे० सभा मांस भक्षण वेद विरुद्ध है इस सम्बन्ध में अपना असंदिग्ध निश्चय प्रकाशित कर देवे" प्रादेशिक सभा ने श्री० सार्व देशिक सभा के प्रधान के पत्र सं ६ ता० ४-३-२६ के स्पष्ट और पूर्ण उत्तर देने के पलटे अपने पत्र सं० ८१० ता० ८-३-२६ द्वारा केवल यह लिखा है कि "यह सभा किसी शर्त को मानना अपने लिये अपमान सूचक समझती है क्यों कि दूसरी प्र० सभाओं से सम्मिलित होते समय ऐसी शर्त नहीं मांगीं गई, और अन्त में उस घोषणा की नकल भेजी है जो उक्त सभा ने मांस के विषय में की थी। घोषणा यह है "मांस भक्षणके विषय में हमारी सभा का सिद्धान्त वही रहा है और अब भी है जो श्री० स्वामी दयानन्द जी महाराज की है अर्थात् मांस भक्षण वेदानुकूल नहीं है।"

यह बात किसी अंश तक विचित्र अवश्य है कि श्री० प्रधान सार्वदेशिक के पत्र का उत्तर यथार्थ और अपेक्षित रूप में नहीं दिया गया। परन्तु यदि और कोई बात इस फाइल में स्पष्टतया इस परिणाम के विरुद्ध नहीं है तो मैं अपनी लघु सम्मति में अवश्य इस परिणाम पर पहुंचता हूँ कि उपरोक्त घोषणा प्रादे० सभा की मांस विषयक स्थिति को पर्याप्त रूप में प्रकट करती है और पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की उत्पन्न की हुई पहली आपत्ति को समुचित सिद्ध नहीं होने देती यदि उपरोक्त घोषणा के विरुद्ध प्रादे० सभा के किसी सदस्य वा उसमें सम्मिलित किसी आर्य समाज ने कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई तो उपरोक्त घोषणा से उक्त प्रादे० सभा की ओर से मानने में किसी अन्य को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। और न उस प्रकार का अधिक मुतालिबा करना चाहिये जैसा कि पंजाब आ०प्र स०की ओर से किया गया प्रकट किया गया है। मैं अपनी लघु सम्मति में इसमें कोई मान हानि नहीं समझता किन्तु कर्त्तव्य समझता हूँ कि प्रादे० सभा अपने अपेक्षित प्रस्ताव की लिपि अब श्री० सार्व दे० सभा में भेज देवें अथवा उन हेतुओं को लिख देवें जिन की दृष्टि से वह प्रस्ताव की लिपि भेजना उचित और आवश्यक नहीं समझती।

मैं समझता हूँ कि इस विषय पर सार्वदेशिक ढंग पर विचार होने की आवश्यकता है

यह विषय न पंजाब आर्य प्राति० सभा से कोई प्रधान सम्बन्ध रखता है और न किसी अन्य प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा से। प्रश्न यह है कि यदि प्रादे० सभा का प्रवेशनार्थ आवेदन पत्र विद्यमान है वा भविष्य में आवे तो उसके प्रविष्ट करने में श्री० सार्वदेशिक सभा के नियमानुसार किस प्रकार कोई आपत्ति उठाई जासकती है? अर्थात् किसी प्रकार किसी आपत्ति का उठाना उचित नहीं है यदि श्री० सार्वदे० सभाकी ओरसे निम्न बातों पर "सार्वदेशिक" द्वारा प्रकाश डाल दिया जावे तो इस विषय के सुलझने में मेरी समझ में अवश्य सहायता मिलेगी।

(१) आरम्भ में प्रादे० आ० प्र० सभा में सम्मिलित होने में क्या रुकावट हुई।

(२) कोई पत्र उसका प्रवेशनार्थ सभा में आया वा नहीं यदि आया तो उस पर क्या कब निर्णय हुआ।

(३) प्रादे० सभा की उपरोक्त घोषणा कब कहां मुद्रित कराई गई है और उपरोक्त घोषणा के पश्चात् तदर्थ प्रस्ताव की लिपि की आपत्ति उठाने में आर्य प्र० सभा पंजाब क्या हेतु प्रस्तुत करती है।

———:o:———

उपालम्भ।

———:o:———

(ले०—श्री. पं. रामशंकर मिश्र 'श्रीपति')

——:o:——

कौन है, कहां को, कैसो, कुटिल कुचाली क्रूर,
सो तो सब भांति तुम जानत न भोरे हो।
भक्ति, भाव हीन, दीन, पातकी, मलीन जो मैं,
अधम उधारन में तुम हू न थोरे हो।
मोहन न हेरो, निज ओर हेरि देखो नाथ!
केते पात-कीन की जमाति तुम जोरे हो।
मेरी वेरि, एती देर, कीन्ही क्यों कृपानिधान!
मेरे अनुमान तुम दीन-बन्धु कोरे हो।

——:o:——

तू कहां है ?

———:o:———

(ले०—वैद्य शास्त्री श्री० डा० हरिश्चन्द्र जी, साहित्यालंकार भरतपुर)

———:o:———

प्रभो ! तेरी लीला अपरम्पार है। तू ने इस अद्भुत सृष्टि की अद्भुत रचना की। पृथ्वी,जल,वायु,तेज,आकाश सब की सब स्वयं बड़ी विचित्र चीजें हैं, पर तू इन सब से भी बड़ा विचित्र है। तेरे विचित्र गुण और अद्भुत सृष्टि-सौंदर्य बखान करना सहज नहीं है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी 'नेति नेति' कहके अपनी हार मान बैठे हैं।

तू ने यह सब कैसे बनाया, कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता। तू क्या और क्यों करता है, यह भी कोई नहीं जानता। तू कहां है, और कहां नहीं, यह भी किसी को पता नहीं। लोग तुझे जानना चाहते हैं, और नहीं जान पाते। तू बड़ा विचित्र है, और तेरी विचित्रता इस लिए भी है कि तू सब को जानता है, और तुझे कोई नहीं जानता। तू सब को देखता है, और तुझे कोई नहीं देखता। तुझे सब प्राप्त है, और तू किसी को प्राप्त नहीं। तू सबका ठिकाना जानता है और तेरा कोई नहीं जानता।

मैं चिरकाल से तेरे दर्शनार्थ इधर--उधर भटकता फिर रहा हूं, परन्तु तू नहीं मिलता। राज-प्रासाद के सुसज्जित मन्दिरों में गया। रत्न जटित स्वर्ण सिंहासनों को देखकर निश्चित हुआ तू यहां मिलेगा। मैं इस लालसा में घन्टों तेरे द्वार पर पड़ा रहा। तेरे पुजारी महाराज ने कुछ लोगों को मुंह देख कर अन्दर बुला लिया और फिर बड़ी क्रूरता से औरों के लिए द्वार बन्द कर दिया। मुझे इस पक्षपात-युक्त व्यवहार से बड़ा दुख हुआ और आश्चर्य हुआ। परन्तु जब मालूम हुआ कि तू यहां नहीं रहता, और तेरे नाम से कुछ स्वार्थी मनुष्यों ने इसे केवल अपने नाम और स्वार्थ का साधन बना रक्खा है तो वह आश्चर्य नहीं रहा।

तत्वज्ञान झाड़ने वाले और वाद-विवाद करने वाले महाशयों के समाज में तुझे पाने की आशा थी। पर यहां भी केवल 'जवानी जमा खर्च' का बाजार गर्म मिला। "ऊंची दूकान फीका पकवान" की भांति कोई तत्व की बात न मिली। तेरे दर्शन न हुए।

ज्ञान-ध्यान, जप-तप, योग-याग आदि में निमग्न रहने वाले साधु-महात्माओं की संगति में तुझ से मिलने की बड़ी सम्भावना थी, पर यहां भी वही 'ढाक के तीन पात' दिखलावा और आडम्बर बहुत, सत्यता थोड़ी,

धर्म-कर्म का नाश होजाय। तेरा रंग-रूप, वेश भूषा, धारण किये हुए अनेक महात्मा मिले, पर तू न मिला।

मैंने सुना था, तू नदियों के प्रशान्त तटों पर, पर्वतों की गहन चोटियों पर, गम्भीर गुहाओं में, वन-उपवनों के सूने एकान्त निकुञ्जों में रहता है। सघन वन की लहलहाती पत्तियों के साथ खेलता है। गंगा यमुना के तरल तरंगों में नृत्य करता है। सुन्दर सुन्दर पक्षियों के मधुर शब्दों के साथ अपनी मुरली की तान मिलाता है। मैं इन स्थानों में बड़े चाव और उत्साह के साथ गया, परन्तु यहां भी तेरे दर्शन न हुए।

भगवन्! मैं तेरे पीछे-पीछे जाता हूं और तू दूर भागता है। यह क्यों? क्या मुझ अभागे को तेरे दर्शन न होंगे? तू मुझे न मिलेगा? तू सर्व व्यापक है। तू हर जगह हाजिर नाजिर है। तुझ से कोई स्थान खाली नहीं है। संसार में कोई स्थान नहीं है जहां तू नहीं। परन्तु फिर तू मिलता क्यों नहीं? क्या मैं ठीक तौर से तुझे ढूँढ़ता नहीं? क्या तेरा ठिकाना मुझे ठीक मालूम नहीं? क्या मेरे हृदय में तेरी भक्ति नहीं? क्या मैं शुद्ध भाव से तेरी आराधना नहीं करता? क्या मुझ में सचाई नहीं? कुछ हो, पर निस्सन्देह तू विचित्र है। यजुर्वेद में भी आया है:—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

तात्पर्य यह, तू चलता है और चलता भी नहीं। नजदीक है और पासभी है, दूर है और दूर भी नहीं। तू इस संसार के बाहर-भीतर है। क्या ही विचित्र माया है? इस विरोधाभास का कुछ ठिकाना भी है। बलिहारी तेरी महिमा! तुझे चाहने वाले, तेरा पता लगाने वाले, तुझे ढूंढ़ने वाले इसी लिए तो भूल-भुलैयां में भटकते रहते हैं और तुझे नहीं पाते।

क्या तू मुझे नहीं मिलेगा?

नहीं, अब तू छिप नहीं सकता। छिपना कैसा? तू छिपता ही नहीं! देखने वाली आंखे तुझे न देखें, ढूंढने वाले तुझे न ढूँढ पायें, तो इसमें तेरा क्या दोष है? दोष है उन्हीं का।

तू प्रेम का भूखा है। हृदय की सरलता और पवित्रता तू खोज है। सचाई और केवल सचाई तुझे पसन्द है। दम्भ और आडम्बर तुझे नहीं चाहिये। दिखावे और नाम से तू कोसों दूर रहता है। स्वार्थ त्याग और निष्काम भाव को देख कर तू स्वयं प्रसन्न हो जाता है और अपने भक्तों को आप दर्शन देता है। तेरा निवास स्थान घट-घट में है। प्रत्येक के हृदय मन्दिर में तू विराजमान है। मूर्ख अपनी अज्ञानता से तुझे बाहर ढूंढता-फिरता है और समझता है तू कहीं उस से अन्यत्र है। तू ने उसे छोड़ दिया है। परवस्तुतः यह मनुष्य की भूल है। वह तुझे भूल जाता है और तू उसे नहीं भूलता। वह तुझे छोड़ कर दूसरे का आसरा लेता है, पर तू उसे नहीं छोड़ता।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु,
मामे वैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे ॥

गीता १८। ६५

भगवान कृष्ण का कहना है, हे अर्जुन मेरे जैसे मन वाला हो, मेरे जैसे यज्ञ करने वाला बन, मेरा भक्त बन, मुझ को नमस्कार कर । मैं तुझ से यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि ऐसा करने पर तू मुझ को ही प्राप्त होगा, तू मेरा प्यारा है।

निस्सन्देह भगवान कृष्ण का यह वाक्य सत्य है । मनुष्य सचाई और अनन्त भक्ति-भाव से ही प्रभु को साक्षात कर सकता है । वह दूध में घृत की तरह सर्वत्र ओत--प्रोत है । उसे पानेके लिए काशी और मक्का जाने की जरूरत नहीं ।

एकान्तवास

——:o:——

ले—श्री पं. वैद्यनाथ मिश्र 'विह्वल')

——:२:——

सार्थक करो शरीर, मानव का जन्म पाय ।
बनो न कदापि काम क्रोध-लोभ-मोह-दास ॥
शब्द रस-गन्ध-स्पर्श से यदि रहोगे दूर ।
पड़ोगे कदापि नहीं किसी के भी प्रेम-पास ॥
यदि करना है कुछ, होना है आयुष्मान ।
मरो नहीं रूप पर करो नहीं शक्ति नास ।
जीवन-सुधार हेतु, आतम उद्धार हेतु ।
सुकवि 'विह्वल' करो मनन एकान्तवास ॥

मातृ-गौरव

:o:

(एक स्वर्गीय आत्मा)

—:*:—

सृष्टि-कर्ता परमात्मा ने संसार में सुख और शान्ति के लिए स्त्रियों को अनेक स्वर्गीय गुण देकर संसार में भेजा है। पुरुषों को उनका उदारता पूर्वक स्वागत करना चाहिए और उन गुणों के समुचित विकास के लिए उन्हें पूर्ण अवसर देना चाहिए। वह गुण स्वतंत्रता और सहृदयता में ही विकसित हो सकते हैं और समानता में उनसे लाभ उठाया जा सकता है।

———

प्राचीन भारत की प्रातः स्मरणीया सीता और सावित्री प्रभृति पूज्य माताओं के समान इस पराधीन भारत में चाहे देवियां न हों, परन्तु आधुनिक स्त्री जगत में अब भी भारतीय महिलाओं का स्थान सर्वोच्च है और वे आदर्श स्थल है।

———

भारतीय स्त्रियों को अपनी पश्चिमीय बहनों की स्वतन्त्रता पर मोहित न होना चाहिए। उसमें केवल भोग-विलास और संसार के असात्विक सुखोंका ही समावेश है। भारतीय सभ्यता में ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों पर दृष्टि रख कर ही स्वतन्त्रता का उपभोग किया जाता है।

———

हिन्दू पत्नि अपने पति की दासी होती है, पर उसका अधिकार और शासन अपने स्वामी के हृदय पर होता है।

———

सास-बहू के झगड़ों में प्रायः तत्व बहुत कम होता है, पर कलह-क्लेश अधिक रहता है। इन के दूर करने का एक मात्र उपाय है-सहिष्णुता!

———

कहीं-कहीं ननद और भावजों में भी नहीं बनती। दोष तो दोनों तरफ का होता ही है परंतु भावजों को अपने ननद का मान और आदर रखना ही चाहिए। भावज की उदारता का प्रभाव ननद के हृदयपर बड़ा विलक्षण पड़ता है और वह सहज में ही उसकी चेरी बन जाती है।

———

दूसरी माता से बच्चों को अपनी माता के समान सुख और अधिकार न पाना स्वाभाविक ही है, परन्तु इसमें बहुत कुछ पिता की कर्तव्य-विमूढ़ता का भी हाथ होता है।

———

हिन्दू स्त्रियां धन की अधिक परवाह नहीं करतीं। वह प्रेम और सभ्यता की भूखी रहती हैं। और इसी के लोभ में कभी-कभी वह अपने

प्राणों को भी संकट में डाल लेती हैं। पुरुषों को उनकी सरल प्रकृति और शुद्ध भाव से अनुचित लाभ न उठाना चाहिए। यह भाव पूजाके योग्य है। उसे कलुषित बना देने से समाज का बड़ा अहित होगा।

स्त्रियां प्रायः हृदय से धर्म का स्वागत करती हैं और पुरुष मस्तिष्क से। मस्तिष्क बिगड़ते ही धर्म भ्रष्ट हो जाता है, और हृदय विकारयुक्त होने से शरीर छूट जाता है। और धर्म भी उन के साथ साथ चला जाता है। तात्पर्य यह है, स्त्रियां मरते दम तक अपने धर्म का त्याग नहीं करती।

शिक्षिता स्त्रियों में बहुधा कम खाने और कमजोर बनने की चाल निकल रही है। इस से समाज में बल और पौरुष घटेगा। स्त्रियों को यह भूल न जाना चाहिये कि, हम एक शरीर धारी प्राणी हैं और उस में भी मनुष्य सन्तति की जननी। बलवान माता ही बलवान सन्तान उत्पन्न कर सकती है।

मेरा शरीर भारत वर्ष की मिट्टी से बना, मैं हिन्दू जाति में पैदा हुई, मुझे उदार पितृ तथा पति कुल मिला। पति के अनुग्रह से मुझे वैदिक-धर्म और स्वामी दयानन्द का पवित्र सन्देश प्राप्त हुआ, और अब मैं आश्रम-धर्म के अनुसार............में हूँ। क्या मुझे अपने इस सौभाग्य पर उचित अभिमान न होना चाहिये। ऐसा संयोग हरएक को नहीं मिलता। मनुष्य को समय और अवसर को कभी न खोना चाहिये।

स्त्रियों को अपनी सुन्दरतापर ही बहुत मोहित न रहना चाहिये बल्कि सौन्दर्य-रक्षा के परम साधन स्वास्थ्य और संयम पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिये। स्वास्थ्य और सद्गुण ही यथेष्ट सौन्दर्य है।

कन्याओं को १६ वर्ष से पहले विवाह न करना चाहिये और अयोग्य वर से तो कभी भी नहीं, ऐसे मौके पर झूठी लोक-लज्जा छोड़कर अपने नैतिक बल से काम लेना ही श्रेयष्कर और वीरता है।

खाना कौन देखता है, कपड़ा और गहना तो सभी देखते हैं। इस ख्याल से अनेक स्त्रियां रुपया-पैसा जोड़ने में लगी रहती हैं और अपने भोजन व स्वास्थ्य की परवाह नहीं करतीं। यह बड़ी भूल की बात है। शरीर स्वस्थ रहने से ही वस्त्राभूषणों की शोभा है।

सदाचार

———:०::———

(ले० -श्री० स्वामी आनन्दभिक्षु सरस्वती)

———:०:———

वह वस्तु क्या है, जो किसी देश या जाति को उन्नति की उच्चतम शिखर पर पहुंचाती है ? वह शक्ति कौन सी है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति या समाज संसार में उच्चता और पवित्रता का आदर्श उपस्थित करता है ? संसार के विस्तृत इतिहास में इसका एक ही-केवल एक ही-उत्तर मिलता है और वह है; सदाचार या चरित्र-बल। धर्म, न्याय और राजनीति इत्यादि किसी का भी इस विषय में दो मत नहीं हैं। सभी सर्व सम्मति से इसी एक उत्तर का प्रतिपादन करते हैं।

संसार के किसी देश या जाति का इतिहास देखो, किसी भी धर्म या मजहब के प्रवर्तक से पूछो, किसी भी न्याय या तर्क का सिद्धान्त पढ़ो, तुम्हें सर्वत्र सदाचार का यही महत्व मिलेगा।

सदाचार क्या है ?

सदाचार यों तो केवल दो ही शब्द-सत्-आचार-से बना हुआ एक साधारण शब्द है। परन्तु मानव शब्द कोष में शायद ही इसके टक्कर का कोई दूसरा शब्द हो। संस्कृत साहित्य मे 'धर्म' बड़ा ही व्यापक शब्द है, परन्तु सदाचार शून्य धर्म का कोई अर्थ ही नहीं होता। भगवान मनु ने धर्म का लक्षण बतलाते हुए ईश्वरीय ज्ञान वेद और स्मृति के बाद सदाचार को ही मुख्य स्थान दिया है।

वेदस्मृतिः सदाचारःस्वस्यच च प्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत् ईश्वर का प्रथम लक्षण है। सत् प्रकृति है। सत् जीवात्मा है। संसार में सत् का ही प्रसार है। सत् न होता तो यह संसार भी न होता। जिस सत् से सूर्य में प्रकाश है, जिस सत् से चन्द्रमा में शीतलता है, जिस सत् से पृथ्वी में गति है, जिस सत् की दिव्य ज्योति से संसार के समस्त पदार्थ देदीप्यमान हो रहे हैं, वही सत् सदाचार का प्रथम शब्द है।

सतां सज्जनानां विदुषां महात्मनां।
आचारः प्रवृतिः इतिव्यवहारः सदाचारः॥

तात्पर्य यह है, सत् पुरुषों, सज्जनों, विद्वानों तथा आप्त पुरुषों और महात्माओं का बतलाया हुआ, जो श्रेयमार्ग है, वही सदाचार है। सदाचार का सम्बन्ध केवल मस्तिष्क से ही नहीं, केवल हृदय से ही नहीं, बल्कि मस्तिष्क और हृदय दोनों से है। सदाचार ज्ञान

और कर्म के साथ-साथ चलता है, बल्कि सच पूछिए तो ज्ञान और कर्म की शोभा ही सदाचार से है। वेद यदि ईश्वर का ज्ञान है, तो सदाचार निस्सन्देह ईश्वर की उपासना है। योगियों का योग, तत्वदर्शीयों का ज्ञान, यति-मुनियों का सुसंयम, सन्यासियों का त्याग और भक्तों की भक्ति इस सदाचार के ही अन्तर्गत है। मनुष्य जीवन की समस्त उपयोगी और आवश्यक गुण इस एक सदाचार शब्द के अन्दर विद्यमान है। सरलता, कृतज्ञता, उदारता, सहिष्णुता, कर्मनिष्टा, सत्यप्रियता, शिष्टाचार, विनय, परोपकारिता, दृढ़ता और चित्त की विशुद्धता, इत्यादि क्या है? यह सदाचार के भिन्न भिन्न अंग ही तो हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि, यह एक-एक गुण मनुष्य जीवन के लिए कितने आवश्यक और उपयोगी हैं। किसी कवि ने कहा भी है कि, "यदि धन गया, तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, तो कुछ क्षति हुई, पर यदि सदाचार गया, तो मानो सर्व नाश होगया।"

सदाचार मनुष्य शरीर का प्राण है। मानव समाज की जान है। संसार के समस्त बलों और शक्तियों में सदाचार का बड़ा उच्च स्थान है। मर्टिन लूथर का कहना है कि, किसी राष्ट्र की उन्नति और सभ्यता की कसौटी यह नहीं है कि, उसकी आर्थिक दशा अच्छी है, उसका सैनिक बल महान है, उसके सर्व-साधारण के मकानात बहुत सुन्दर हैं, बल्कि उसकी परीक्षा यह है कि, उसमें सभ्य पुरुषों की यथेष्ट संख्या है। उसके व्यक्तियों में विद्या, बुद्धि और सदाचार पर्याप्त है। लूथर की इस परिभाषा में किसे आपत्ति हो सकती है। राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति, मुख्य बल और असली ताकत ही यही है। क्या सदाचार के लिए किसी विशेष

विद्या की जरुरत है?

मनुष्य ज्ञान और कर्म इन्द्रियों का समूह है, भली और बुरी आदतों का समुदाय है। मनुष्य की निहित शक्तियों का विकासित करने तथा मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए ज्ञान और कर्म दोनों की जरूरत है। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि, यह ज्ञान किसी विशेष पुस्तक द्वारा ही प्राप्त किया जाय। परमात्मा की विस्तृत सृष्टि में मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन उपस्थित हैं, और वह उनमें से किसी भी रीति से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। नानक, कबीर, रामदास, तुकाराम और रामकृष्ण प्रभृति अनेक ऐसे सुचरित्र पुरुष हो गए हैं उन्होंने पुस्तकों द्वारा ज्ञान बहुत कम प्राप्त किया था, परन्तु अपने चरित्र-बल से जिस प्रकार इन महान आत्माओं ने देश की काया पलटने और जातियजीवन ढालने में काम किया और अपने उद्देश में कृत्यकृत हुए, वह इतिहास के पाठकों से अविदित नहीं हैं। ऐसे पुरुष चाहे बहुत बड़े विद्वान न भी हों, तो भी उनमें ऐसी शक्ति अवश्य होती है कि, वह बड़े-बड़े विद्वानोंको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

मनुष्य जीवन का उद्देश पूर्ण करने के लिए विद्या, धन, और शारीकि बल की भी आवश्य-

कता है, परन्तु चरित्र-शोधन के बिना केवल इन शक्तियों से काम नहीं चलता। एक मूर्ख और दरिद्र चरित्र-हीन की अपेक्षा एक विद्वान और धनवान दुश्चरित्र कहीं अधिक भयंकर और निन्दनीय है। दुश्चरित्र मनुष्य विद्या को विवाद, धन-मद और शारीरिक बल को परपीड़ा का साधन बनाता है, परन्तु सुचरित्र पुरुष उन्हीं को ज्ञान, दान, और रक्षा का कारण बना कर देश और जाति के सुख और शांति में वृद्धि करता है। निस्सन्देह चारित्र बड़ी चीज है। चरित्र के बिना मनुष्य की सारी शक्तियां उसके लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, धर्म के लिए, लोक, परलोक सभी के लिए हानिकारक होजाती हैं। यह 'चरित्र' कैसे प्राप्त होता है, इस विषय पर फिर कभी विचार किया जायगा।

:*:

आर्य समाज मुरादाबाद का नगर-कीर्तन

आवश्यक सूचना।

---:o:---

संयुक्त प्रांत की आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया था कि, सत्याग्रह के लिये उपयोगी स्थान मुरादाबाद हो सकता है, परन्तु सत्याग्रह के सम्बन्ध में कोई काम शुरू करने से पहले, प्रशंसित सभा ने यह भी निश्चित किया था कि, उनके प्रधान प्रान्तिक गवर्नर से मिलकर एक यत्न करें कि, मामला बिना किसी झंझट के सुगमता से तय होजावे। तदनुसार संयुक्त प्रांत के प्रधान महोदय गवर्नर से मिले और गवर्नर की इच्छानुसार उन्हों ने मुरादाबाद के नगर-कीर्तन के सम्बन्ध में लेख वद्ध पत्र लिखकर भेज दिया है और अब गवर्नर महोदय के उत्तर की प्रतीक्षा की जारही है। जब तक गवर्नर और संयुक्त प्रांत की सभा के अध्यक्ष किसी अन्तिम निश्चय पर न पहुंचें और वह अन्तिम निश्चय भी नगरकीर्तन के प्रतिकूल न हो, उस समय तक आर्य रक्षा समिति का कोई भी कर्त्तव्य इस सम्बन्ध में न था और न है। मुझे दुःख है कि, इस मामले में अनावश्यक और अनुचित लेख समाचार पत्रों में लिखे गये।

नारायण स्वामी, प्रधान
आर्य-रक्षा-समिति देहली।

वैज्ञानिक-चमत्कार

शान्त महासागर की गहराई

पैसिफिक या शान्त महासागर में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनकी गहराई अभी तक ज्ञात नहीं हुई है। कार्नेगी इन्सटीट्यूट के अन्वेषकों ने अभी हाल में इस महासागर के छः अत्यन्त गहरे स्थलों का पता लगाया है।

१ मिण्डानाओं खड्ड ३४००० फीट गहरा
२ टस्कारोरा ,, ३२०००
३ मेरियान ,, ३१०००
४ करमेडेक ,, ३१०००
(न्यूजी लेण्ड से ३०० मील उत्तर पूर्व)
५ सोलोमन खड्ड ३००००
६ फ्लेमिंग ,, २८१००

अटलान्टिक महासागर की सब से अधिक गहराई पोर्टोरिको द्वीप के पास २७६०० फीट पाई गई है, हिन्द महासागर की अधिकतम गहराई २२९३८ फीट ही है। मलयासागर की २१३४२ फीट, वेरिंग की १३४२८, उत्तरी सागर की १३२००, और भूमध्यसागर की अधिकतम गहराई १२१७६ फीट है।

यह गहराई ध्वनि विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार निकाली गई है। समुद्र के सतह पर कुछ ध्वनि की गई और उसकी प्रति ध्वनि जितने समय के पश्चात् वापिस आई, वह समय मालूम कर लिया गया। जल के अन्दर ध्वनि का वेग मालूम ही है। अतः इस प्रकार समुद्र के उक्त स्थल की गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है, यह विधि पूर्व प्रचलित विधियों से अधिक विश्वसनीय है। पहले समुद्र की गहराई निकालने के लिए किसी भारी धातु (सीसा आदि) का लंगर पानी में फेंकते थे और उससे गहराई नापी जाती थी।

वायुयान द्वारा उत्तरीय ध्रुव की यात्रा

उत्तरी ध्रुव के निकटस्थ प्रदेशों का वृतान्त जानने के लिये वायुयानों का उपयोग किया जाने का विचार है। डा० फ्रिटजोफ तानसेन के नेतृत्व में इस कार्य के लिये एक अन्तर्जातीय समिति बनाई गई है। ग्राफ जेपेलियन नामक वायुयान पर इस काम के लिये प्रवन्ध किया जा रहा है। आगामी पहली अप्रेल को उत्तरीय नार्वे प्रदेश से यह यान उडना आरम्भ करेगा। इस यात्रा की असुविधाओं को विचार में रख कर अनेक प्रवन्ध किये जा रहे हैं। डा० तानसेन के साथ जगत्प्रसिद्ध १५ वैज्ञानिक भी रहेंगे। ये वैज्ञानिक उत्तरी ध्रुवस्थ प्रदेश की परिस्थितियों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करेंगे, वहां के वायुमंडल की अवस्था और रेडियों पर इसका प्रभाव तथा चुम्बकीय और विद्युत सम्बन्धी अन्य उपयोगी बातों की समीक्षा की जावेगी।

साहित्य-सत्कार

——:o:——

आविष्कार विज्ञान—लेखक श्रीयुत पं० उदयभानु शर्मा, प्रकाशक श्रीमध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर। मूल्य ॥=)

मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अच्छी पुस्तक है। पुस्तक में लेखक ने वाह्यकरण (इन्द्रिय) और अन्तःकरणों (मन बुद्धि आदि) की कार्य प्रणाली का वर्णन करते हुए कुछेक क्रियात्मक साधन भी बतलाये हैं कि, किस प्रकार उन्हें समुन्नत किया जा सकता है। ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य में बड़ी कमी है। आशा है कि, बहुत से नर-नारी पुस्तक को पढ़ कर उस से लाभ उठावेंगे।

—नारायण स्वामी

बाल ब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—लेखक, श्री० भगवानदास केला, प्रकाशक-भारतीय ग्रन्थ माला, वृन्दावन, पृष्ठ संख्या २३० से ऊपर सजिल्द १॥।), साधारण १॥) राज संस्करण आर्ट पेपर पर ३)।

ऐतिहासिक और जगत-प्रसिद्ध महिलाओं के जीवन चरित्र होंगे। परन्तु ऐसी सती नारियों के जीवन-चरित्र कम हैं, जिन्होंने यद्यपि अपने जीवन-काल में विशेष ख्याति नहीं प्राप्त की, परन्तु उन के चरित्र उदाहरणीय थे। श्री० कुन्ती देवी जी एक ऐसी ही धर्म-परायण-देश-भक्त और आदर्श महिला थीं। उन का चरित्र श्री० भगवानदास केला ने बड़ी योग्यता से लिखा है। पुस्तक वास्तव में ऐसी ही उत्तम हो गई है, जैसा कि, श्रीमती जी का चरित्र आदरणीय था। नवाँ परिच्छेद 'स्वभाव और सद्गुण' विषयक विशेष शिक्षाप्रद है। पुस्तक की छपाई और कागज बढ़िया है और रंग-विरंगे चित्रों ने, जिन की संख्या १२ है, उस को और भी मनोहर बना दिया है। आशा है देशवासी पुस्तक का उचित आदर कर के लाभ उठायेंगे।

गंगाप्रसाद (एम० ए०)

चीफ जज, टिहरी गढ़वाल, स्टेट।

नागरिक शिक्षा—लेखक श्रीयुत भगवानदास जी केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थ माला पृष्ठ संख्या १२९, मूल्य ॥)।

राज्य के क्या कर्तव्य और क्या कार्य हैं, इस बात का ज्ञान हर एक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। इन बातों का प्रारम्भिक ज्ञान बाल्यावस्था से होना चाहिए। परन्तु ऐसे विषयों को बालकों के सामने रखने के लिए सरल और सुबोध पुस्तकों की आवश्यकता है। श्रीयुत भगवानदास जी केला ने नागरिक शिक्षा नामक पुस्तक लिखकर एक बड़ी कमी की पूर्ति करते हुये भारतीय विद्यार्थी तथा नवयुवकों का बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से भली

भांति ज्ञान हो सकता है कि राज्य या सरकार के क्या कार्य हैं।

पुस्तक बहुत ही सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई है। इसमें कई एक उद्योग और शिक्षा सम्बन्धी चित्र भी दिये गये हैं। मिडिल स्कूल से लेकर हाई स्कूल तक के छात्रों के लिये यह आकर्षक और परमोपयोगी है। आशा है हिन्दी भाषा भाषी जनता इस पुस्तकको अपनाकर लाभ उठायेगी।

सरल भारतीय शासन—लेखक वही, प्रकाशक वही, पृष्ठ संख्या १६२ मूल्य आठ आने।

श्रीयुत भगवानदास जी केला की भारतीय शासन नामक पुस्तक बहुत दिनों से जनता के सामने है। इसकी उपयोगिता इसी बात से मालूम होगी कि, इसके अब तक ६ संस्करण हो चुके हैं और यह राष्ट्रीय तथा सरकारी स्कूलों की पाठ्य पुस्तक के लिये स्वीकृत हो चुकी है। हिन्दी में राजनीति सम्बन्धी पुस्तकों के अभाव को इसने बहुत कुछ दूर किया है। सरल भारतीय शासन इसी का संक्षिप्त रूप है। लेखक ने छात्रों की आवश्यकता, योग्यता और सुविधाको ध्यान में रख कर इसे इस रूप में प्रकाशित किया है। प्रारम्भिक ज्ञानके लिये गूढ़ और कुछ अनावश्यक बातों को निकाल कर कई एक आवश्यक और उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि भारतीय शासन से बहुत ही सरल और सुबोध है। बालकों तथा छात्रों के लिये यह बडे लाभ की हो गई है। पुस्तक उपादेय है। आशा है, हिन्दी के पाठक इस पुस्तक को उसी तरह अपनायेंगे, जिस तरह उन्होंने भारतीय शासन को अपनाया है।

—नारायणदास

खून के आंसू—लेखक श्री० पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक, प्रकाशक मंत्री भारतीय हिन्दू शुद्धि समाचार देहली पृष्ठ संख्या ७२ मूल्य तीन आना मात्र।

इस पुस्तक में हिन्दू जाति के पतन की वास्तविक अवस्था का रोमांचकारी दृश्य एक कहानी के रूप में चित्रण किया गया है। पुस्तक रोचक है। इसे प्रत्येक हिन्दू नर-नारी को अवश्य पढ़ना चाहिये। सफाई, छपाई उत्तम है।

संगीत भजन प्रकाश—संग्रह कर्त्ता पं० देवीचरण, मंत्री, आर्य समाज मथुरा, प्रकाशक कल्पवृक्ष कार्यालय, अन्तापाड़ा, मथुरा, पृष्ठ संख्या ८८ मूल्य ।=)।

यह पुस्तक परिश्रम से तैयार की गई है। इसमें प्रायः सभी प्रकार के भजनों को जुटाने का अच्छा यत्न किया गया है। पुस्तक जन साधारण के अपनाने योग्य है, विशेषतः भजनीकों के लिये तो बड़ी उपयोगी है। सफाई, छपाई की ओर भी काफी ध्यान दिया जाता तो और भी अच्छा था।

—हरिश्चन्द्र

संक्षिप्त-समाचार

—अलाहाबाद में साधू के वेष में ग्यारह व्यक्ति बिला टिकट यात्रा करने के कारण पकड़े गये। अनुसन्धान से उनके पास की रोटियों एवं एक शिव-मूर्ति में चांदी के सिक्के छिपे हुए मिले। हर एक पर जुर्माना हुआ।

—सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने एसेम्बली बम केस की अपील में, जिसकी सुनवाई आगामी १५दिनके अन्दर अंदर हो जायगी, खुद ही बहस करने की प्रार्थना की है।

—मुन्शीगंज में काली के मन्दिर में प्रवेश का अधिकार पाने के लिये जो नमः शूद्र सत्याग्रह कर रहे हैं, उनकी ओर से श्री० सुरेन्द्र मजूमदार और प्रो० नृपेन्द्रनाथ बनर्जी को पुलिस ने दफा १४४ जाब्ता फौजदारी में गिरफ्तार कर लिया। पुलिस और सत्याग्रहियों में झगड़ा भी होगया। पुलिस की लाठियों से बहुत से सत्याग्राहियों को चोटें भी आ गईं। सत्याग्रह ४२दिन से जारी है।

—अन्तर्जातीय मजदूर कान्फ्रेन्स का १४ वां अधिवेशन जेनेवा में ६ जून १९३० ई० को प्रारम्भ होगा।

—सर जगदीश चन्द्र बोस ने एक ऐसा रस तैयार किया है। जिसके प्रयोग से मृतः प्रायः मेढक जीवित किया गया। मनुष्यों के अत्यन्त भयंकर रोगों में भी इस रस से अद्भुत सफलता मिली है।

—खबर है कि लाहौर में कांग्रेस होने के कारण से इस वर्ष पंजाब के सरकारी दफ्तरों में बड़े दिन की छुट्टियां न दी जावेंगी।

—मदर इन्डिया के उत्तर में लिखी गई श्री कन्हैयालाल गौबा द्वारा "अंकिल शाम" पुस्तक का प्रवेश अमेरिकन सरकार ने अमेरिका में निषेध कर दिया है।

—मासिक फिजी समाचार सन् १९ ०से साप्ताहिक कर दिया जायगा। फीजी के अलावा, साउथ अफ्रीका, ईस्ट अफ्रीका, मौरिशस, ट्रीनीडाड वृटिश गाइना में तथा भारत में भी इसका अच्छा प्रचार है। पत्र मैनेजर से सूबा फिजी से मिल सकता है।

—श्री डा० भक्तराम जी सहगल दक्षिण अफ्रीका में वैदिक धर्म का प्रचार करके बिलायत पहुंच गये हैं। डा० जी ने अफ्रीका में २५ आर्यसमाजें स्थापित की, १४ यज्ञोपवीत ६ नाम करण ३ शुद्धियां और २अन्त्येष्टि, कुल २५संस्कार कराये। आफ्रीका में डाक्टर जी का प्रचार कार्य बड़ा शानदार रहा। विलायत में भी उन्हें अच्छी सफलता मिल रही है।

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाने की दर।

स्थान	१ मास के लिये	३ मास के लिये	६ मास के लिये	१ वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा	३॥)	८)	१५)	२५)
चौथाई कालम	२)	५)	८)	१५)

नोट—चौथाई कालम से कम विज्ञापन आने पर कालम की एक पंक्ति के =) प्रति मास लिये जायेंगे। विज्ञापन तथा रुपया प्रत्येक दशा में पेशगी ही आना चाहिये।

वैदिक-साहित्य

का

प्रचार करना प्रत्येक आर्यका कर्तव्य है

भगवान दयानन्द के जन्म शताब्दी के पुण्य अवसर पर आर्य जनता तक शुद्धि सिद्धान्तानुकूल वैदिक साहित्य पहुंचाने के लिये जहां ऋषि-कृत ग्रन्थों को काफ़ी संख्या में छपवाया गया था, वहां आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वानों से भी आवश्यक ग्रन्थ लिखवाये गये थे। इन्हीं अपूर्व ग्रन्थों का स्टाक लगभग तीन हजार रुपये के मूल्य के रूप में—सार्वदेशिक सभा के पुस्तकालय में अब भी मौजूद हैं। प्रत्येक आर्य और आर्य समाजों का कर्तव्य है कि वह इस वैदिक साहित्य के प्रचार में भरपूर सहायता और सहयोग प्रदान करें।

पुस्तक विक्रेताओं को वैदिक प्रेस की अपेक्षा कमीशन भी अधिक दिया जाता है और प्रचारार्थ वितरण करने वालों के साथ तो और भी खास रियायत की जा सकती हैं।

कुछ पुस्तकों की सूची नीचे दी जाती हैं। आर्डर 'सार्वदेशिक सभा देहली' के पते पर भेजना चाहिये।

पुस्तकों की सूची।

१ शताब्दी वृत्तान्त	१।)
२ वायस आव आर्यावर्त	॥)
३ सत्यार्थ प्रकाश संस्कृत सजिल्द	१॥)
४ सत्यार्थ प्रकाश अं०	२।)
५ पर्व पद्धति	।॥)
६ आर्य समाज	॥)
७ दश नियम व्याख्या	।)
८ भजन भास्कर	॥)
९ ओं प्रत्यक्ष	॥)
१० ट्रूथ वेदाज	॥)
११ ट्रूथ	=)
१२ क्रूसिफिकशन	॥=)
१३ वैदिकटीचिंग	१॥)
१४ वैदिक सिद्धांत	१।)
१५ वैदिक सिद्धांत सजिल्द	१॥)
१६ विरजानन्द विजय	।)
१७ दयानन्द लहरी	-)।
१८ प्राणायाम विधि	-)
१९ टार्च बरर	१॥)
२० दयानन्द ग्रन्थमाला	५)
२१ महर्षि जीवन चरित्र	।)
२२ व्यवहारभानु	=)।
२३ भ्रमोच्छेदन	-)
२४ भ्रांति निवारणम	=)
२५ शिक्षा पत्री	=)
२६ गोकरणनिधि	=)
२७ वेद विरुद्ध मत खंडन	=)॥
२८ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	१॥)
२९ संस्कार विधि	॥)
३० स्वीकार पत्रम	॥)
३१ पंचयज्ञ महाविधि	-)॥
३२ सत्य धर्म विचार	-)॥
३३ काशी शास्त्रार्थ	-)
३४ आर्याभिविनय	।-)
३५ आर्योद्देश्य रत्न माला	)॥
३६ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी	१)
३७ सृष्टि विज्ञान	२)
३८ नीति विवेचन	१।)
३९ आरोग्यता	॥)
४० हिन्दी कुरान प्र० भाग	१॥)
४१ हिन्दी कुरान द्वि० भाग	१॥=)
४२ वैदिक जीवन	॥।)
४३ तुलनात्मक विचार	॥)
४४ भारतमाता का सन्देश	॥)
४५ वैदिक संध्या रहस्य	-)।
४६ बंगला अनुवाद आर्य समाज	।)
४७ आनन्द संग्रह	१)
४८ पथ प्रदीप	१)
४९ गृहिणी सुधार	॥-)
५० वैदिक विवाहादर्श	१)

५१	शुद्ध मनुस्मृति	।=)	६१	शिक्षा प्रणाली	१)
५२	दृष्टान्त समुच्चय	१॥)	६२	आरोग्य दिग्दर्शन	।=)
५३	वर्णव्यवस्था	=)	६३	भगवद्गीता	१)
५४	धर्म शिक्षा प्र० भाग	=)	६४	हिन्दू मुस्लिम इतिहास	।)
५५	धर्म शिक्षा द्वि० भाग	।)	६५	कृष्ण सुदामा	॥)
५६	सांख्यदर्शन	१)	६६	शुद्ध नामावली	।)
५७	अष्टोपनिषद्	२)	६७	भावना	॥।=)
५८	संध्यायोग	।=)	६८	बाल ब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी सादी	१॥)
५९	वैदिक स्वराज्य	॥)		,, ,, सजिल्द	१॥)
६०	चित्रमय दयानन्द	१।)		,, ,, राजसंस्करण	३)

पंडित रघुनाथ प्रसाद पाठक-पब्लिशर के लिये अर्जुन प्रेस, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली में छप कर प्रकाशित हुआ।